प्रादिनाथ हिन्दी-जैन-साहित्य-माला—पुष्प नं० ११

चन्द राजा

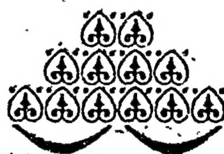
सम्पादक:—

पण्डित काशीनाथ जैन

प्रकाशक:—

पण्डित काशीनाथ जैन
अध्यक्षः—आदिनाथ-हिन्दी-जैन-साहित्य-मा
मु० वंबोरा, पो० भीण्डर (मेवाड़)

ीय संस्करण] १६५० मूल्यः— साधारण जिल्द ५)
रेशमी जिल्द ६)



मुद्रक:—

पं० छगनलाल दाधीच

सरस्वती प्रेस, हाथीपोल, उदयपुर ।



निवेदन ।

प्रस्तुत पुस्तकका पहला संस्करण कलकत्तेमें छपा था। और ज्यों--ज्यों इसका प्रचार होता गया त्यों--त्यों इसकी मांग बढ़ती गयी। फलतः थोड़ेही दिनों में सारा संस्करण समाप्त हो गया। इसके बाद नित्य इसकी मांग आने लगी। स्टॉक में नहीं होनेसे हम भी निराश हो इन्कारी लिख दिया करते थे, किन्तु प्रेमी ग्राहकोंने अपनी मांग बराबर बनाये रखी। अनेक ग्राहकोंने तो दस दस रूपये में एक एक प्रति मंगवाने को लिखा।

इस प्रकार पाठकों की अधिक मांग देख कर यह नया संस्करण प्रकाशित किया गया है। इसमें पहले की तरह समस्त सामग्री दी हुई है। हाँ, केवल टाईप कुछ छोटे कर दिये हैं, कारण यह है, कि यहाँ पर किसी प्रेस में वैसे टाइप पूर्ण रूपसे नहीं थे। जहाँतक हो सका है छपाई की सफाई की ओर पूरा लक्ष दिया गया है, तथापि ट्रेडिल मशीन में छपनेके कारण कहीं-कहीं साधारण त्रुटी आगयी है। इसके अतिरिक्त प्रूफ़ संशोधन का कार्य मेरी अनुपस्थिती में नरेंद्र सिंह जैन ने किया है, इसलिये यदि कहीं किसी स्थान पर दृटि दोप रह गया होतो पाठकगण सुधार कर पढ़े।

इस ग्रन्थ का मूल्य पहले केवल ३॥) रुपया रखा गया था परन्तु इस समय कागज, छपाई, चित्र बनवाई, और ब्लॉक निर्माणका मूल्य पहले से चार गुना बढ़गया है। यदि हम इसी लागत के अनुसार मूल्य लगायें तो कम-से-कम इस ग्रन्थका मूल्य १०) रुपये से कम न पड़ता; किन्तु इसके चित्र, ब्लॉक पहले के बने हुए तैयार थे, इसलिये कम लागत लगी और इसीसे साधारण जिल्द का मूल्य ५) रुपया और रेशमी जिल्द का मूल्य ६) रूपया रखा है।

यहाँ पर मैं वर्द्धमान जैन-ज्ञान मन्दिर के अधिष्ठाता माननीय पूज्यवर्य श्री अनूपचन्द्रजी माहाराज साहिब का पूर्ण आभारी हूँ, जिन्होंने हमारे कार्य के लिये स्थानादिक का सहयोग प्रदान कर पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की है अस्तु।

उदयपुर
ता० १५-८-५०

आपका—
काशीनाथ जैन

चन्दराजा के अग्रिम ग्राहक बनने वाले माननीय सज्जनों की नामावली।

—(]:o:[)—

जैनाचार्य्य श्रीमद् विजय हिमाचल सूरीश्वरजी के	
शिष्य मुमुक्षु भव्यानन्द विजयजी	उदयपुर।
मुनि मंगलसागरजी महाराज	जब्बलपुर।
गुरुणीजी श्री सौभाग्य श्री जी उत्तम श्री जी	उदयपुर।
मुथा भीमराजजी	बाड़मेर।
मुथा नेमिचन्दजी जैन	जोधपुर।
नाथुलालजी तखतमलजी सावला जैन	उदयपुर।
लालचन्द्रजी गेनाजी	बंबई।
जसराजजी चोपड़ा	बाड़मेर।
हेमराजजी मोहता	बाड़मेर।
कनकमलजी राजमलजी	रतलाम।
रूपचन्दजी हंसराजजी	शिवगञ्ज।
महावीर जैन लायब्रेरी	कालन्द्री।
लीलाबाई गुलाबचन्दजी अग्रवाल	इन्दौर।
लीलाबाई हमीरमलजी अग्रवाल	इन्दौर।
नेमीचन्द्रजी सूरजमलजी	इन्दौर।
देवराजजी भीकमचन्दजी	नारलाई।

इस ग्रन्थ का मूल्य पहले केवल ३॥) रुपया रखा गया था परन्तु इस समय कागज, छपाई, चित्र बनवाई, और ब्लॉक निर्माणका मूल्य पहले से चार गुना बढ़गया है। यदि हम इसी लागत के अनुसार मूल्य लगायें तो कम-से-कम इस ग्रन्थका मूल्य १०) रुपये से कम न पड़ता; किन्तु इसके चित्र, ब्लॉक पहले के बने हुए तैयार थे, इसलिये कम लागत लगी और इसीसे साधारण जिल्द का मूल्य ५) रुपया और रेशमी जिल्द का मूल्य ६) रुपया रखा है।

यहाँ पर मैं वर्द्धमान जैन-ज्ञान मन्दिर के अधिष्ठाता माननीय पूज्यवर्य श्री अनूपचन्द्रजी माहाराज साहिब का पूर्ण आभारी हूँ, जिन्होंने हमारे कार्य के लिये स्थानादिक का सहयोग प्रदान कर पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की है अस्तु।

उदयपुर
ता० १५-८-५०

आपका—
काशीनाथ जैन

चन्दराजा के अग्रिम ग्राहक बनने वाले
माननीय सज्जनों की नामावली।

—(]:o:[)—

जैनाचार्य्य श्रीमद् विजय हिमाचल सूरीश्वरजी के शिष्य मुमुक्षु भव्यानन्द विजयजी	उदयपुर।
मुनि मंगलसागरजी महाराज	जब्बलपुर।
गुरुणीजी श्री सौभाग्य श्री जी उत्तम श्री जी	उदयपुर।
मुथा भीमराजजी	बाड़मेर।
मुथा नेमिचन्दजी जैन	जोधपुर।
नाथुलालजी तखतमलजी सावला जैन	उदयपुर।
लालचन्द्रजी गेनाजी	बंबई।
जसराजजी चोपड़ा	बाड़मेर।
हेमराजजी मोहता	बाड़मेर।
कनकमलजी राजमलजी	रतलाम।
रूपचन्दजी हंसराजजी	शिवगञ्ज।
महावीर जैन लायब्रेरी	कालन्द्री।
लीलाबाई गुलाबचन्दजी अग्रवाल	इन्दौर।
लीलाबाई हमीरमलजी अग्रवाल	इन्दौर।
नेमीचन्द्रजी सूरजमलजी	इन्दौर।
देवराजजी भीकमचन्दजी	नारलाई।

एस० सी० जैन	रोहतक।
किशनलालजी जैन	हयद्राबाद दक्षिण।
आर. सिरथमलजी आलमचन्दजी एण्ड सन्स	सिकन्द्राबाद।
गुलाबचन्दजी पुकराजजी तातेड़	"
आर. छगीरमलजी फतेचन्दजी जैन	"
श्रीमती सोनूबाई कोठारी	हिंगनघाट।
भेराजी लुणाजी	रानापुर।
उत्तमचन्दजी न. सिंह्दासजी जैन	काजगांव।
शाह कोदरलालजी चतुरभुजजी जैन	रानापुर।
चम्पालालजी चान्दमलजी जैन	रानापुर।
एस. हीराचन्द्रजी जैन	वेल्लूर।
मोहनराजजी सेसमलजी जैन	धारवाड़।
शाह चोकलचन्दजी भभूतमलजी	विजयनगरम।
शाह छोगमलजी प्रतापचन्द्रजी जैन	गुड़ा बालोतरा।
शाह वेलजी हीरजी	करनपुर।
वीरदीचन्दजी वैद	करनपुर।
अनोपचन्दजी तातेड़	नागोर।
हुक्मीचन्दजी धनराजजी महेता	गोगुन्दा।
जीतमलजी ऊर्जनलालजी बावेल	उययपुर।
सेठ छोटूलालजी श्री श्रीमाल	उदयपुर।
ताराचन्दजी छीपानी जैन	वरोरा।
नेमिचन्दजी लादुरामजी जैन	हीरडव।

चोथमलजी नथमलजी नखत	डोंगरगाँव।
गणेश मलजी जैन	मरुड जञ्जीरा।
चौधरी हीरालालजी जैन	उन्हैल।
गवानलालजी मोतीलालजी जैन	उन्हैल।
नेमी चन्दजी पारख जैन	अहमदाबाद।
सेठ सूरजमलजी कँवरलालजी जैन	खैरागढ़।
कन्हैयालालजी डाकलीया जैन	खैरागढ़।
रंगलालजी दलपतरायजी जैन	मेट्टूर दान।
लाभ चन्दजी वैद जैन ख़ज़ानची	जालंधर।
सेठानीजी प्रभावती कुँवरी	अजमेर।
वी. वीसनलालजी जैन	मद्रास।
जैन नव युवक मण्डल	वन्दरा।
वनारसीलालजी हरवंसलालजी जैन	अमृतसर।
अनोपचन्दजी एण्ड कम्पनी	उटक मण्ड।
श्री महावीर जैन पुस्तकालय	कालन्द्री।
मुथा राजमलजी करनावट	जोधपुर।
कँवरलालजी लुकड़ जैन	उटक मण्ड।
पूनमचन्दजी हिन्दूमलजी जैन	वाड़मेर।
भारमलजी चन्दनमलजी वरड़िया	लोही।
पीरचन्दजी दूगड़ जैन	मोहतरा।
लूनकरनजी पारख	रायपुर।
जोरावरमलजी वैद	रायपुर।

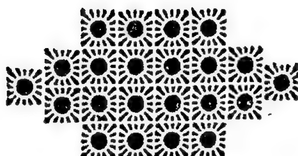
एस० सी० जैन	रोहतक।
किशनलालजी जैन	हयद्राबाद दक्षिण।
आर. सिमर्थमलजी आलमचन्दजी एण्ड सन्स	सिकन्द्राबाद।
गुलाबचन्दजी पुकराजजी तातेड़	"
आर. हमीरमलजी फतेचन्द्रजी जैन	"
श्रीमती सोनूबाई कोठारी	हिंगनघाट।
भेराजी लुणाजी	रानापुर।
उत्तमचन्द्रजी नरसिंहदासजी जैन	काजगांव।
शाह कोदरलालजी चतुरभुजजी जैन	रानापुर।
चम्पालालजी चान्दमलजी जैन	रानापुर।
एस. हीराचन्द्रजी जैन	वेल्लूर।
मोहनराजजी सेसमलजी जैन	धारवाड़।
शाह चोकलचन्दजी भभूतमलजी	बिजयनगरम।
शाह छोगमलजी प्रतापचन्द्रजी जैन	गुड़ा बालोतरा।
शाह वेलजी हीरजी	करनपुर।
वीरदीचन्दजी वैद	करनपुर।
अनोपचन्दजी तातेड़	नागोर।
हुक्मीचन्दजी धनराजजी महेता	गोगुन्दा।
जीतमलजी ऊर्जनलालजी बावेल	उययपुर।
सेठ छोटूलालजी श्री श्रीमाल	उदयपुर।
ताराचन्दजी छीपानी जैन	वरोरा।
नेमिचन्दजी लादुरामजी जैन	हीरडव।

चोथमलजी नथमलजी नखत	डोंगरगाँव।
गणेश मलजी जैन	मरुड जञ्जीरा।
चौधरी हीरालालजी जैन	उन्हैल।
गवानलालजी मोतीलालजी जैन	उन्हैल।
नेमी चन्दजी पारख जैन	अहमदावाद।
सेठ सूरजमलजी कँवरलालजी जैन	खैरागढ़।
कन्हैयालालजी डाकलीया जैन	खैरागढ़।
रंगलालजी दलपतरायजी जैन	मेटूर दान।
लाभ चन्दजी वैद जैन खज़ानची	जालंधर।
सेठानीजी प्रभावती कुँवरी	अजमेर।
वी. वीसनलालजी जैन	मद्रास।
जैन नव युवक मण्डल	वन्दरा।
वनारसीलालजी हरवंसलालजी जैन	अमृतसर।
अनोपचन्दजी एण्ड कम्पनी	उटक मण्ड।
श्री महावीर जैन पुस्तकालय	कालन्द्री।
मुथा राजमलजी करनाचट	जोधपुर।
कँवरलालजी लुकड़ जैन	उटक मण्ड।
पूनमचन्दजी हिन्दूमलजी जैन	वाड़मेर।
भारमलजी चन्दनमलजी वरड़िया	लोही।
पीरचन्दजी दूगड़ जैन	मोहतरा।
लूनकरनजी पारख	रायपुर।
जोरावरमलजी वैद	रायपुर।

राजमलजी धनरूपचन्दजी	घाणेराव ।
सूरजमलजी लक्ष्मणदासजी टाँटिया जैन	अरजुनी ।
सूरजमलजी हिंगड़	सुनेल ।
मंगला देवी जैन	सुनेल ।
शाह फूलचन्दजी गुलाबचन्द्रजी बाँठ्या	पूना ।
शाह पनाजी नेमीचन्दजी	धारवाड़ ।
महेता रतनमलजी	टिरुपापुलियर ।
सेठ घेवरचन्दजी माणिकलालजी	दानियार ।
खुशाल चन्दजी भवरलालजी जैन	खापर ।
मुलतानमलजी सूरजमलजी जैन	अरजुनि ।
रामसुखजी अमरचन्दजी लूनिया	पिपाड़ ।
नेमीचन्दजी शंकरलालजी संचेती	नारायणपुर ।
मोती लालजी सालगिया	सलुम्बर ।
नन्दरामजी कालूरामजी जैन	आलेगाम ।
फूलचन्दजी गुलाबचन्दजी जैन	जबलपुर ।
फूलचन्दजी साहब मट्टा	जोधपुर ।
बाबू घेवरचन्द्रजी जैन	जब्बलपुर ।
शाह रामचन्द्रजी मनरूपजी जैन	बीजापुर ।
शाह रूपचन्दजी पुखराजजी जैन	फिरोजाबाद ।
मुलतानचन्दजी रानीदानजी	बीजा ।
छेदुलालजी छजलानी	अजीमगञ्ज ।
रामलालजी कँवरलालजी जैन	राजनान्द गाँव ।

धर्मचन्दजी चम्पालालजी जैन	कटंगी।
सेठ धनराजजी जैन	देवकर।
भोजराजजी इरखचन्दजी जैन	सेंथिया।
श्री जैन श्वे० पुस्तकालय	आकोला।
घीसुलालजी दुलराजजी जैन	दुदोड़।
जसवन्तराजजी जुगराजजी सावकार	नागलापुरम।
श्री जैन नवयुवक मण्डल	मद्रास।
वी. माणकचन्दजी रांका जैन	रायपुरम।
शोरीलालजी नाहर	ब्यावर।
हीरालालजी जैन	पंडरिया।
मिश्रीमलजी चननमलजी जैन	बम्बई।
भागचन्दजी कोचर	हिंगनघाट।
कन्हैयालालजी सोहनलालजी जैन	धारड़ी।
तेजसिंहजी सोहनलालजी डांगी जैन	कदवासा।
नाथुलालजी सुगनसिंहजी जैन	कदवासा।
मोहनलालजी महता	उदयपुर।
मंगलचन्द भँवरलाल	सरदार शहर।
नन्दलालजी फूलचन्दजी जैन	बूढ़ा।
हमीरमलजी जैन,	बिलासपुर।
नथमलजी गणेशलालजी	बड़ोदा
उत्तम चन्दजी संघवी	बलोदरा
कुन्दनमलजी शेषमलजी	पंडेरिया।

पी० नथमलजी	अण्डरसनपेट
हेमराजजी हजारीमलजी ओसवाल	वाई
वी. डालचन्द साहुकार	अण्डरसनपेट
कन्हैयालालजी मोतीलालजी जैन	सारूरी।
प्रतापचन्दजी लक्ष्मीचन्दजी जैन	वीजा।



चन्द राजा

पहला परिच्छेद

चन्द्रकुमारका जन्म

इस त्रिलोकमें, जो कि चौदह राजलोकके बराबर है, तिर्च्छा नामक एक लोक है। यह एक राजके बराबर लम्बा और इतनाही चौड़ा है। इसके ऊपर और नीचेका कुल विस्तार १८०० योजन है। इसके मध्यमें जम्बु नामक एक द्वीप है। जम्बु-द्वीपका आकार थालीके समान गोल और विस्तार एक लाख योजनके बराबर है। इसके चारों ओर अगणित द्वीप और समुद्र अवस्थित हैं। उन सबोंका आकार वलय या कङ्कनके समान है।

जम्बुद्वीपके उत्तर में कुरुक्षेत्र नामक एक स्थान है, जो जम्बु वृक्षोंसे सुशोभित है। इसीलिये इस द्वीपका नाम जम्बुद्वीप पड़ा है।

जम्बुद्वीपमें बड़े-बड़े सात क्षेत्र, मध्यमें मेरु पर्वत और अन्य छः वर्षधर पर्वत हैं। दक्षिण दिशाके सिरे पर, अष्टमीके चन्द्र जैसी आकृतिवाला भरत नामक क्षेत्र है। वह सिद्धाचल महा तीर्थकी सद्भावनासे युक्त होनेके कारण सब क्षेत्रोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। वैताढ्य पर्वत और गंगा तथा सिन्धु नामक दो बड़ी बड़ी नदियोंके कारण भरत क्षेत्र छः भागोंमें विभक्त हो गया है। गंगा और सिन्धु—इन दोनों नदियोंमें चौदह-चौदह हजार नदियाँ आ कर गिरती हैं। भरत क्षेत्रमें कुल ३२००० देश हैं, इनमेंसे केवल साढ़े पच्चीस देश आर्य और शेष सभी अनार्य हैं। भरतक्षेत्रके छः खंडोंमेंसे दक्षिण ओरके मध्य खण्डका पूर्वीय प्रदेश बहुतही मनोरम है। सूर्य और चन्द्र वहींसे उदय होते हैं। चन्द्रको उसी प्रदेशमें संचरण करने पर षोड़श कलाकी प्राप्ति होती है। गंगा नामक पवित्र महानदी भी उसी देश में प्रवाहित होती है।

इस महा महिमामय देशके मध्यभागमें किसी समय आभापुरी नामक एक सुन्दर नगरी थी। उसकी शोभाको देख कर लङ्का और अलका भी लज्जित हो जाती थी।

उसमें चोरासी चौराहे थे, चारों ओर बहुत ऊँचा किला था और अच्छे अच्छे रईसोंकी बसती थी। दानवीरोंकी भी कमी न थी। कृपण तो खोजने पर भी न मिलते थे। व्यापारी धनवान और स्त्रियाँ रूपवती थीं। साथही, समूची नगरी अनेक जिन-मन्दिरादिकसे सुशोभित हो रही थी।

इस नगरीमें वीरसेन नामक राजा राज्य करता था। उसके वीरमती नामक एक पटराणी थी। एक दिन इस नगरीमें घोड़ोंके सौदागर अपने घोड़े बेचने आये। उनके पास अनेक जातिके उत्तमोत्तम घोड़े थे। राजाने उन सबोंको उचित मूल्य पर खरीद लिया। उन घोड़ोंमें एक घोड़ा बहुत ही सुन्दर था। उसे वक्रगतिकी शिक्षा दी गयी थी, परन्तु राजाको यह भेद मालूम न था। एक दिन वह उसी घोड़ेपर सवार हो अपनी सेनाके साथ जंगलमें शिकार खेलने गया। वहाँ अनेक जानवरोंका शिकार खेलनेके बाद राजाकी दृष्टि एक हरिण पर जा पड़ी। उसने उसका पीछा किया। हरिण भी छलांगे मारता हुआ भगा। राजाने बहुत चेष्टा की, पर वह हाथ न आया। अन्तमें थककर उसने घोड़ेको रोकना चाहा, परन्तु घोड़ेकी लगाम खींचते ही वह दूने वेगसे दौड़ने लगा। वास्तवमें उसे शिक्षा ही विपरीत दी

गयी थी। इसीलिये रोकनेकी चेष्टा करने पर वह अधिक भागता था। राजाकी सेना और सब संगी-साथी पीछे रह गये। घोड़ा तो भागता ही चला जाता था। वह कहाँ और कब रुकेगा, इसका कोई पता ही न था। राजा चिन्तामें पड़ गया। इतनेमें उसे कुछ दूरी पर एक मनोहर तालाब और उसके समीप ही एक वट-वृक्ष दिखायी दिया। राजाने अपने मनमें स्थिर किया कि, उस वृक्षके नीचे पहुँचते ही मैं उसकी डाली पकड़ कर लटक जाऊँगा और घोड़ेको छोड़ दूँगा। सौभाग्यवश घोड़ा भी उसी स्थानसे जा निकला। राजाने वृक्षके नीचे पहुँचते ही उसकी डाली पकड़ ली। उधर घोड़ेकी लगाम ढीली पड़ते ही वह भी खड़ा हो गया। राजाको इससे बहुत ही आश्चर्य हुआ और वह समझ गया कि इस घोड़ेको वक्र शिक्षा दी गयी है।

थकावटके कारण राजा का बदन चूर-चूर हो रहा था। वह घोड़ेको उसी वृक्षमें बांध कर तालाबकी ओर चला। उसका जल बहुत ही निर्मल और शीतल था। चारों ओर स्फटिकके मनोहर घाट बँधे हुए थे। वृक्षोंकी शीतल छाया मानों पथिकोंका स्वागत कर रही थी। राजाने हाथ मुँह धो, जलपान कर, कुछ समय तक विश्राम किया। थकावट दूर होने पर वह तालाबके चारों

ओर घुम-घुमकर उसकी मनोहर शोभा देखने लगा। घुमते-घुमते उसकी दृष्टि एक लोह-जाल पर जा पड़ी। उसके नीचे कुछ सिढ़ियाँसी दिखायी देती थी। राजाने कौतूहलवश उस जालको हटा दिया और हाथमें खड्ग ले, निर्भिकतापूर्वक उन सिढ़ियोंके रास्ते उस गुप्त मार्गमें प्रवेश किया। सिढ़ियोंका सिलसिला बहुत दूर तक न था। कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर राजाको पातालके अन्दर एक बहुत बड़ा जंगल दिखायी दिया। धैर्य, धर्म, पुण्य और पुरुषार्थ—यह चार संगी उसके साथ थे, इसलिये वह बराबर आगे बढ़ता गया। जंगलमें कुछ दूर जाने पर उसे किसी कन्या का स्वर सुनायी दिया। इससे आश्चर्य-चकित हो वह अपने मनमें कहने लगा,—"इस पातालमें यह जंगल और जंगलमें यह कन्याका स्वर कैसा? निःसन्देह इसमें कोई रहस्य छिपा है। कन्याका स्वर बहुतही करुण और मर्म-स्पर्शी है। वह किसी आपत्तिमें तो न फँसी होगी? कोई उस पर अत्याचार तो न करता होगा?!" समय खोनेका मौका न था। जिस ओरसे वह आवाज आ रही थी, उसी ओर वह शीघ्रतासे चल पड़ा। हाथमें खड्ग था ही। कुछ ही समय में वह उस स्थानमें जा पहुँचा जहाँसे वह करुण स्वर आ रहा था।

राजाने देखा कि उस स्थानमें एक योगी बैठा हुआ है। उसकी आँखे बन्द है। हाथमें माला है। सामने पुष्प और धुपादि पूजन-सामग्री रक्खी हुई है। पासहीमें एक अग्नि-कुण्ड है। उसमेंसे आगकी लपटें निकल रही हैं। कुण्ड के पासही एक खड्ग रक्खा है। दूसरी ओर एक कन्या बैठी हुई है। उसके हाथ-पैर मजबूतीसे बंधे हुए हैं और वह इसी अवस्थामें बैठी-बैठी करुण-क्रन्दन कर रही है।

यह साज-सामान देखते ही सारा मामला राजाकी समझमें आगया। वह उस कन्याकी ओर आगे बढ़ा। उसे देखते ही उस कन्याने पुकारकर कहा,—"हे आभा नरेश! शीघ्र मेरा प्राण बचाइये। यह नराधम योगी मुझे बलिदान करना चाहता है!"

एक अपरिचित कन्याके मुँहसे अपना नाम सुनकर राजाको आश्चर्य हुआ। उसने कन्याको शान्त रहनेका सङ्केत कर, सबसे पहले योगीके पास रक्खा हुआ वह खड्ग लघु-लाघवी कलासे उठा लिया। इसके बाद उसने उस योगीको ललकार कर कहा,—"हे निर्दय! निर्लज्ज पापी! दुष्टात्मा! अब इस बक-ध्यानसे काम न चलेगा। उठ, खड़ा हो, इस बालिकाको छोड़ दे और मुझसे युद्ध कर। मेरे सामने इसका बलिदान तो हो ही कैसे

...ा है; परन्तु मैं अब तुझे जीता भी न छोड़ूँगा !"

राजाके यह शब्द सुनकर योगी घबड़ाकर खड़ा हो गया। उसने एकबार चारों ओर देखा। उसे आत्म-रक्षाका कोई उपाय न सुझायी दिया। वह किसी तरह प्राण लेकर भागा। राजाने उसे योगी समझकर, उसका पीछा करना उचित न समझा। वहाँ उसका कोई दूसरा संगी-साथी भी न था। राजा ने तुरन्त कन्याको बन्धन-मुक्त कर उससे आदरपूर्वक पूछाः—"हे सुन्दरी ! तुम किस राजाकी कन्या हो और इस योगी के जालमें किस तरह आ फँसी ? तुमने मुझे किस तरह पहचाना ? मुझ पर तुम्हारा यह प्रेम-भाव कैसा ?"

वह कन्या वीरसेनको पहले ही पहचान गयी थी और इसीलिये मन-ही-मन कुछ लज्जित सी हो रही थी। उसने पृथ्वीकी ओर देखते हुए कहा,—"हे स्वामिन ! आभापुरीसे पचीस योजन की दूरी पर पद्मपुरी नामक एक नगरी है। वहाँ के राजा पद्मशेखर मेरे पिता और पटरानी रतिरूपा मेरी माता है। मेरा नाम चन्द्रावती है। मुझे जैन धर्म प्रिय है और मैं उसीकी आराधना करती हूँ। कुछ दिन पहले जब मैंने बाल्यावस्था अति-क्रमण कर युवावस्थामें पदार्पण किया तब मेरे पिता मेरे ब्याहकी चिन्ता करने लगे। इतनेहीमें एकदिन एक

ज्योतिषी आ पहुँचा । पिताजीने मेरे ब्याहके विषयमें पूछताछ की । उसने उन्हें बतलाया कि आपकी पुत्रीका ब्याह आभापुरीके नरेशके साथ होगा । यह सुनकर वे परम प्रसन्न हुए । मैं भी अपने पतिका नाम आदि जानकर आनन्दित हुई । तदनन्तर, पिताजीने सम्मानपूर्व उस ज्योतिषीको विदा किया ।

इस घटनाके बाद, एकदिन मैं अपनी सखियोंके साथ जल-क्रीड़ा करने गयी थी । वहीं पहले पहल इस कुटिल योगीको देखा । इसने इन्द्रजालका कर सखियोंकी नजर बाँध दी और मुझे मोहित कर यहा उठा लाया । इसकी पूजन-विधि देखकर मैं इसका उद्देश समझ गयी और अपना अन्त निकट जानकर रोने लगी । सौभाग्यवश, ठीक समय पर आप यहाँ आ पहुँचे । इसके बाद जो कुछ हुआ सो आप जानते ही हैं । परन्तु हे गुण-सागर ! आपने किसी दूसरेकी नहीं, अपनी ही रक्षा की है । आपके इस कार्यको मैं उपकार रूप नहीं मानती । फिर, मैं याचक भी नहीं हूँ । यदि याचक होती तो आपको धन्यवाद देती और आपका यशोगान करती आप पूछते हैं कि, मैंने आपको किस तरह पहचाना मेरे लिये आपका आचरण ही आपकी पहचानके लिये काफी था । ऐसी मुसीबतके समय प्राणनाथके सिवा

कौन सहायक हो सकता था ? और कौन अपनी प्रियतमाका प्राण बचा सकता था ?"

चन्द्रावती की यह बातें सुनकर राजा वीरसेनको बहुतही आनन्द हुआ। वे उसे अपने साथ ले, उसी रास्ते से बाहर निकल आये, जिस रास्ते से अन्दर गये थे। इसी समय उनकी सेना और अनुचर आदि भी उनके पद-चिन्ह देखते हुए उस स्थानमें आ पहुँचे। सबोंने राजाको प्रणाम किया। राजाके प्रियपात्रोंने कुशल समाचार पूछते हुए राजासे कहा,—"महाराज ! आपको इस तरह अकेले शिकारके पीछे न आना चाहिये था। रत्नोंको संसारमें यत्नपूर्वक ही रखना चाहिये। आप हमारे लिये अनमोल रत्न हैं। फिर, संसारमें सज्जनोंकी अपेक्षा दुर्जन ही अधिक होते हैं। आप तो परम भाग्यशाली हैं। आपके कष्ट अनायास दूर होकर, आपको सम्पत्तिकी प्राप्ति हो सकती है, परन्तु हमलोग कैसे निश्चिन्त रह सकते हैं ? आपको सकुशल देखकर हमलोगोंको नव-जीवनसा मिल रहा है। परन्तु महाराज ! आप तो अकेले आये थे, इस समय आपके साथ यह रमणी-रत्न कौन है ?"

राजाने सारी आप बीती कह सुनायी। सुनकर सब लोग बहुतही आनन्दित हुए। राजा वीरसेन अपनी

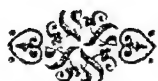
सेना और राज-कन्याके साथ अपनी नगरीको लौट आया। आते ही उसने अपने आदमी भेजकर राजा पद्मशेखरको खबर दी कि,—“आपकी पुत्री चन्द्रावती यहाँ आ गयी है। वह आपसे मिलनेके लिये बड़ीही उत्कण्ठित हो रही है। आप यहाँ आनेका कष्ट उठायेंगे तो बड़ी कृपा होगी।” यह समाचार सुनते ही राजा पद्मशेखर आभापुरी आया। आभापुरीमें पिता-पुत्रीकी भेट हुई। पुत्रीने पिताको सारा हाल कह सुनाया। सुनकर पद्मशेखरके आनन्दका वारापार न रहा। उसने राजा वीरसेनको धन्यवाद देते हुए कहा,—“आपने हम लोगोंपर जो उपकार किया है, उसका किसी तरह भी बदला नहीं चुकाया जा सकता। इसके लिये तो मैं आपका चिर-ऋणी रहूँगा, परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप मेरी कन्याका पाणि-ग्रहण कर, मुझे अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनेका अवसर प्रदान करें। सच पूछिये तो, राजन्! जबसे ज्योतिषीने कहा, तभीसे मैंने इसे आपको समर्पण कर रक्खा है।”

राजा वीरसेनने पद्मशेखरका अत्यन्त आग्रह देखकर उसकी यह प्रार्थना स्वीकार करली। ज्योतिषीको बुलाकर शुभ मुहूर्त्त पूछा गया और इन दोनोंका विवाह-कार्य सानन्द-सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर सारे

शहरमें उत्सव मनाया गया। आबाल, वृद्ध, वनिता, सभी इस ब्याहसे आनन्दित हुए। केवल वीरमती ही एक ऐसी थी, जिसे इस ब्याहसे दुःख हुआ। सब काम निपट जाने पर राजा पद्मशेखर अपने नगरको वापस चला गया।

इधर राजा वीरसेन और चन्द्रावतीके दिन चैनसे कटने लगे। दोनोंका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता था। इससे वीरमतीके हृदयमें सौतिया डाहके कारण भयङ्कर ईर्षाग्नि धधक उठी। चन्द्रावतीका स्वभाव बहुत ही सरल था, इसलिये वह तो वीरमतीको बहनके समान ही मानती थी। पतिके आराम पर भी वह पूरा ध्यान रखती थी। इस तरह उसका जीवन बहुत ही सरल और आनन्दपूर्वक वीत रहा था, परन्तु वीरमतीकी अवस्था इससे बिलकुल विपरीत थी। वह, चन्द्रावती और अपने पति दोनों पर मन-ही-मन कुढ़ा करती थी। ऐसे ही समय में चन्द्रावतीके गर्भमें किसी पुण्यवन्त जीवका आगमन हुआ। उसी रातको उसने चन्द्र-दर्शन-का स्वप्न देखा। यह स्वप्न बहुतही शुभ-सूचक था, इसलिये राजाको मालूम होनेपर वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। गर्भ-काल पूर्ण होनेपर यथा समय चन्द्रावतीने एक पुत्र-रत्नको जन्म दिया। इससे समूचे नगरमें

आनन्दकी हिलोरें उठने लगीं। घर-घर मंगलाचार हुए। राजाने दीन और दुःखियोंको दान, आश्रितोंको उपहार, स्नेहियोंको भेट और सज्जनोंको सम्मान द्वारा सम्मानित किया। बारहवें दिन अनेक सभाजनोंके समक्ष राजकुमारका नामकरण हुआ। रानीने गर्भ-सञ्चारके समय चन्द्रका स्वप्न देखा था, इसलिये उसका नाम चन्द्रकुमार रक्खा गया। माता-पिताके यत्नसे, शुक्लपक्षके चन्द्रकी तरह, चन्द्रकुमार उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। सभी उसे देखकर आनन्दित होते थे, पर वीरमतीकी ईर्षाग्निमें मानों घृतकी आहुति पड़ रही थी।



दूसरा परिच्छेद

वीरमतीकी पुत्र-कामना

चन्द्रकुमारको बढ़ता देखकर राजा वीरसेन मन-ही-मन बहुत प्रसन्न होता था और अपने जीवनको सार्थक मानता था। चन्द्रकुमार नित्य नये खेल खेलता था, इसलिये रानी चन्द्रावती और राजाको उसकी रक्षाके लिये बहुत यत्न करना पड़ता था। उनसे यह बात भी छिपी न थी, कि वीरमती मन-ही-मन बहुत क्रुद्ध रही है और अवसर मिलने पर वह राजकुमारके जीवन पर विपत्तिके पहाड़ ढहा सकती है। उसे चन्द्रावतीका ब्याहही असह्य हो रहा था, अब उसके गर्भसे युवराजका जन्म होना उसके लिये एक दम ही असह्य हो पड़ा। चन्द्रकुमार शुद्ध राज बीज होनेके कारण बहुत ही सुन्दर था। बाल्यावस्थाकी स्वाभाविक तोतली बोली में वह टूटी-फूटी बातें कहकर सबका मनोरंजन करता था,

केवल वीरमती ही इस विषयमें अपवाद रूप थी।

जैन धर्मपर रानी चन्द्रावतीकी बहुत ही आस्था थी। इसलिये उसने अनेक प्रकारसे राजाको समझा-बुझाकर उसके शिकार आदि सप्त व्यसन छुड़ा दिये थे। रानीकी बातें सुन सुनकर राजाके हृदयमें भी जैन धर्मके प्रति वासना उत्पन्न हुई। इसलिये उसने भी अनेक जिन-मन्दिर बनवाये, श्रावक बन्धुओंको सन्तुष्ट किया, और मुनिराजकी भक्ति करने लगा। किसीने ठीक ही कहा है, कि सत्सङ्गसे क्या नहीं मिलता?

धीरे धीरे चन्द्रकुमार आठ वर्षका हुआ तब एक गुरुके निकट रख उसे विद्याध्ययन आरम्भ कराया गया और कुछ ही दिनोंमें उसने बृहस्पतिके समान सभी विद्या और कलाओंमें पारदर्शिता प्राप्त कर ली। यह सच है, कि उत्तम जीवोंके लिये विद्यागुरु केवल साक्षी रूप ही होते हैं।

कुछ दिनोंके बाद ऋतुराज वसन्तका आगमन हुआ। सभी वन उपवन फल-फूलोंसे सुशोभित हो उठे। कामोद्दीपनके साधनोंमें वृद्धि हुई। आम्रके बौर खाकर कोयल भी कूकने लगी। पुष्प-लताएँ वायुकी हिलोरोंसे झूम-झूमकर मानो कामी जनोंको निमन्त्रण दे रही थीं। ऐसे ही मनोहर समयमें आभानरेश अपनी दोनों रानियाँ

और समस्त परिवारको साथ ले, उद्यानमें क्रीड़ा करने गये और वहाँ स्वेच्छानुसार अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने लगे। कोई गुलाल उड़ाता था, कोई केसरका रंग डालता था और कोई वृक्षमें हिंडोला बांधकर झूलेका आनन्द ले रहा था। चन्द्रकुमार अपनी अवस्थाके राजपुत्रोंके साथ फूलोंके गेंद बना बना कर खेलनेमें व्यस्त था। यह सब देख कर वीरमतीके हृदयमें ज्वाला धधक उठी और उसके हृदयका दुःख अश्रुओंके रूपमें उमड़ उमड़ कर मानो बाहर निकलने लगा।

वीरमतीको इस तरह उदास देखकर उसकी सखियाँ पूछने लगी,—"ऐसे आनन्दके समय आप प्रसन्न क्यों नहीं दिखायी देती? देखिये, कामदेवके समान आपके पति क्रीड़ा कर रहे हैं, चन्द्रकुमार भी आपके पास ही खेल रहा है, फिर आप क्यों शोक-निमग्न दिखायी देती हैं? क्या किसीने आपको कुछ कहा है या कोई अपराध किया है?"

वीरमतीने इन बातोंका कोई उत्तर न दिया। उसका ध्यान इस समय दूसरी ही ओर लगा हुआ था। चन्द्रकुमार तथा अन्यान्य बालक तरह-तरहके खेल खेल रहे थे, पर उसकी गोद सूनी थी। वह ठंढी साँसें ले-लेकर दुर्दैवको उलाहना दे रही थी। वह अपने

मनमें कह रही थी कि—"हे दैव ! मैंने उस जन्ममें ऐसे कौनसे पाप किये थे, जिनके कारण मेरी गोद सूनी पड़ी है ? जिस तरह बिना मनका प्रेम निःसार होता है, उसी तरह बिना पुत्रके मेरा जीवन भी निःसार है। जिस तरह जीव हीन देह, दीपक हीन गृह, सुगन्ध हीन पुष्प, जल हीन मेघ, ज्ञान हीन दया, मान हीन दान, मूर्ति हीन मन्दिर, दन्त हीन भोजन, कंठ हीन गान, जल हीन सरोवर और चन्द्र हीन रात्रि शोभा नहीं देती, उसी तरह पुत्र हीन कामिनी भी शोभा नहीं पाती। यह देश, नगर, राज्य, भंडार, महल, उपवन और ऋद्धि-सिद्धि मेरे किस काम आयेगी ? पुत्र रहित घरमें मुनि, अतिथि या पक्षी भी पैर नहीं रखते। संसारमें जिसके पुत्र है उसीका जीवन सफल है। बिना पुत्रका जीवन वास्तवमें निष्फल है।"

इस तरह वीरमती अपने मनमें तरह तरहके विचार कर रही थी। इसी समय समीपके आम्र वृक्षपर अचानक एक शुक आ बैठा। रानीको बहुत उदास देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठा। उसने मनुष्यकी बोलीमें कहा,—"हे सुन्दरी ! तू आनन्दके समय इस तरह शोक क्यों मना रही है ? तू क्यों रोती है ? तुझे क्या दुःख है ? कौन सी चिन्ता है ?"

शुकके यह वचन सुनकर रानीने ऊपर देखा तो शुक पर उसकी दृष्टि पड़ी। उसने चकित होकर कहा,—"हे शुक! तू एक पक्षी है। वनमें रहना और आकाशमें विचरण करना तेरा काम है। वनवासी तिर्यंच, प्रायः अविवेकी ही होते हैं। तू मेरे दुःखकी बात पूछ कर क्या करेगा? तुझे बतलानेसे लाभ ही क्या? यदि तू मेरा दुःख दूर कर सके तो मैं तुझसे अपना दुःख कहूँ, वर्ना मैं ऐसी मूर्ख नहीं हूँ जो सबके सामने अपना दुखड़ा रोती फिरूँ!"

रानीकी अभिमान पूर्ण यह बातें सुन, शुकने कुछ चिढ़कर कहा,—"अरी! तू अपने को बड़ी चतुर मान कर गर्व क्यों करती है? तू अपने मनमें यही कहती होगी, कि एक पक्षी क्या कर सकेगा? लेकिन मैं तुझसे बतला देना चाहता हूँ कि जो काम मनुष्य नहीं कर सकता, वह एक पक्षी कर सकता है।"

वीरमतीने कहा,—"कदापि नहीं। मैं तेरी यह बात नहीं मान सकती।"

शुकने कहा,—"यह तेरी नादानी है। तू पक्षियोंका कोई मूल्य ही नहीं समझती। पर देख, श्रीकृष्ण जैसे पुरुषोत्तमका वाहन (गरुड़) एक पक्षी ही है। सरस्वती का वाहन हंस भी एक पक्षी ही है। तूने सुना होगा,

कि एक पक्षीके अंडे समुद्र वहा ले गया था। फिर अनेक पक्षियोंको एकत्र कर समुद्रसे वह अण्डे किसने वापस लिये थे? एक पक्षीने ही। एक वणिक की स्त्री पतिकी अनुपस्थितिमें कामातुर हो कुपथगामिनी होनेके लिये तैयार हो गयी थी। उसे अनेक बातें सुनाकर कुकार्य करनेसे किसने रोका था? शुकने ही। नल और दमयन्तीका मिलन भी हंस की ही कृपासे हुआ था। हम पक्षी हैं तो क्या हुआ? यदि एक अक्षर पढ़ते हैं, तो उसे सदा याद रखते हैं। तुम लोग मनुष्य होकर पोथे-के-पोथे पढ़ डालते हो, लेकिन उससे कुछ भी सार-ग्रहण नहीं करते। शास्त्रकारोंने हमलोगोंको भी वही पद दिया है, जो मानव-जातिको दिया गया है। कहनेका तात्पर्य यह है कि हमलोग भी किसीसे कम नहीं हैं। केवल न्यायके लिये मुझे यह आत्मप्रशंसा करनी पड़ रही है। तुझे विश्वास करना चाहिये कि मैं कोई बात झूँठी नहीं कहता हूँ।"

शुककी चतुरतापूर्ण यह बातें सुनकर वीरमतीको बहुत ही आनन्द हुआ। उसने शुकसे कहा,—"तू बड़ा ही सच्चा और चतुर मालूम होता है। तेरी वाणी भी बहुत मधुर है। मुझे तू बहुत ही भला मालूम होता है। मैं तुझसे अपना दुःख अवश्य कहूँगी, लेकिन

पहले यह तो बतला कि तुझे यह सब बातें किसने सिखायीं हैं ?"

शुकने कहा,—"एक विद्याधर मुझे सोनेके पींजड़ेमें बन्दकर अपने पास बड़े यत्नसे रखता था। वही मुझे नयी-नयी बातें बतलाया और सिखाया करता था। एक दिन वह विद्याधर मुझे अपने साथ ले, मुनिराजकी वन्दना करने गया था। वहाँ मुनि-वन्दनासे मेरे पाप भी नष्ट हो गये। मुनिराजका उपदेश मुझे बहुत ही प्रिय मालूम हुआ। उन्होंने मुझे पींजड़ेमें बन्द देखकर, तिर्यंच-बन्धनसे लगनेवाले दोषोंका वर्णन किया। विद्याधरने मुनिराजका उपदेश सुनते ही मुझे बन्धन-मुक्त कर दिया। इस तरह मुनिराजने मेरा भी असीम उपकार किया। उसी दिनसे मैं चारों ओर स्वतन्त्रता-पूर्वक विचरण किया करता हूँ। आज मैं इधर आ निकला और इस वृक्षको सुन्दर देखकर, यहाँ बैठ गया। इसके बाद जो कुछ हुआ सो तुझे मालूम ही है। अब तू अपने दुःखका कारण बतला। मैं तुझे झूँठी सान्त्वना नहीं देता, जहाँ तक हो सकेगा, मैं तेरा दुःख अवश्य ही दूर करूँगा।"

शुककी यह बातें सुनकर रानी बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने अपना आन्तरिक दुःख शुकको बतलाकर कहा,—

"हे शुक भाई! यदि तुझे कोई मन्त्र-यंत्र या जड़ी-बूटी मालूम हो तो मुझे बतला, ताकि मैं पुत्रका मुँह देख सकूँ! अगर तेरी विद्या ऐसे वक्तमें काम न आयेगी तो फिर कब काम आयेगी? तुझसे अधिक कहनेकी मैं जरूरत नहीं समझती। आजसे तुझे मैं अपना भाई मानूँगी। यदि तू मेरा दुःख दूर कर देगा तो मैं तुझे नवलखा हार पहनाऊँगी, अच्छे-अच्छे भोजन खिलाऊँगी और तेरा बड़ा ही उपकार मानूँगी। मैं अब तेरी शरण में हूँ। मैंने निष्कपट भावसे तुझे सब बातें बतला दी हैं। अब तू किसी तरह मुझे एक पुत्र देकर, मेरा जीवन सार्थक कर!"

शुकने यह सारी बातें सुननेके बाद कहा,—"हे रानी! तू दुःखी मत हो। मेरी क्या शक्ति है जो मैं कुछ कर सकूँ, परन्तु ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण करेगा। मैं तो तुझे केवल उपाय बतलाऊँगा। आजसे मैं तुझे अपनी धर्म-माता मानूँगा। तेरे लिये मैं अपनी शक्तिभर चेष्टा करूँगा, इसलिये अब तू दुःख-चिन्ता छोड़कर शान्ति धारण कर।"

शुककी इन बातोंसे वीरमतीका चित्त कुछ शान्त हुआ। शुकने कुछ देर ठहर कर पुनः रानीसे कहा,—"हे रानी! अब मैं तुझे एक उपाय बतलाता हूँ, सो

सुन ! इस वनके उत्तर ओर एक उद्यानमें ऋषभदेव स्वामी का मन्दिर है। वहाँ चैत्री पूर्णिमाके दिन गायन-वादनका सामान साथ लेकर, बहुतसी सुन्दर अप्सराएँ उत्सव मनाने आती हैं। उनमें जो अप्सरा सबसे बड़ी होती है, वह नीले रंगके वस्त्र और नीलरत्नके आभूषण धारण करती है। यदि उसके वह वस्त्र किसी तरह हाथ लग जायें, तो तेरा इच्छित कार्य सिद्ध हो सकता है। तुझे शायद सन्देह होगा कि मैं यह सब क्या जानूं ? किन्तु बात यह है, कि गत वर्ष मैं उस विद्याधरके साथ वह उत्सव देखने गया था। इसीलिये मुझे यह सब बातें मालूम हैं। इस साल चैत्री पूर्णिमाके दिन तुझे वहाँ अकेले अवश्य जाना चाहिये और जिस तरह हो यह कार्य सिद्ध करना चाहिये।

यह कह वह शुक वहाँसे उड़ गया। उसके वियोगसे वीरमतीकी आँखोंमें आँसूभर आये। धीरे धीरे शाम हुई। महाराजा अपने परिवार सहित नगरको लौट आये। वीरमती भी उनके साथ अपने महल चली आयी।

समय बीतते देर नहीं लगती। कुछही दिनोंमें चैत्री पूर्णिमा भी आ पहुँची। वीरमतीको शुककी बातें अच्छी तरह याद थीं। किसी तरह दिन बीता और रात हुई। वीरमती वेश बदल, एक दासीको महल सौंप, अकेली

ही वहाँसे चल पड़ी। कहनेको तो वह अबला थी; परन्तु स्वार्थवश इस समय वह एक ऐसा कार्य करने जा रही थी, जिसके लिये पुरुषोचित साहस और वीरताकी आवश्यकता थी। स्वार्थ वास्तवमें ऐसी ही वस्तु है। सभी इसकी सिद्धिके लिये तन-मनसे चेष्टा करते हैं। लाभ हानि तो कर्मानुसार ही होती है, परन्तु लोग उद्योग करनेमें कसर नहीं रखते। वीरमती एक नारी थी, उसने कभी अकेले महलके बाहर पैर न रक्खा था, फिर भी वह निर्भीकतापूर्वक नगरके बाहर निकल, उस उद्यानकी ओर चली जा रही थी, जिसका पता उसे शुकने बतलाया था। आकाशमें निर्मल चन्द्र हँस रहा था और भूतल पर वन-लताओंके बीच चांदनी अठखेलियाँ कर रही थी। चारों ओरका दृश्य बहुत ही सुहावना मालूम होरहा था। परन्तु रानीका ध्यान इन बातोंकी ओर न था। वह तेजीके साथ अपना रास्ता तयकर रही थी। शीघ्रही उसे दूरसे जिन मन्दिर दिखायी दिया। शिखरके सिरे पर स्वर्णकलश और हवामें उड़ती हुई पताकाके कारण उसे पहचानते देर न लगी। वीरमतीने वहाँ पहुँचतेही सर्व प्रथम श्री ऋषभ प्रभुके दर्शन कर, अपने अविनयके लिये उनसे क्षमा प्रार्थना की। इसके बाद वह चुपचाप वहीं छिप रही।

थोड़ी ही देरमें अप्सराओंका दल भी वहाँ आ पहुँचा। उन्होंने पहले आदीश्वर प्रभुको नमस्कार कर केसर-चन्दनादिक उत्तम द्रव्योंसे उनकी द्रव्य-पूजा की। इसके बाद भावपूजाका आरम्भ हुआ। तरह तरहके बाजे सजाये गये, उनका सुर मिलाया गया। सब ठीक हो जानेपर गायन, वादन और नृत्य शुरू हुआ। क्रमशः सबोंने अपनी-अपनी कला प्रदर्शित की। घण्टों नाच-गानकी धूम मची रही और उन कोकिल कंठियोंके मधुर स्वरसे मन्दिर गूंजता रहा। अन्तमें श्रमित हो जानेपर वे सब बाहर निकलीं। मन्दिरके पासही एक पुष्करिणी थी। सबोंकी यह राय हुई कि पुष्करिणी में स्नान किया जाय! फिर क्या, सबोंने अपने अपने कपड़े वहीं रख, पुष्करिणीमें प्रवेश किया। इधर वीरमती तो ताक लगाये बैठी ही थी। इससे बढ़कर दूसरा मौका उसे और कौन मिल सकता था? अप्सराएँ ओटमें होते ही शुकके आदेशानुसार उसने प्रधान अप्सराके नीले वस्त्र उठा लिये। वस्त्र उठाकर वह फिर जिन-मन्दिरमें जा छिपी। इस बार उसने मन्दिरके द्वारभी अन्दरसे बन्द कर लिये। उसे इस विचारसे असीम आनन्द हो रहा था, कि अब उसका कार्य अनायास सिद्ध हो जायगा। वह पुत्रका मुँह देख सकेगी और लोग उसे बाँझ न कहेंगे।

उधर अप्सराएँ पूर्ण रूपसे निश्चिन्त थी। पुष्करिणीमें दीर्घकाल तक स्नान और जल क्रीड़ा करनेके बाद वे बाहर निकलीं। सबोंने अपने-अपने वस्त्र पहन लिये; किन्तु प्रधान अप्सराके वस्त्रोंका कहीं पता न था। अतः उसने सखियोंसे कुछ रुष्ट होकर कहा,—"मुझे ऐसी दिल्लगी अच्छी नही लगती। किसने बेमौके मेरी यह दिल्लगी की है? जिसने मेरे वस्त्र लिये हो वह तुरन्त देदे; वर्ना इसका नतिजा बहुत बुरा होगा।"

स्वामिनीकी यह बातें सुन सभी अप्सराएँ काँप उठीं। सबोंने चारों ओर खोज की, पर वस्त्र न मिले। अन्तमें उन्होंने हताश होकर कहा,—"हे! भगवती! हमलोग शपथ पूर्वक कहती हैं, कि हमने आपके वस्त्र नहीं लिये। आप हमारी स्वामिनी हैं। हमलोग आपसे दिल्लगी कर ही कैसे सकती हैं? फिर, ऐसी दिल्लगी करनातो और भी बुरा है। आप हम लोगों पर जरा भी सन्देह न करें। —परन्तु देखिये, हमलोग जब स्नान करने गयीं थीं, तब मन्दिरके द्वार खुले हुए थे, इस समय बन्द हैं। अतः सम्भव है कि कोई वस्त्र लेकर भीतर ही छिप रहा हो।"

सखियोंकी यह बात सुन स्वामिनीका ध्यान उस ओर आकर्षित हुआ। तुरन्त सब अप्सराएँ वहाँ दौड़

गयीं। मन्दिरके द्वार खट खटाये गये, पर कोई उत्तर न मिला। अन्तमें स्वामिनीने द्वारके पास जाकर कहा,— "मन्दिर में कौन है ? जो हो, वह बाहर निकले। रात बहुत थोड़ी रह गयी है और हमें अभी बहुत दूर जाना है। फिर, यह देवताओंके वस्त्र मनुष्योंके काम भी नहीं आ सकते। इस समय मुझे मेरे वस्त्र मिल जायँगे तो मैं समझूँगी कि तुमने मुझे दानमें दिये हैं। पर मुझे यह विलम्ब असह्य हो रहा है। तुम्हारा कोई काम होगा तो वह भी मैं कर दूँगी। मेरे वचन पर विश्वास कर, मन्दिरके अन्दर स्त्री या पुरुष—जो कोई हो, बाहर आये और मेरे वस्त्र लिये हो वह मुझे दे दे!

प्रधान अप्सराकी यह बातें सुन-वीरमती तुरन्त मन्दिरके द्वार खोलकर बाहर निकल आयी। उसे देखकर अप्सराओंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वीरमतीने कहा,— "हे भगवती! मैं आपके वस्त्र देनेको तैयार हूँ; परन्तु पहले मेरा कार्य कर दीजिये।"

अप्सराने कहा,—"अच्छी बात है। पहले यह बतलाओ कि तुम क्या चाहती हो ?"

वीरमतीने कहा,—"मेरी सौतके चन्द्रकुमार नामक पुत्र है; पर मेरी गोद खाली है। मैं शुककी बात मानकर यहाँ आयी हूँ। मैंने ही आपके वस्त्र लिये हैं,

यदि मुझसे अपराध हुआ हो, तो क्षमा करें ; पर मुझे किसी तरह एक पुत्र अवश्य ही दें। बिना पुत्रके मेरा जीवन भार-रूप हो रहा है। यही एकमात्र मेरी कामना है।"

वीरमतीकी यह याचना सुन, अप्सरा कुछ विचारमें पड़ गयी। उसने अवधि ज्ञानसे देख कर कहा,—"हे वीरमती! तेरे भाग्यमें पुत्रयोग नहीं है, इसलिये तुझे पुत्र देना मेरे लिये असम्भव है, परन्तु मैं तुझे आकाश-गामिनी, शत्रु-बल-हरणी, विविध-कार्य्य-करणी, जल-तरणी आदि विद्याएँ देती हूँ। इन्हें सिद्ध करनेसे राज्य भी तेरा हो जायगा, प्रजा भी तेरी हो जायगी और चन्द्र-कुमार भी तेरा ही होकर रहेगा। किन्तु तुझे अपने हृदयसे यह विचार निकाल देना होगा, कि वह तेरी सौतका पुत्र है। उसे तू अपना ही पुत्र मानना और भूल कर भी उसे कभी कोई दुःख न देना। उसे दुःख देनेसे तेरा अकल्याण होगा।"

अप्सराकी यह बातें सुन वीरमतीको परम सन्तोष हुआ। उससे विद्याएँ ग्रहण करनेके बाद उसने उसके वस्त्र दे दिये। अप्सराओंका कार्य पूरा हो चुका था, इसलिये वे अपना साज-सामान उठाकर तुरन्त चलती बनी। वीरमती भी ऋषभ प्रभुको नमस्कार कर अपने

महल लौट आयी। राजा या किसी दूसरे पर यह भेद प्रकट न हुआ।

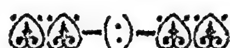
दूसरेही दिनसे वीरमतीने उन विद्याओंकी साधना आरम्भ कर दी। कुछ दिनोंमें वे सब विद्याएँ सिद्ध हो जाने पर वह अपना सारा दुःख भूल गयी और आनन्द-से अपने दिन व्यतीत करने लगी।



तीसरा परिच्छेद



वीरसेन और चन्द्रावतीका दीक्षा-ग्रहण



वीरमती अनेक विद्याओंकी प्राप्तिके कारण मदोन्मत्त और निर्भय बन गयी। उसे यह विद्याएँ क्या मिल गयीं, मानों सर्पको पंख मिल गये—सिंहके हाथ बन्दूक लग गयी। एक तो करेला, दूजे नीम चढ़ा। वह भयंकर तो थी ही, अब और भी अधिक भयंकर बन गयी। मन्त्रादिकके प्रयोग द्वारा उसने अपने पति आदिको वश कर लिया और देश-विदेशमें चारों ओर उसका नाम हो गया।

इधर चन्द्रकुमारने भी बाल्य और किशोरावस्था अतिक्रमण कर यौवनावस्थामें पदार्पण किया। राजा वीरसेनने जब देखा कि उसकी अवस्था विवाह करने योग्य हो गयी है, तो उन्होंने गुणावली नामक एक राजकुमारीके साथ ब्याह कर दिया। वह राजा गुण-

शेखरकी पुत्री थी। रूपमें वह रम्भा और गुणोंमें सच-मुच गुणावली ही थी। उन दोनोंका विवाह, मानो मणि-काञ्चनका संयोग था। चन्द्रकुमार अपने अनुरूप पत्नीको पाकर, अपने दिन बड़े ही आनन्दसे निर्गमन करने लगा। अप्सराके आदेशानुसार, वीरमती भी अब उससे बहुत प्रेम करने लगी थी। कभी कभी तो उसका प्रेम सगी मातासे भी बाजी मार ले जाता था।

एक दिन राजा वीरसेन रानी चन्द्रावतीके साथ एकान्तमें बैठे हुए थे। उस समय चन्द्रावती उनके केशोंमें सुगन्धित तेल लगा, सोनेका कंघा फेरने लगी। कंघा फेरते-फेरते राजाके शिरमें एक सफेद केश रानीको दिखायी पड़ा। उसे देखते ही उसका मुख इस प्रकार संकुचित हो गया, जिस प्रकार दिनके समय कुमुदिनी संकुचित हो जाती है। विषादकी काली घटाने उसके मुख-मण्डलको मलीन बना डाला। उसने राजासे कहा,—"स्वामिन्! देखिये, दूत आ पहुँचा! आपने अनेक शत्रुओंको पराजित किया, किसीको भी अपने पास न फटकने दिया, परन्तु इस दूतको आप दूर न कर सके। सचमुच यह बहुत ही निडर और दुस्साहसी है!"

रानीकी यह बातें सुन राजाने चारों ओर देखा; परन्तु उसे कहीं कोई मनुष्य दिखायी न दिया। उसने

रुष्ट होकर कहा,—"ऐसा कौन दूत है, जिसने बिना आज्ञाके अन्तःपुरमें प्रवेश करनेका साहस किया है? इस अपराधके लिये उसे मैं अवश्य ही कड़ी-से-कड़ी सजा दूँगा!"

रानीने कहा,—"नाथ! आप क्रोध न करें। और किसकी हिम्मत है, जो यहाँ पैर रक्खे? मुझे आप के शिर पर एक सफेद केश दिखायी दिया था, वह जरा बुढ़ापेका दूत है। उसीकी ओर मैंने आपको संकेत किया था।"

यह सुनते ही वीरसेनका क्रोध हवा हो गया। वे कुछ उदास हो गये और अपने मनमें कहने लगे,—"अहो! जराने मुझे भी न छोड़ा! सुनते हैं कि शिवने कामदेवको जला दिया था। यदि उन्होंने इसे भी जला दिया होता, तो मेरी तरह किसीको शोक-संतप्त न होना पड़ता! जिस तरह धोबी काले वस्त्रोंको सफेद बना देता है उसी तरह यह पापी जरा भी काले केशोंको सफेद कर डालता है। हे चित्त! अब तुझे सावधान हो जाना चाहिये। यही समय है। जिस समय यह जरा बाहर प्रकाश (उज्ज्वलता) करे, उस समय तुझे भी अपने अन्दर प्रकाश फैलानेमें लग जाना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इस राज्यसे तो अन्तमें

चन्द राजाः—



वामिन ! देखिये, दूत आ पहुँचा ! [पृष्ठ २६]

नरककी ही प्राप्ति होगी, फिर तू इसमें क्यों फँसा है ? हे आत्मा ! तुझे इस जराका उपकार मानना चाहिये, क्यों कि यही इस समय तुझे परमात्माके गुणका अंश प्रकट करनेमें सहायक हो रहा है। इस संसारमें जराका ही अटल साम्राज्य है। किसकी मजाल है जो इसकी आज्ञाको उल्लंघन कर सके ? यह कागको भीं हँस बनाता है। जो इसकी आज्ञा पालन नहीं करते और स्वादेन्द्रियके फेरमें पड़कर संसारमें ही पड़े रहते हैं, उन्हें यह कठोर दण्ड देता है। रसना और दाँतोमें बड़ी घनिष्टता रहती है। जरा दाँतोको गिराकर रसनाको असहाय बना देता है। उज्ज्वल केश मानो जराधिपकी उड्डीयमान पताकाएँ हैं। इसका आक्रमण होते ही काम-सुभट मिट्टीमें मिल जाता है—नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। मुझे भी इसकी सत्ता माननी ही चाहिये और स्त्री तथा परिवार आदिका त्याग कर चारित्र स्वीकार करना चाहिये।"

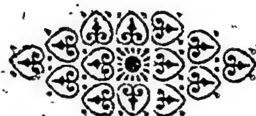
मनमें यह विचार कर राजा ने चन्द्रावतीसे कहा,—"प्यारी ! अब मैं इस राज्य-भारके बदले संयम-भार स्वीकार करना चाहता हूँ। अब तक भोग भोगनेसे तृप्ति ही न होती थी, परन्तु इस जरा-दूतको देखकर, मुझे उनकी ओरसे मुँह फेर लेने की इच्छा होती है।

यह ऐश्वर्य और भोग मुझे अब असार और नीरस प्रतीत हो रहे हैं।"

राजाकी यह बातें सुन चन्द्रावती उदास हो गयी। वह राजासे ऐसी विरक्ति-सूचक बात कहनेके लिये मन-ही-मन पश्चाताप करने लगी। उसने विषयोत्पादक अनेक बातें कह कर, राजाके विचार बदलनेकी चेष्टा की; पर वे किसी तरह टस-से-मस न हुआ। चन्द्रावतीका जब कोई बस न चला, तो उसने वीरमतीको इसका जिक्र किया। फलतः दोनोंने एक साथ मिलकर राजाको समझाया, परन्तु इसका भी कोई फल न हुआ। उन्होंने एकबार जो निश्चय किया था, वह बहुत सोच-समझ कर ही किया था अतः वह हिमालयकी तरह अटल था। चन्द्रावतीने जब देखा कि राजाके विचार किसी तरह भी पलटे नहीं जा सकते तब उसने कहा,—"प्राणनाथ! यदि आपने वास्तवमें चारित्र-ग्रहण करने का निश्चय किया है तो मैं उसमें बाधक नहीं होना चाहती। परन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है कि कृपाकर मुझे भी चारित्र ग्रहण करनेकी आज्ञा प्रदान कीजिये। मैं भी आपके साथ ही चलूँगी और अपने जीवनका शेष समय धर्म-कार्यमें व्यतीत करूँगी।

राजाने चन्द्रावतीकी यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर

ली । दोनों जन चारित्र ग्रहण करनेकी तैयारी करने लगे। चन्द्रकुमारको वीरमतीके सिपुर्द कर राजाने उसे सिंहासन पर बैठाया और उसे विविध उपदेश दे, शुभ मुहूर्तमें रानीके साथ चारित्र ग्रहण कर लिया । तदनन्तर राजर्षि वीरसेन और साध्वी चन्द्रावती निरतिचार चारित्रका पालन कर, कालान्तरमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामीकी कृपासे केवल ज्ञान प्राप्त कर सिद्धि-सुखके अधिकारी हुए ।



चौथा परिच्छेद



गुणावली और वीरमती



वीरसेन और चन्द्रावतीने दीक्षा ले ली। चन्द्रकुमार अभी नवयुवक ही था, इसलिये वीरमतीके शिरपर अब कोई न रहा। वह परम स्वतन्त्र हो गयी। एक दिन उसने चन्द्रकुमारको एकान्तमें बुलाकर कहा,—"प्यारे पुत्र! तुम अभी निरे बालक हो। तुम्हारे माता पिता तुम्हारे शिर बहुत बड़ा दायित्व डाल कर चले गये हैं, परन्तु मैं जब तक जीवित हूँ, तब तक तुम्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। मुझमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि यदि तुम कहो तो तुम्हारे लिये इन्द्रका इन्द्रासन प्राप्त करा दूँ। तुम कहो तो सूर्य्यके रथमें जुते हुए रेवन्त अश्व लाकर तुम्हारी अश्वशालामें बँधवा दूँ। कहो तो समूचा कञ्चनगिरि यहाँ उठा लाऊँ। कहो तो देवकन्या लाकर उससे तुम्हारा ब्याह करा दूँ।

इन बातोंमें लेशमात्र भी असत्य नहीं है। तुम्हारे लिये मैं सभी कुछ कर सकती हूँ; परन्तु तुम्हें भी एक बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि मैं प्रसन्न होने पर तुम्हारे लिये रसवल्लरी और अप्रसन्न होने पर विषवल्लरी बन सकती हूँ। यदि जवानीके फेरमें पड़ कर तुम मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन करोगे, यदि मेरी बिना आज्ञाके कोई काम करोगे या मेरे छिद्र देखोगे, तो उसका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। उस अवस्थामें तुम्हें मैं अपना शत्रु समझूँगी और तुम्हें कठोरसे कठोर दण्ड देनेमें भी संकोच न करूँगी।"

चन्द्रकुमार बहुत ही विनम्र था, अतः विमाता की यह बातें सुन उसने हाथ जोड़कर कहा,—"माताजी! मेरी ओरसे आप निश्चिन्त रहिये। मैं सदा आपकी आज्ञा पालन करूँगा। मेरे और कौन बैठा है? आप ही मेरी माता, आप ही मेरे पिता, आप ही मेरे अन्नदाता, आपही मेरे राजा और आप ही मेरे लिये ईश्वर रूप हैं। मुझे तो केवल दो रोटियोंसे काम है। यह समस्त सम्पत्ति, समस्त राज भोग आपके ही हैं। मेरे लिये तो आपकी कृपा बनी रहे, इसीमें मुझे परम प्रसन्नता है। और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं है।"

चन्द्रकुमारकी इस प्रकार विनयपूर्ण बातें सुन वीरमती बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने कहा,—"प्यारे पुत्र! तू

समस्त सुख-सम्पत्ति उपभोग कर। मेरा जीवन भी तेरे ही लिये है। तुझे मैं यही आशीश देती हूँ कि तेरा कल्याण हो। देवतागण तेरा मङ्गल करें और तू दीर्घायु हो! यह कह उसने चन्द्रकुमारको विदा किया।

चन्द्रकुमारने अब धीरे धीरे राज्यका सारा भार सम्हाल लिया। उसे सद्गुणोंकी खान और सौन्दर्यकी आगार गुणावली जैसी सुशीला पत्नी मिली थी। वह उसके साथ चतुर हंसकी तरह सांसारिक सुखोंका रसास्वादन करता था। कामकला कुशल गुणावली भी उसे अनिर्वचनीय सुखोंका रसास्वादन कराती थी। पति-पत्नी दोनों क्षीर और नीरकी तरह एक रूप हो थे और एक प्राण दो देहकी कहावत चरितार्थ कर रहे थे। यह सब पूर्वजन्मके सुकृत्योंका ही फल था।

चन्द्रकुमारको अब सब लोग प्रेमके कारण 'चन्द राजा' के नामसे पुकारते थे। वह जैसे ऐश्वर्यका उपभोग करना जानते थे, वैसे ही प्रजा-पालन करनेमें भी अपना सानी न रखते थे। उनका सुयश दूर दूर तक छा गया था। उनकी राज-सभा दर्शनीय और आदर्श मानी जाती थी। कविने उसके साथ षट् ऋतुओंकी तुलना निम्नलिखित शब्दोंमें की थी:—

कामदेवके समान नवतरुण और रूपवान राजा चन्द

सिंहासन पर इस तरह शोभायमान हो रहे थे, मानों उदयाचल पर सूर्य शोभायमान हो रहा है। उनके सामने हाथियों का दल खड़ा खड़ा झूम रहा है। उन हाथियों के श्याम शरीर मानों मेघ-घटाके समान मालूम हो रहे थे, उनका मद-जल वर्षाकी तरह प्रतीत हो रहा था, उनके सुफेद-चमकीले दाँत बिजलीकासा भास करा रहे थे, और उनकी भयङ्कर चिग्घाड़ मेघ-गर्जनाका ज्ञान करा रही थी। इन सबोंके कारण राजा चन्दकी सभामें मानों प्रत्यक्ष वर्षा-ऋतु बिराज रही है।

राजा चन्दकी राज-सभाके सम्मुख उत्तम उत्तम अश्व अपनी गति दिखा रहे थे। उस समय उनकी नासिकासे झरनेवाले रसको देख कर केसरकीसी पिचकारियोंका और मुँहसे निकलनेवाले फेनको देख कर अबीर गुलालका भास होता था। इससे मानों वहाँ प्रत्यक्ष वसन्त-ऋतु विराज रही है।

राजा चन्दके चन्द्र-मुखसे अमृत-रूपी वचनों की वर्षा होती थी, प्रजा अपने कर्णरूपी सीपोंसे उसका पान करती थी और इसके फल स्वरूप अभिनव मुक्ताफलोंकी उत्पत्ति होती थी। इन सब बातोंके कारण ऐसा मालूम होता था, मानों राजा चन्दकी सभामें प्रत्यक्ष शरद-ऋतु बिराज रही है।

राजा चन्दके लिये चारों ओर से नित्य नयी नयी भेटें आती थी। उन भेटोंके कारण राज-सभामें इस तरह ढेर लग जाता था, जैसे खलिहानमें कृषक अन्नके ढेर लगाता है। इस दृश्यसे ऐसा भास होता था, मानों राज-सभामें प्रत्यक्ष हेमन्त-ऋतु बिराज रही है।

राजा चन्दकी राज-सभामें नित्य नये नये राजा आकर उसकी अधीनता स्वीकार करते हैं। इन राजाओं के मुख इस तरह मुरझाये हुए मालूम देते हैं, जिस तरह हिमके कारण कमल मुरझा जाते हैं और भयके कारण वे इस तरह काँपते हैं, जैसे शीत-कालमें शीतके कारण मनुष्य पते हैं। राज-सभाके इस दृश्यसे ऐसा मालूम होता था, मानों वहाँ प्रत्यक्ष शिशिर-ऋतु बिराज रही है।

जिस तरह ग्रीष्म-ऋतुमें मनुष्यको कहीं शान्ति नहीं मिलती, उसीतरह चन्द राजाके शत्रुओंको नगर, घर या वनमें कहीं भी शान्ति नहीं मिलती। उन्हें शान्ति केवल उसी अवस्थामें मिलती है, जब वे उसकी छत्र-छायाके नीचे आकर—उसकी शरणमें आकर—स्थिर होते हैं। राज-सभाका यह दृश्य देखकर ऐसा भास होता था, कि मानों ग्रीष्म ऋतु प्रत्यक्ष वहाँ बिराज रही है। इस तरह राजा चन्दकी सभामें एकही साथ षट् ऋतुओंका ज्ञान हो रहा था।

राजा चन्द्रकी सभामें सदा पांच सौ पण्डित उपस्थित रहते थे। वे षड् शास्त्रोंके ज्ञाता और बुद्धिमें सुर-गुरुके समान थे। अपनी पाण्डित्यता दिखाने और राजाका मनोरंजन करनेके लिये वे परस्पर वाद-विवाद-शास्त्र-चर्चा किया करते थे। षड्दर्शनके पण्डित अपने दर्शनकी विशेषता सिद्ध करनेमें व्यस्त रहते थे। चार्वाक केवल प्रत्यक्ष प्रमाणको ही मानते थे और समूचे जगतको शून्य बतलाते थे। सौगत—बौद्ध सभी वस्तुओंको क्षणिक मानते थे। वैशेषिक शब्द प्रमाणको ही प्रमाण मानते थे। सांख्य शब्द और अनुमान दोनोंको प्रमाण मानते थे। नैयायिक प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान इन चारोंको प्रमाण मानते थे। जैन प्रत्यक्ष और अनुमान (परोक्ष) दो प्रमाण मानते थे। किन्तु कोई कहता कि यह समस्त जगत कर्ता (ईश्वर) का बनाया हुआ है। कोई कहता था कि यह सब ज्ञानमय है। कोई कहता था कि यह सब स्वभावसे हुआ है। कोई कहता था कि यह समस्त जगत शश-श्रृंग या वन्ध्या पुत्रकी तरह मिथ्या भ्रम-रूप है। इस तरह अन्ध-गजके न्यायसे, सभी अपनी अपनी बातों को सिद्ध करने की चेष्टा करते थे। वैयाकरणी अनेक प्रकारसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति कर सभा जनोंका मनोरञ्जन करते थे। वेद-पाठी वेदका उच्चार

करते थे, साहित्यिक साहित्य-चर्चा करते थे और कविलोग रस, अलंकार तथा समस्या- पूर्ति में अपनी पाण्डित्यताका परिचय देते थे। पौराणिक रामायण आदिकी कथाएँ सुनाते थे। वैद्यक शास्त्रके ज्ञाता जल, अन्न, दूध, वृक्ष, फल, पत्र, और पुष्पादिकके गुणोंका वर्णन कर आदान, निदान तथा चिकित्सा आदिकी चर्चा करते थे। ज्योतिषी गृहोंकी गणनाकर उनकी गति और फलाफलका वर्णन करते थे। गणित शास्त्री गणितकी गुत्थियाँ सुलझाते थे और घण्टोंमें हल होनेवाले प्रश्न मिन्टोंमें हल करते थे। इसी तरह हर एक विषयके पण्डित अपने अपने प्रिय विषयों द्वारा राजा चन्द और सभाजनोंका मनोरंजन करते थे और राजा चन्द भी उन्हें यथोचित दान देकर सम्मानित करनेमें कोई कसर न रखते थे।

राजा चन्दकी यह सभा देखकर चन्द्र और सूर्य भी चकित होकर कुछ देरके लिये स्तम्भित हो जाते थे। इसकी शान इन्द्र-सभासे किसी तरह कम न थी। राजा चन्द भी सभाजनोंमें इस तरह शोभा देते थे, जैसे नक्षत्रों-में चन्द्र शोभा देता है। जिस तरह इन्द्र-सभामें बृहस्पति मन्त्रीका स्थान सुशोभित करते थे, उसी तरह राजा चन्दकी सभामें भी कई बुद्धिमान मन्त्रीगण अपने पदोंको सुशोभित करते हुए, राज-तन्त्रके सञ्चालनमें राजाका हाथ बँटाते थे।

इस तरह राजा चन्दकी जीवन नौका संसार सागरमें बड़ी सरलताके साथ अग्रसर हो रही थी, परन्तु 'सबै दिन नाहिं बराबर जात !' इस प्रशान्त सागरमें तूफ़ानकी लहर आनेमें अब अधिक समयकी देरी न थी। वीरमतीके हाथोंसे शीघ्रही उसका सूत्रपात होने वाला था। बेचारा चन्द्रकुमार भी, अन्यान्य सांसारिक प्राणियोंकी तरह, इस होनीसे बिलकुल अनभिज्ञ था।

एक दिनकी बात है, राजा चन्द भोजन-कार्य से निवृत्त हो अपने राज-काजमें लग चुकेथे। रानी गुणावली भी भोजन कर चुकी थी। अब हास्य-विनोदमें समय काटनेके सिवा उसे और कोई काम न था, इसलिये अपनी सखियोंके साथ वह राज-महलके एक झरोखेमें जाकर बैठ गयी। शीघ्र ही अनेक दासियोंने चारों ओरसे उसे घेर लिया। कोई पंखा फेर रही थी, कोई पान दे रही थी, कोई जल-पात्र लेकर खड़ी थी, कोई विलेपन सामग्री ला रही थी, कोई कुंकुम छिड़क रही थी, कोई दर्पण लेकर खड़ी थी, कोई पुष्प-माला तैयार कर रही थी, तो कोई विनोद पूर्ण बातें कहकर अपनी स्वामिनीको हँसानेकी चेष्टा कर रही थी। उस समय ऐसा मालूम होता था, मानों स्वर्गलोक की सुर-सुन्दरियाँ मन बहलानेके लिये इस मृत्युलोकमें उतर आयी हैं। उन्हें

देखनेके लिये सूर्य भी आकाशमें स्तम्भित हो गया सूर्यके प्रकाशमें स्वभावतः कुमुदिनी मुरझा जाती है, परन्तु गुणावलीके विषयमें यह बात न थी। वह तो इस समय ऐसी खिल रही थी, जैसे चन्द्रके प्रकाशमें कुमुदिनी खिलती है।

इस तरह रानी गुणावलीके महलमें आनन्द की हिलोरें उठ रही थी। इतनेहीमें दासियोंने दूरसे वीरमती को उस ओर आते देख कर तुरन्त गुणावलीको इसकी सूचना दी। एक मुँहलगी सखीने कहा,—"प्यारी बहिन! उठो, और खड़ी होकर अपनी सासका स्वागत करो। वह होना सहज नहीं है। हमारे शिरपर जैसे आप हैं, वैसे ही आपके शिर पर वे हैं। आपके पति देव भी तो उन्हींकी आज्ञाका अनुसरण करते हैं!"

सखीकी यह बातें सुन, गुणावली उठ खड़ी हुई और कुछ दूर आगे जाकर सम्मानपूर्वक वीरमतीको अपने महलमें लिवा लायी। पश्चात् वीरमतीके आसन ग्रहण करने पर गुणावलीने उसके पैर पकड़ कर कहा,—"माताजी! आज मेरा अहो भाग्य है, जो आपका यहाँ शुभागमन हुआ। निःसन्देह आज आपने यहाँ पधार कर मुझे बड़ा ही सम्मान दिया है। अब शीघ्र कहिये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

गुणावलीकी यह विनयपूर्ण बातें सुन वीरमतीको बहुत ही आनन्द हुआ। उसने गुणावलीके शिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहा,—"जब तक आकाश-मण्डलमें ध्रुवनक्षत्र अचल रहे, तब तक तेरा सौभाग्य अचल रहे।" तदनन्तर उसने बड़े प्रेमसे गुणावलीको अपने पास बैठाकर कहा,—"प्यारी बहू! मैं किसी विशेष कार्यसे यहाँ नहीं आयी, बल्कि कई दिनोंसे तुझे देखनेकी इच्छा थी, इसीसे चली आयी। बहू! तू वास्तवमें अपने नामके अनुसार ही गुणावली है। साथ ही तू कुलवान और विनयवती है। तेरे मुँहसे ऐसे वचनोंका निकलना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। चन्द्रसे अमृतकी वर्षा हो, कमलसे सुवासका प्रसार हो, साँठेसे मधुर रस निकले और चन्दन शीतलता प्रदान करे, तो उसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है। प्यारी बहू! तेरी आयु कोटि वर्षकी हो। तू मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारी है। तुझे जिस वस्तुकी आवश्यकता हो, वह मुझसे सहर्ष माँग लेना। इसमें जरा भी संकोच करनेकी जरूरत नहीं है। यदि मेरा पुत्र तुझे कोई कष्ट दे तो मुझसे कहना, मैं उसे उलाहना दूँगी। मेरे लिये तुम दोनों ही समान हो—दो नेत्रोंके तुल्य हो। मैं तुझे भी पुत्रीके समान ही मानती हूँ। मेरे और कोई

थोड़ा ही बैठा है, मैं तो तुम्हीं दोनोंको देख कर जी रही हूँ। तेरा आचरण और व्यवहार देखकर मुझे विश्वास हो गया है, कि तू मेरी आज्ञा कभी भी उल्लंघन न करेगी। मैं भी आज तुझसे यह बतला देना चाहती हूँ कि यदि तू मेरी आज्ञानुसार आचरण करेगी, सदा मेरा कहना मानेगी तो यह विद्याएँ आदि जो कुछ मेरे पास है, वह सब तेरा ही है। इसे तू अपना ही समझ इसमें लेशमात्र भी असत्य नहीं है।"

इस तरहकी बातें कहकर वीरमती गुणावलीको फुस लानेकी चेष्टा करने लगी। गुणावलीकी प्रकृति बहुत ही सरल थी। वह अपने भोलेपनके कारण वीरमतीकी यह दुरभिसन्धि न समझ सकी। वह उसकी समस्त बातों को सत्य ही मान रही थी। सास और बहुको घुल घुलकर बातें करते देख, सब सखी और दासियाँ इधर उधर हो गयीं। वीरमतीने एकान्त देख, गुणावलीके कानोंमें फिर विष ढालना शुरू किया। वह बोली,—"प्यारी बहू! तू राज-पुत्री है और मेरा पुत्र तेरा स्वामी है, इसलिये तू अपने मनमें फूली न समाती होगी। परन्तु मैं तो तेरा जीवन भार-रूप ही मान रही हूँ। मुझे तो तेरे जीवनमें आनन्द जैसी कोई वस्तुही नहीं दिखायी देती!"

गुणावलीने चौंककर कहा,—"माताजी! आप यह क्या कहती हैं? मुझे कमी किस बातकी है? हाथी, घोड़ा, रथ, कंचन, रत्न वस्त्राभूषण आदि सभी वस्तुएँ मौजूद हैं। पानी माँगती हूँ तो दूध मिलता है। दास-दासी सदा हाथ बाँधे खड़े रहते हैं। परिवार भी जैसा चाहिये वैसा ही मिला है। आपकी छत्र छायाके कारण माता पिता या गुरुजनोंका अभाव भी नहीं खटकता। मैं तो समझती हूँ कि मेरे समान सुखी स्त्री इस पृथ्वी-मण्डलमें शायद ही कोई और होगी।"

वीरमतीने गुणावलीका हाथ पकड़ कर कहा,—"प्यारी बहू! तू सचमुच बहुत भोली है। संसारमें ऐसे भी मनुष्य होते हैं जो होंठ हिलतेही बात समझ जाते हैं, परन्तु इतना स्पष्ट कहने पर भी मेरी बातोंका तात्पर्य तेरी समझमें न आसका। संसारमें चतुरता ही प्रधान वस्तु है। धन और रूप तो मूर्खको भी मिल सकता है, परन्तु उससे कोई काम नहीं निकलता। गुणीजन तो गुण ही देखते हैं। किंशुकके फूल देखनेमें कितने सुन्दर होते हैं! उनका रंग कितना मनोहर होता है, परन्तु निर्गन्ध होनेके कारण उन्हें कोई हाथ भी नहीं लगाता। तू केवल वस्त्राभूषण धारण करना जानती है, तुझे केवल मीठी मीठी बातें बोलनेका ज्ञ

है, परन्तु चातुरी तो लेशमात्र भी नहीं है। एक ओर चारों वेद ओर दूसरी ओर केवल चतुराई—दोनों ही समान हैं। यह मेरा नहीं बड़े बड़े विद्वानोंका कथन है। तू अपने मनमें समझती होगी, कि मैं बहुत ही चतुर हूँ, परन्तु मुझे तो तेरी बातोंसे स्पष्ट मालूम हो गया, कि तू एक पशुसे भी गयी बीती है।"

सासकी यह बातें सुन गुणावली विचारमें पड़ गयी। वह अपने मनमें सोचने लगी, कि मैंने ऐसा कौनसा काम किया या ऐसी कौनसी बात कह डाली जिससे माताजी ऐसी बातें कह रही हैं। उसने हाथ जोड़कर कहा,—"माताजी ! मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा करें; परन्तु यह बात मेरी समझमें नहीं आती कि आज आप ऐसी बातें क्यों कह रही हैं ? बड़ोंके सामने बच्चे सदा ही नादान रहते हैं। इस दृष्टिसे मुझे मूर्ख और नादान आप भले ही कहें; परन्तु किसी दूसरी दृष्टिसे मैं अपने जीवनको हेय नहीं मानती। आपके आशीर्वादसे मुझे ऐसे पति-देव मिले हैं, जिनके समान कोई दूसरा पुरुष मुझे इस संसारमें दिखायी ही नहीं देता। ऐश्वर्य और सुख-सम्पत्तिकी भी हमारे यहाँ कोई कमी नहीं है, ऐसी अवस्थामें आप मुझे पशुओंसे भी गयी बीती क्यों मान रही हैं ?"

वीरमतीने गंभीरतापूर्वक कहा,—"प्यारी बहू ! तू अपने पतिके लिये इतना अरमान क्यों कर रही है ? वह बेचारा है किस हिसाबमें ? यदि तू दूसरे पुरुषोंको देखे तो तुझे मालूम हो, किन्तु कूएका-मेण्ढक समुद्रका हाल कैसे जान सकता है ? कुब्जा रति-रूपका हाल क्या जाने ? जिसने अंगूर नहीं खाया, उसे नीमके फल भी मीठे ही मालूम होते हैं। शहरमें रहनेवालोंका ठाठ-बाट जंगली आदमी कैसे जान सकते हैं ! जो सदा कम्बलही ओढ़ता है, वह शाल-दुशालेका हाल क्या जाने ? जिसने कभी महल नहीं देखा, उसे कुटीही भली मालूम होती है। तेलीका बैल दुनियाका हाल नहीं जान सकता। तू अधिकसे अधिक इस महल और इस नगरका ही हाल जान सकती है। इसके बाहर, कहाँ क्या है, इसका तुझे पता नहीं लग सकता। परन्तु संसारमें कामदेवको भी मात करनेवाले एक-से-एक बढ़कर सुन्दर पुरुष पड़े हुए हैं। इस महलके कोनेमें बैठी बैठी तू उनका हाल कैसे जान सकती है ?"

गुणावलीने कुछ अप्रसन्न होकर कहा,—"माताजी ! ऐसी बातें हरगिज न कहिये। तारे अनेक होते हैं, पर चन्द्र तो एक ही होता है। शृगाल अनेक होते हैं; पर सिंह तो एक ही होता है। मृग अनेक होते हैं,

परन्तु कस्तूरी मृग विरला ही होता है। कहाँ आपका प्यारा पुत्र चन्द और कहाँ दूसरा पुरुष? मैं तो अन्य पुरुषोंको उनके नखके समान भी नहीं मानती। जिसके द्वारपर हाथी झूम रहा हो, उसे गधेकी ओर क्यों देखना चाहिये? जहाँ कल्पवृक्ष मौजूद हो, वहाँ एरण्डको कौन पूछता है? आपके पुत्रको पतिरूपमें पाकर मेरा जीवन तो सफल हो गया है। मेरे लिये वही सब कुछ हैं। वही मेरे लिये भगवान और वही मेरे लिये कामदेव हैं। आपने यह कहावत नहीं सुनी, कि जो 'थालीमें आये, वही मिष्टान्न'! पर पुरुष, चाहे जितने सुन्दर हों, उनसे मैं सौभाग्यवती थोड़ेही कहलाऊँगी?"

यह सुन वीरमतीने कहा,—प्यारी बहू! तेरा कहना ठीक है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरा पुत्र रूप-लावण्य और गुणमें अतुलनीय है। मैं यह भी स्वीकार करती हूँ, कि भला या बुरा जैसा भी हो, अपना पतिही एक स्त्रीके लिये सब कुछ है। मेरे कहनेका तात्पर्य तो यह था कि बहुरत्ना-वसुन्धरा—यानी इस संसारमें एक-से-एक बढ़ कर आदमी पड़े हुए हैं। यदि तूने देश-विदेश देखा होता, तो तुझे इस बातकी खबर होती; पर तूने तो केवल आभापुरी ही देखी है, अतः तुझे अन्य नगरोंका हाल कैसे मालूम हो सकता है?

तुझे रम्य और अरम्यका ज्ञान कहाँ ? इसीलिये मैं तुझे पशुओंसे भी गयी बीती मानती हूँ। इसमें बुरा माननेकी कोई बात नहीं। यदि मुझ समान विद्या-सम्पन्न सास पा कर भी तूने देश-विदेशकी सैर न की, तो तेरा जीवन ही बेकार है। तुझे ऐसा अवसर फिर क्यों मिलने लगा ? तू अभी मुझसे डरती है, संकोच करती है, इसीलिये तू अपने मनकी बात मुझसे नहीं कहती, परन्तु मैं जानती हूँ कि तेरी तबियत यहाँ जरूर घबड़ाया करती होगी। न तुझे यहाँ कोई खेल देखनेको मिलता है, न कौतुक। नये नये देशाचार देखे बिना मानव-जीवनकी सफलता और निष्फलताका खयाल तुझे कैसे आ सकता है ? संसारमें जो निरंतर नये नये तीर्थ, नये नये पर्वत, नये नये नगर, नये नये कुण्ड, नयी नयी नृप-वधुएँ, नये नये विनोद, नये नये गाने, नये नये बाजे और नये नये देशोंके चरित्र देखता है, उसीका जीवन सफल है। इस संसार में अश्वमुख, हयकर्ण, अकर्ण, इगचरण, गूढ़-दन्त, शुद्ध-दन्त इत्यादि अनेक प्रकारके मनुष्य होते हैं, परन्तु उन्हें देखे बिना उनका हाल तू कैसे जान सकती है ? तेरे लिये तो मानों खाना, पीना और वस्त्र-भूषण पहनना ही सब कुछ है। स्त्री जातिमें

स्वभावसे ही चतुरता होती है, किन्तु तुझमें उसका पूरा अभाव है, इसीलिये मैं तुझे स्त्री जातिके बाहर मानती हूँ। देख, शास्त्रकारोंने पाँच बातोंको चतुराईका मूल बतलाया है, जिनमें देशाटन—विदेश-यात्रा सर्वश्रेष्ठ माना गया है। तुझसे तो पक्षी ही अच्छे, जो आकाशमें उड़ उड़ कर नये नये कौतुक तो देखते हैं! जिस तरह एक दरिद्री गुड़ पाकर उसीको अमृत मान लेता है, वैसे ही तू चन्दको पाकर सन्तोष मान बैठी है। और किसी बातका मानों तुझे ध्यान ही नहीं है। महलके अन्दर बैठे बैठे, तुझे बाहरकी बातें कैसे मालूम हो सकती हैं। देख, जो देश-विदेशमें भ्रमण करते हैं, इधर-उधर घूमते हैं, उनकी रहन-सहन कुछ और ही होजाती है इससे दुनियामें उन्हें कोई ठग नहीं सकता ; कोई उन्हें धुता नहीं दे सकता। वैसे ही घरमें बैठ कर अपनी बड़ाई करना और लम्बी-चौड़ी बातें बघारना दूसरी बात है। ऐसे मनुष्योंकी बाहर कहीं भी पूछ नहीं होती। सच्चे शूरवीर और पण्डित तो वही हैं, जो परदेशमें पूजे जाते हैं। जिस तरह कोई वस्तु अपने पास होने पर दूसरोंको देनेमें ही उसकी सार्थकता है, उसी तरह देश भ्रमण कर नये नये कौतुक देखनेमें ही जीवनकी सार्थकता है, परन्तु तुझसे यह कुछ होने जानेका नहीं। मालूम होता है कि तेरा जीवन

भी एकान्त वनमें खिले हुए पुष्पकी भाँति निरर्थक होगा।”

वीरमतीकी चिकनी-चुपड़ी बातें सुन गुणावली उसके चक्करमें आ गयी। वह अपने मनमें सोचने लगी कि वास्तवमें मेरी अवस्था कूप-मण्डूक जैसीही है। संसारमें कहाँ क्या हो रहा है, इसका मुझे कोई पता नहीं। परन्तु एक राजाकी रानी होकर क्या इस महलसे निकलना कभी सम्भव है? इस प्रकार सोचते हुए उसने कहा,—“पूज्य माताजी! आपका कहना बिलकुल ठीक है। मैं यह भी मानती हुँ कि भ्रमण करनेसे नयी नयी चीजें देखनेमें आती हैं और ज्ञानमें बहुत वृद्धि होती है, परन्तु मेरे लिये इस महलसे निकलना क्या कभी सम्भव हो सकता है? इच्छा करने पर भी मैं कहीं बाहर नहीं जा सकती। यह तो उन्हींके लिये सम्भव है, जो निरङ्कुश हों, स्वेच्छाचारी हों। मुझे संसारमें नये नये कौतुक और नयी नयी बातें देखनेकी तो बड़ी इच्छा होती है, परन्तु मेरी अवस्था उस मयूर जैसी है, जो नाचते समय अपने सुन्दर पंख देखकर मनमें फूला नहीं समाता, परन्तु जब उसकी दृष्टि अपने पैरोंपर पड़ती है, तब उन्हें कुरूप देखकर वह उदास हो जाता है। एक राजाकी पटरानी होनेमें जहाँ मुझे सब सुख है, वहाँ यह दुःख भी है, कि मैं इस महलके बाहर पैर नहीं रख

सकती। हाँ, मैं अपने पतिदेवसे छिपकर अवश्य ही कहीं जा सकती हूँ, परन्तु यह बड़े ही खतरेका काम है। यदि वे रुष्ट हो जायें तो मैं कहींकी भी न रहूँ। उनको किसी तरहका धोखा देना भी मैं पसन्द नहीं करती। यदि कोई दूसरा न जान सकेगा, तो सूर्य-चन्द्र तो अवश्य ही साक्षी रहेंगे। इसलिये पतिकी आज्ञाके सिवा, कहीं बाहर जाना मैं हरगिज पसन्द नहीं कर सकती। पक्षी, पवन और पुरुष—यह तीनों स्वतन्त्र हैं। वे चाहे जहाँ जा सकते हैं, परन्तु एक पराधीन स्त्री वैसा कदापि नहीं कर सकती।"

गुणावलीकी यह बातें सुन वीरमती समझ गयी कि उसके मनमें कौतुक देखने की इच्छा तो जागरित हो चुकी है, परन्तु पतिका भय उसे बाहर निकलनेसे रोक रहा है। अतः उसने अपने मनमें निश्चय किया कि इसीतरह धीरे धीरे समझाते हुए, उसका यह भय भी मैं दूर कर दूँगी। ऐसा करने पर वह पूर्णरूपसे मेरे अधिन हो जायगी और फिर मैं जो कहूँगी, वही करनेके लिये वह तैयार हो जायगी।

आधा कार्य पूर्ण हो चुका था। आधा अभी बाकी ही था। अतः उसे दूसरे दिन पर छोड़, वीरमती अपने महल वापस चली गयी।

पाँचवाँ परिच्छेद



अबलाओंका चातुर्य



दो चार दिनके बाद, मौका देख, वीरमती फिर गुणावलीके पास आयी। इसबार भूमिका की जरूरत तो थी ही नहीं अतः दोनों एक दूसरे से घुल घुलकर बातें करने लगीं। गुणावलीको पूर्णरूपसे अपने जालमें फँसाते हुए वीरमतीने कहा,—"अरी भोली! जो कार्य स्त्रियाँ कर सकती हैं, वह पुरुष भी नहीं कर सकते। हरि, हर और इन्द्रको भी स्त्रियोंने विचलित कर अपने वश किया। बड़े बड़े मुनिवरोंकी तपस्या भङ्ग की और समय पर ऐसे ऐसे पराक्रम दिखाये, जिन्हें देखकर पुरुषों-को भी हार माननी पड़ी। किसकी शक्ति है, जो स्त्री-चरित्रको समझ सके? संसारमें ऐसे पुरुष विरले ही होते हैं, जो स्त्रियोंके फन्देमें न पड़ते हों। इच्छा करने पर स्त्री विषम पर्वतोंपर चढ़ सकती है, सर्पको वश कर

सकती है, बड़ी-बड़ी नदियाँ पारकर सकती है, सिंहको मार गिरा सकती है और ऐसे खेल खेलसकती है, जो पुरुषोंसे भी न खेले जा सकें। स्त्री प्रसन्न होनेपर कल्पलता और अप्रसन्न होनेपर विषलताके समान है। कहनेका तात्पर्य यह है कि स्त्री जातिमें असीम शक्ति और क्षमता है। ऐसी अवस्थामें उसे पुरुषसे डरनेका कोई कारण नहीं। जो स्त्री अपने पतिसे डरती है, उसका सारा जीवन निरर्थक हो जाता है। स्त्रियोंको किसी प्रकार शिक्षा नहीं देनी पड़ती। उनमें तो आपही आप सारी शक्तियें उत्पन्न हो जाती हैं। मयूरके अण्डोंपर चित्रकारी कौन करता है? हाथीके कुम्भ-स्थलको भेदना सिंहको कौन सिखाता है? इसकेलिये तो वह जाति स्वभावसे ही प्रेरित होता है। इसलिये प्यारी बहू! यदि संसारके कौतुक देखनेकी लालसा हो, तो तुझे अपने मनसे चन्द्रकुमारका भय निकाल देना चाहिये। तुझे तो मालूम है कि मेरे पास अनेक दैवी विद्याएँ हैं। उनके प्रतापसे मैं तेरी सभी इच्छाएँ पूर्ण कर सकती हूँ। गगन-गामिनी विद्याके सहारे हमलोग रातोरात बहुत दूर जा सकती हैं और सवेरा होनेके पहले ही वहाँसे कौतुक देखकर वापस आ सकती हैं। चन्दको इसका हाल मालूम ही न हो सकेगा और यदि उसे मालूम भी

हो जाय तो डरने का कोई कारण नहीं है। मच्छरोंके भयसे कोई घर नहीं छोड़ देता। तुझे उसकी ओरसे निश्चिन्त रहना चाहिये।

वीरमतीकी यह बातें सुन गुणावली प्रसन्न हो उठी। अब उसे विश्वास हो गया, कि वह उसकी सहायतासे नये नये देश और नये नये कौतुक देख सकेगी। उसने यह भी खयाल कर लिया कि उसके इस कार्यसे बुरा लगने पर भी चन्द्रकुमार उसका कुछ बिगाड़ न कर सकेगा। अतः इन सब बातोंपर विचार कर उसने वीरमतीसे कहा,—"पूज्य माताजी! मैं तो आपहीके भरोसेहूँ। जब तक आप मेरी रक्षा करनेके लिये विद्यमान हैं तब तक मुझे किसीसे डरनेका कोई कारण मालूम नहीं देता। आप यदि मुझे नये नये कौतुक दिखाना चाहती हैं, तो मैं इसके लिये तैयार हूँ। आप मेरे लिये देवी स्वरूपा हैं। आपकी आज्ञा मैं स्वप्नमें भी उल्लंघन न करूंगी। यदि आज ही आप मुझे वहाँ ले चलना चाहें तो उसमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं। जब नाचना ही है तो फिर घूंघट किस लिये? परन्तु पहले आप किसी मन्त्र द्वारा अपने पुत्रको वश कर लीजिये, ताकि वे किसी प्रकारकी बाधा न उपस्थित करें और मुझसे भी किसी तरह अप्रसन्न न हो सकें।"

गुणावलीकी यह बातें सुन वीरमती समझ गयी, कि अब वह पूर्णरूपसे मेरे जालमें फँस गयी है अतः उसने कहा,—"प्यारी बहू! मेरे पास अवस्वापिनी नामक एक विद्या है। उसकी सहायतासे मैं नगरके समस्त प्राणियोंको पत्थरके समान जड़ बना सकती हूँ। ऐसी अवस्थामें चन्दको वशीभूत करना कौनसी बड़ी बात है? उसका भय तो तुझे अपने हृदयसे सदाके लिये निकाल ही देना चाहिये। खैर, अब जो मैं कहती हूँ, सो सुन! यदि आजही कोई कौतुक देखनेकी तेरी इच्छा हो, तो मैं इसके लिये तैयार हूँ। यहाँसे अठारह सौ योजन की दूरी पर, विमलापुरी नामक एक नगरी है। वहाँ परम प्रतापी मकरध्वज नामक राजा राज्य करता है। उसके प्रेमलालच्छी नामक एक परम रूपवती कन्या है। उसके साथ सिंहलपुरके राज-कुमार कनकध्वजका आज ही ब्याह होनेवाला है। यह महोत्सव बड़ा ही दर्शनीय होगा। इसलिये तेरी इच्छा हो तो हमलोग वहाँ चलनेकी तैयारी करें।"

गुणावली यह बातें सुन, वह उत्सव देखनेके लिये लालायित हो उठी। उसने वीरमतीसे कहा,—"माताजी! निःसन्देह आपके गुणोंका कोई पार नहीं है। आप जैसी सास मुझे पूर्वजन्मके सुकृत्यसे ही प्राप्त हुई है।

आप जिस उत्सवका जिक्र करती हैं, वह देखनेके लिये मुझे बड़ी इच्छा हो रही है, परन्तु बिना किसी दैवी उपायके हमलोग उतनी दूर कैसे पहुँच सकती हैं ?"

वीरमतीने हँसते हुए कहा,—"बहू ! क्या इसी कठिनाईसे तू घबड़ा रही है ? तू किसी तरह चिन्तित न हो। मेरे पास आकाश-गामिनी विद्या है। उसीके प्रभावसे मैं एक रातमें लाख योजनका रास्ता तय कर सकती हूँ। यह रास्ता तो मेरे लिये एक पदके बराबर भी नहीं है।"

आकाश-गामिनी विद्याका यह हाल सुनकर गुणावली आनन्दसे खिल उठी। उसने कहा,—"वाह वाह ! यह विद्या तो बहुत ही उत्तम है। परन्तु एक कठिनाई और है। वह यह कि, अभी महाराज राज-सभामें गये हुए हैं। वे सायंकाल तक वहाँ रहेंगे। इसके बाद सन्ध्या-कर्मसे निवृत्त हो, एक पहर रात्रि व्यतीत होने पर वे मेरे महलमें पधारेंगे। इसके बाद एक पहरका समय बातचीत और हास्य-विनोदमें ही बीत जायगा। इस तरह आधी रातके करीब वे सोयेंगे। फिर एक पहर सोनेके बाद ही वे शीघ्रही उठ बैठेंगे। इस तरह मुझे किसी समय अवकाश ही न मिलेगा। अतः यह तो बतलाइये कि, मैं किस तरह और किस समय आपके साथ चल सकूँगी ?"

वीरमतीने कहा,—"बहू ! तू इन बातोंकी चिन्ता

न कर। मैं जो जो कहूँ सो करती चल, और मेरी विद्याओंका अद्भुत चमत्कार देख। मैं अभी ऐसा उपाय करूँगी, जिससे चन्द्रकुमार नियमित समयके पहले ही आज सभासे वापस आजायगा। इसके बाद किसी उपायसे उसे शीघ्र सुला देना तेरा काम होगा। जब वह सो जाय तब मेरे पास आ जाना, फिर मैं सब ठीक कर लूँगी।"

इस तरह गुणावली को समझा बुझा कर, वीरमती अपने महल लौट आयी। उसके जानेके बाद गुणावली अपने मनमें कहने लगी,—"माताजीके पास सच-मुच ऐसी विद्याएँ होंगी? वह बातें तो बहुत बड़ी बड़ी करती हैं, परन्तु मुझे उन पर विश्वास नहीं होता। हाँ, यदि पतिदेव राज-सभासे आज जल्दी वापस आ जायें, उसकी बातें सच मानी जा सकती हैं।"

इधर गुणावली इस तरहके तर्क-वितर्क कर रही थी, उधर वीरमती महलमें पहुँचते ही एक विद्या सिद्ध बैठ गयी। कुछ ही समयमें उसकी साधनाके कारण एक देव प्रकट हुआ और उसने कहा,—"मेरी आराधना किस लिये कर रही हो?"

वीरमतीने काहा,—" हे देव! मैंने निरर्थक कष्ट नहीं दिया है। मैं चाहती हूँ कि आज ही कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मेरा पुत्र नियमित समय

पहले दिन-ही-दिन राज-सभासे वापस चला आये।"

यह सुन देवने कहा,—"बस, इतनेहीके लिये मुझे बुलाया? मेरे लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं है, मैं अभी ऐसा उपाय कियेदेता हूँ, जिससे तेरा पुत्र राज-सभासें शीघ्रही महल चला जायेगा।"

यह कह उस देवने देखते-ही-देखते वर्षा ऋतुकासा दृश्य उपस्थित कर दिया। आकाशमें काली घटाएँ घिर आईं, जंगलमें मोर बोलने लगे, बिजली चमकने लगी और गर्जनाके साथ मूसलधार वृष्टि होने लगी। इस तूफानके कारण चारों ओर अन्धकार छा गया और लोग अपने अपने घर जानेके लिये अधीर हो उठे। राजा चन्दने दुर्दिन देख, तुरन्त सारी सभा विसर्जन कर दी। अभी सूर्य्यास्त भी नहीं हुआ था, फिर भी तूफानके कारण वे सीधे गुणावलीके महलमें चले गये। इस घटनासे गुणावलीको बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसे अब वीरमतीकी बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया।

पतिको देख, गुणावलीने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा,—"प्राणनाथ! आपको आज शीघ्र ही आते देख, मुझे बड़ाही आनन्द हो रहा है, परन्तु आप कुछ उदाससे क्यों दिखायी देते हैं? आपकी तबियत तो अच्छी है न?"

राजा चन्दने कहा,—"प्यारी! इस तूफान और

वर्षाके कारणही आज समयके पहले सभा विसर्जन कर देनी पड़ी और इसी कारणसे तबियत कुछ अनमनीसी मालूम होती है।"

राजाकी यह बात सुन, गुणावली ने तुरन्त ही सुकोमल शैय्या तैयार कर दी। शीत निवारणके लिये राजा कान बांधकर उसपर विश्राम करने लगे। गुणावलीने उन्हें कस्तुरी और अम्बर मिश्रित पान खिलाये, तरह तरहके आसव शर्बत पिलाये और न . . . सुगन्धित तैल मर्दन किये। इससे शीघ्रही राजाका शीत निवारण हो गया। इसके बाद गुणावली उनके पैर चापने लगी। इस तरह आराम मिलने पर, राजाको कुछ निद्रासी आ गयी। गुणावलीका चित्त डावांडोल तो था ही, अतः वह बीच बीचमें देखती जाती थी, कि वे जाग रहे हैं या सो गये हैं। इसी तरह धीरे धीरे शाम हुई। गुणावली अब भी अस्थिरता पूर्वक ताक-झाँक रही थी। राजाको शामसे नींद कहाँ परन्तु गुणालीको इस तरह अस्थिर देख, उन्हें कुछ . . . हो गया, इसलिये उन्होंने जान बूझकर आँखें बन्द ली। वे अपने मनमें सोचने लगे कि,—"आज यह क्या मामला है? जो यह सुशीला स्त्री दुःशीलाके आचरण कर रही है। मालूम होता है कि यह . . .

कुसंगसे भ्रष्ट हो गयी है। यह भी सम्भव है किसी दूसरेके प्रेममें फँस गयी हो। कुसंगसे स्त्रियोंकी ऐसी ही अवस्था होती है। देखिये, सोनेका मेल सुहागेसे होता है, घनसार-पारेका मेल कोयलेसे होता है, चकोर अंगार भक्षण करता है, और वकुल जैसे उत्तम वृक्षको सुरा-पान प्रिय मालूम होता है। संभव है कि इसी तरह गुणावलीके हृदयमें भी कुमतिने वास कर लिया हो और वह दुराचारिणी हो गयी हो। इसकी चञ्चलतासे तो यही प्रतीत होता है, कि आज यह कहीं जाना चाहती है, किन्तु मुझे जगा हुआ, जानकर संकुचित हो रही है, पर इसका यह कपटभाव मुझसे हरगिज न चल सकेगा।"

राजा चन्द इस प्रकार तरह-तरहके विचार कर रहे थे। गुणावलीकी लीला देखने और उसे अपनी निद्राका विश्वास कराने के लिये, वे आँखें बन्दकर और भी जोर जोरसे खुर्राटें लेने लगे। इससे गुणावली को विश्वास हो गया, कि राजा गहरी निद्रामें पड़े हुए हैं, तब वह चुप चाप उठ खड़ी हुई और धीरे से महल के बाहर निकल पड़ी। राजा भी उसके जाते ही उठ बैठे और हाथमें खड्ग लिये, गुणावलीका अनुसरण करने लगे। रात अँधेरी थी, साथ ही गुणावलीको किसी तरहका सन्देह भी न था, इसलिये उसे कुछ भी मालूम न हो

सका। उधर वीरमती पहलेहीसे उसकी प्रतीक्षा कर रही थी, अतः उसे आते देखते ही वह प्रसन्न हो उठी और वृष्टिकी सृष्टि करनेके लिये अपनी विद्याकी प्रशंसा करने लगी। गुणावलीने भी उसके चमत्कारकी प्रशंसा करते हुए कहा,—"पूज्य माताजी! आपके आदेशानुसार पतिदेव को सुलाकर वापस लौट आयी हूँ। अब जो करना हो वह कीजिये। मैं चाहती हूँ, कि उनके उठनेके पेश्तर ही मैं भी वहाँ पहुँच जाऊँ, ताकि उन्हें किसी तरहका यह रहस्य मालूम न होने पाये।"

इधर राजा चन्द बाहर खड़े खड़े यह सब बातें सुन रहे थे। इसी समय विरमतीने कहा,—"प्यारी बहू! जरा बगीचेसे कणेर वृक्षकी एक छड़ी ले आ। मैं उसे मन्त्रित कर देती हूँ। वह छड़ी यदि तीन बार तू अपने सोते हुए पतिको स्पर्श करा देगी, तो वह सुबहके पहले किसी तरह नींदसे जाग न सकेगा।"

सासकी यह बात सुन गुणावली उसी समय बगीचेसे कणेरकी एक छड़ी काट लायी। इसमें उसे न तो किसी तरह का भय ही हुआ, न संकोच ही। उसने तुरन्त वह छड़ी लाकर वीरमतीके हाथमें रख दी।

राजा चन्दने यह सब बातें सुन रखी थी, इसलिये वह गुणावलीके पहले ही महलमें लौट आये। उन्होंने



"पूज्य माताजी! आपके आदेशानुसार पतिदेव को बुलाकर वापस लौट आयी हूँ।

[पृष्ठ ६०]

अपनी शैय्यापर कुछ कपड़े डालकर, ऊपरसे चद्दर ओढा दी और वे उसी स्थानमें छिप रहे, ताकि गुणावली उन्हें देख न सके और उसे यही मालूम हो कि वे पूर्ववत ही यथा स्थान सो रहे हैं।

उधर वीरमतीने कणेर की छड़ी मन्त्रित कर, गुणावलीको देते हुए कहा,—"प्यारी बहू! तुझे अपने पतिसे जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं है। हृदयमें हिम्मत रख, और मैंने जो कुछ कहा है वह करके शीघ्र ही लौट आ!"

वीरमती के आदेशानुसार उस छड़ीको लेकर गुणावली महलमें पहुँची, उसे यह चिन्ता हो रही थी कि उसकी पदध्वनि सुनकर या छड़ीका स्पर्श कराने पर पतिदेव कहीं जाग न पड़ें। इसलिये उसने चारों ओर देखते हुए बड़ी ही सावधानीके साथ, धीरे धीरे शयन-गृहमें प्रवेश किया। शैय्याकी ओर निगाह की, तो मालूम हुआ कि महाराज अभी उसी तरह सो रहे हैं। अतः उसने बहुत धीरेसे उन्हें तीन बार छड़ी छुआ दी और उसी समय खड़े पैरों वह वहाँसे लौट पड़ी। चन्दराजा उसकी यह लीला देख कर समझ गये, कि गुणावली पर वीरमतीने हाथ फेर दिया है और उसीके आदेशानुसार यह सारा काम हो रहा है।

उधर गुणावली फिर वीरमतीके पास पहुँच गयी।

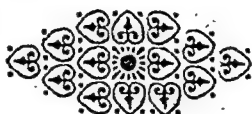
इधर उसके बाहर निकलते ही राजा भी उसके साथ हो लिये। गुणावली तो वीरमतीके कमरेमें चली गयी थी अतः वह दरवाजेके पास ही खड़े हो कर उनकी बातें सुनने लगे। गुणावलीने वह छड़ी सासको वापस देते हुए कहा,—"माताजी! यह कार्य तो मैं अपके आदेशानुसार पूरा कर आयी और उनकी ओर से निश्चिन्त हो गयी, पर अभी नगर-निवासियोंका भय बना हुआ है। यदि उनमेंसे किसीने हमलोगों को देख लिया और किसी तरह यह बात महाराजके कान तक पहुँच गयी, तो अवश्य ही मेरा अकल्याण होगा। इसलिये यदि हो सके तो इसका भी कोई उपाय अवश्य कर दीजिये।"

वीरमतीने कहा,—"प्यारी बहू! तू निरी पगली है। तू इस तरह बात-बातमें क्यों डरती है? मेरा जीवन तो यही सब करते बीता है। मैं अभी ऐसा उपाय किये देती हूँ; जिससे इस महलके बाहर जितने आदमी हैं, वे सभी सुबह तकके लिये गहरी नींदमें पड़ जायेंगे।"

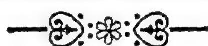
यह सुन कर राजा चन्द बहुत भयभीत हुए, परन्तु दूसरे ही क्षण उनका यह भय दूर हो गया; क्योंकि वीरमतीने कहा था कि जितने भी आदमी महलके बाहर होंगे, वे सब गहरी नींदमें पड़ जायेंगे, किन्तु वे तो महलके भीतरही थे, इसलिये उन्हें इसका कोई भय न रहा।

इसके बाद वीरमतीने गर्दभीका रूप धारण कर बड़े जोरसे खर नाद किया। उसे सुनते ही नगर-निवासी घोर निद्रामें पड़ गये, जो जहाँ था, वह वहीं झूम-झूम कर सो गया। यह निद्रा क्या थी; मानों एक तरहकी मूर्च्छा ही थी। अब चाहे जैसी विपत्ति आने पर भी सुबहके पहले उनका उससे उठना सम्भव न था।

इस तरह नगर-निवासियोंको अवस्वापिनी निद्रासे मूर्च्छित कर, वीरमती गुणावलीके साथ बाहर निकली। इधर राजा चन्द यह सब लीला छिप कर देख ही रहे थे, अतः उनके बाहर निकलते ही वे और भी दब कर उनकी बातें सुनने लगे। वीरमतीने गुणावलीसे कहा,—"मैंने नगर-निवासियोंको ऐसी निद्रामें डाल दिया है, कि उनके ऊपर नौबत बजने पर भी वे अब उठ न सकेंगे। अब चलो, हमलोग बागीचेकी ओर चलें। उसमें प्रवेश करने पर द्वारके पास जो पहला आम्रवृक्ष आयगा, उसी पर हमलोग बैठ कर विमलापुरी जायेंगे।"



छठाँ परिच्छेद



विमलापुरीकी ओर प्रस्थान



नगर-निवासियोंको निद्राधीन करनेके बाद सास और बहूने चलनेकी तैयारी की। वीरमती गुणावलीको पहले ही बतला चुकी थी कि उद्यान में जो पहला ही आम्रवृक्ष है, उसी पर चढ़कर विमलापुरी जाना होगा। यह बात राजा चन्द्के कानमें भी पड़ चुकी थी। चलते समय पुनः वीरमतीने कहा,—"प्यारी गुणावली! तू अपने मनमें सोचती होगी कि विमलापुरी १८०० योजन दूर है, वहाँ हमलोग कैसे पहुँच सकेंगे; परन्तु देख, मैं अपनी विद्याके प्रभावसे क्षणभरमें तुझे वहाँ पहुँचा देती हूँ।"

इधर चन्द्राजा सोच रहा था कि—"यदि हो सके तो मुझे भी वहाँ जाकर इन दोनों का चरित्र अवश्यही देखना चाहिये" निदान, वह उसी समय वहाँसे चल पड़ा और वीरमतीके पहले ही उद्यानमें जा खड़ा हुआ।

वीरमतीने जिस आम्रवृक्षके लिये कहा था, उसे उसने ध्यानपूर्वक देखा तो उसमें एक ऐसा कोटर दिखायी दिया, जिसमें वह आसानीसे छिपकर बैठ सकता था। अधिक सोचने या ठहरनेका समय न था, अतः वह तुरन्त उसमें छिपकर बैठ गया और अपने मनमें सोचने लगा,—"गुणावली तो वास्तवमें गुणावली ही थी, मुझे तो इस समय भी उसमें कोई दुर्गुण नहीं दिखायी देता। परन्तु वह स्वभावकी बहुतही भोली है, इसलिये माताकी बातोंमें आ गयी है। उसीने उसकी मति पलट दी है। अब देखना चाहिये कि यह दोनों क्या करती हैं?"

इतनेहीमें वीरमती और गुणावली वहाँ आ पहुँचीं। उन्हें देखकर चन्दराजा को चिन्ता होने लगी, कि कहीं ऐसा न हो कि यह दोनों किसी दूसरेही आम्रवृक्ष पर चढ़ बैठें और मैं यहीं रह जाऊँ। परन्तु उसे इस चिन्तामें अधिक समय तक न रहना पड़ा। वह दोनों प्रसन्नता-पूर्वक उसी आम्रवृक्ष पर चढ़ बैठीं। चन्दराजा भी इसप्रकार कोटरमें छिपे थे कि वे उन्हें देख न सकीं। वीरमतीने कणेरकी उस छड़ी द्वारा चाबुककी तरह प्रहारकर आम्रवृक्षको कहा कि,—"हमें विमलापुरी ले चल! उसी समय आम्रवृक्ष वायुयानकी तरह आकाश-मार्गसे उड़ता हुआ विमलापुरीकी ओर अग्रसर होने लगा।

जिसतरह केवलज्ञानके आवरणसे जीवोंका केवलज्ञान आवरित-आच्छादित रहता है, उसी तरह कोटरके आवरणसे राजा चन्द आवरित-ढके हुए थे। किन्तु मतिश्रुतादि ज्ञानावरणीय के क्षयोपशमसे जिस तरह जीवको थोड़ा बहुत बोध होता है, उसीतरह राजा चन्द भी कोटरके भीतरसे बाहरकी थोड़ी बहुत चीजें देख सकते थे। आम्रवृक्ष मनकी अपेक्षा भी तेज गतिसे आगे बढ़ रहा था। अनेक नगर और वन, उपवन उसकी दृष्टिमें पड़ते और दूसरे ही क्षण दृष्टिसे ओझल हो जाते थे। आकाश और पृथ्वी-मण्डलमें चारों ओर निर्मल चाँदनी छिटक रही थी। उसमें आम्रवृक्षकी उड़ान ऐसी मालूम हो रही थी, मानो क्षीर-सागर में कोई नौका चल रही हो! रास्तेमें जो स्थान मिलते थे, उन्हें वीरमती गुणावलीको दिखाती और उनका वर्णन करती जाती थी। गंगानदीके आने पर उसने कहा,—"प्यारी बहू! देखो, यह परम पावनी गंगा नदी है। इसमें स्नान करने से प्राणियोंका पाप रूपी मल साफ़ हो जाता है। यह देखो, कालिन्दी या यमुना नदी है। इसका जल बड़ाही निर्मल ओर नीला दिखायी देता है। इसी प्रकार अनेक ग्राम, नगर, देश, पर्वत, नदी, नद, तालाब और वन, उपवन आदि जो आते थे, उन्हें, गुणावलीको दिखाती जाती थी।

आगे चलने पर अष्टापद पर्वत मिला। उसे दिखलाते हुए वीरमतीने कहा,—"बहू ! देखो, यह अष्टापद पर्वत है। इस पर भरतके बनवाये हुए कञ्चन और मणिमय जिन-चैत्य सुशोभित हो रहे हैं। इसके पूर्व दिशाकी ओर ऋषभदेव और अजितनाथ भगवानकी मूर्तियाँ हैं, दक्षिण दिशामें सम्भवनाथ आदि चार तीर्थ-करोंकी मूर्तियाँ हैं। पश्चिम ओर सुपार्श्वनाथ आदि आठ प्रभुओंकी मूर्तियाँ हैं और उत्तर ओर धर्मनाथ आदि दस प्रभुओंकी मूर्तियाँ हैं। रावण यहाँ आकर तीर्थङ्कर नाम-कर्म उपार्जन करेगा। इसी पर्वतके चारों ओर वलयाकारमें गंगा नदी भी प्रवाहित हो रही है।"

कुछ दूर आगे चलने पर संमेतशिखर पहाड़को देखकर वीरमतीने कहा,—"प्यारी बहू ! इस तीर्थकी वन्दना करो ! यहाँ पहले, बारहवें, बाईसवें और चौवीसवें—इन चार तीर्थङ्करोंको छोड़कर शेष बीस तीर्थङ्कर मोक्ष-लाभ करेंगे। इनमें सतरह तीर्थङ्कर मोक्ष-लाभ कर चुके हैं, और शेष तीन तीर्थङ्कर मोक्ष-लाभ करेंगे। देखो, यह वैभारगिरि यह अर्बुदाचल और यह सिद्धाचल है। इनमें सिद्धाचल-तीर्थ सब तीर्थोंसे बड़ा है। इसके दर्शन मात्रसे ही प्राणियोंके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

पूर्वकालमें भगवान ऋषभदेव यहाँपर ९९ पूर्व ❀ बार समवसरे—पधारे थे । इस जगह असंख्य मुनिओंने सिद्धपद और केवलज्ञान प्राप्त किया है । इस तीर्थका उद्धार पहली बार भरत चक्रीने, दूसरी बार राजा दण्डवीर्यने, तीसरी बार इशानेन्द्रने, चौथी बार माहेन्द्रने, पाँचवीं बार ब्रह्मेन्द्रने, छठी बार भुवनपति इन्द्रने, सातवीं बार सगर चक्रीने, आठवीं बार व्यन्तरेन्द्रने, नवीं बार चन्द्रयशाने और दसवीं बार चक्रायुधने किया था । इस तरह दस बार इस तीर्थका उद्धार हो चुका है और भविष्यमें भी रामचन्द्रादि द्वारा होना बाकी है । प्यारी बहू ! इस तीर्थको त्रिविधिसे वन्दना करो ; क्योंकि इस संसार-सागरको तरनेके लिये यह एक नौका रूप है ।

कुछ आगे चलकर गिरनार-तीर्थको दिखलाते हुए उसने कहा,—"यह देखो, गिरनार पर्वत आ पहुँचा । इस जगह राजुलके भर्तार श्रीनेमिनाथ स्वामी मुक्ति-वधूका पाणि-ग्रहण करेंगे । यह तीर्थ भी सिद्धाचलके समान ही है । बल्कि, उसका एक अंग ही माना गया है । इसी जगह एक स्थानमें हाथीका पैर फँस गया था, इसलिये उस स्थानमें 'गजपद कुण्ड' बनाया गया है ।" इस प्रकार नये नये तीर्थोंको देखती हुई, वे दोनों प्रसन्न-

❀ सित्तर लाख, छप्पन हजार, क्रोड़ वर्षोंका एक पूर्व होता है ।

तापूर्वक विमलापुरीकी ओर अग्रसर हो रही थीं।

आगे चलकर वीरमतीने कहा,—"बहू! देखो, इस जगह नदी और समुद्र दोनों प्रवाहित हो रहे हैं। यह लवण समुद्र जम्बुद्वीपके चारों ओर वलय-गोलाकारमें पड़ा हुआ है। इसमें नाना प्रकारके रत्नोंके ढेर हैं। यह दो लाख योजन लम्बा है, किनारे पर इसकी गहराई कम और बीचमें अधिक है। इसकी चौड़ाई दस हजार योजनकी है और एक हजार योजनकी गहराई है। इसमें सोलह हजार योजन ऊँची लहरें उठती हैं। इन पर दो कोसकी वेल बढ़ती है। इनके चारों ओर कलशकीसी आकृतिवाले चार भुवन-पति होते हैं। उनके मुख दस हजार योजन चौड़े हैं। उनके गात्रकी मोटाई एक हजार योजन और चौड़ाई एक लाख योजन होती है। इनसे घनवात और तनुवात निकलता रहता है और उन्हींके कारण जलकी लहरें ऊँची उठा करती हैं। जिनको निवारण करनेके लिये निरंतर देवतागण हाथमें डाँड लिये खड़े रहते हैं। यह सभी शास्वते हैं।" इस प्रकारकी बातें करती हुई वे दोनों विमलापुरीके निकट जा पहुँची। विमलापुरीका दृश्य दूरसे बड़ा ही सुहावना मालूम होता था। अनेक मनोहर उपवन, सुन्दर तालाब और ऊँचे ऊँचे महल दर्शकोंका चित्त चुरानेके लिये मानों

सातवाँ परिच्छेद



अनहोनी विचित्र घटना



वीरमती और गुणावली इस तरह बिना किसी विघ्न बाधाके विवाह-मण्डपमें पहुँच गयी, किन्तु राजा चन्दको नगरमें प्रवेश करते ही एक ऐसी कठिनाईका सामना करना पड़ा, जिससे उसका सारा कार्य-क्रम ही पलट गया। नगरके पहले दरवाजेमें पैर रखते ही एक द्वारपाल उन्हें इसतरह झुक-झुक कर प्रणाम करने लगा कि, मानों उनसे उसकी कोई पुरानी जान पहचान हो। यह देखकर राजा चन्दके आश्चर्यका वारापार न रहा। वे आश्चर्य-चकित हो देखने लगे कि द्वारपाल मुझे ही प्रणाम कर रहा है या किसी दूसरेको। द्वारपालने उन्हें और भी आश्चर्यमें डालते हुए कहा,—"हे चन्द नरेन्द्र! आपकी जय हो! आप वास्तवमें गुणोंके आगार हैं। आज आपने यहाँ पधार कर हमलोगोंपर असीम कृपा

की है। अब आपके आगमनसे हमारी महान चिन्ता दूर हो गयी। हमलोग दूजके चाँदकी तरह आपकी राह देख रहे थे। अब आप दयाकर सिंहलपुरके महाराजके पास चलिये और उनके वास-स्थानको पवित्र कीजिये।

द्वारपालकी यह बातें सुन राजा चन्द अपने मनमें सोचने लगे,—"अहो! यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि यह न केवल मुझे ही पहचानता है, बल्कि मेरा नाम तक जानता है। परन्तु नहीं, मैं समझता हूँ कि इसे कोई भ्रम हो गया है। संभव है कि यह किसी दूसरे ही चन्दकी राह देख रहा हो और उसीके धोखेमें मुझसे ऐसी बातें कर रहा हो। यह सोचकर आभा नरेशने कहा,—"हे द्वारपाल! चन्द्र तो आकाशमें रहता है। फिर तू किस चन्द्रसे बातें कर रहा है? मुझे इस नगरमें बहुत ही जरूरी काम है, इसलिये मुझे जाने दे। इस तरह किसी आदमीको विना पहचाने रोक देना ठीक नहीं है।"

द्वारपालने हाथ जोड़ कर कहा,—"हे आभा नरेश! आप अपनेको क्यों छिपाते हैं? क्या कभी रत्न छिपे रह सकते हैं? सूरज क्या थालीकी ओटमें छिप सकता है? कस्तुरीकी गन्ध क्या कभी प्रकट हुए विना रह सकती है? मैं किसीतरहकी भूल नहीं कर रहा हूँ, मैं अच्छी

तरह जान गया हूँ कि आपही आभा नरेश हैं, और आपहीका नाम राजा चन्द है।"

यह कह द्वारपालने राजा चन्दका हाथ पकड़ उनसे अपने साथ चलनेके लिये विनयपूर्वक अनुरोध किया। इसी समय राजाने हाथ छुड़ाते हुए कहा,—"भाई! तू हाथ क्यों पकड़ता है? तुझे जो कहना हो वह दूरसे ही कह दे। मुझे तो यही मालूम होता है कि तुझे कोई भारी भ्रम हो गया है, इसलिये तू मुझे राजा चन्द मानकर अपने साथ चलनेके लिये दुराग्रह कर रहा है। मुझे झूठ बोलनेका कोई कारण ही नहीं है। तू मुझे व्यर्थ ही इस झंझटमें डाल रहा है। हाँ, यदि तुझे कुछ पैसे रुपयोंकी जरूरत हो, तो वह देनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मुझे इसतरह व्यर्थ ही रोक कर मेरा समय खराब न कर। आज मुझे अरण्यमें बहुत ही देरी हो गयी है, इसलिये मेरी माता चिन्तित हो मेरी राह देखती होगी।"

द्वारपालने कहा,—"राजन्! आपका नगर तो यहाँसे १८०० योजन दूर है। भला, यहाँ पर आपकी माता कहाँ होगी? कृपाकर इस तरह मुझे धोखा न दीजिये, न मुझपर नाराज हुजिये। यदि आपके समान प्रतापी पुरुष मिथ्या भाषण करने लगेंगे, तो यह

पृथ्वी संसारका भार कैसे उठा सकेगी ? और इस संसारमें वृष्टिभी क्यों कर होगी ? राजन् ! हमलोगोंका जीवन आप जैसे पुरुषोंकी सेवा करते ही बीता है, इसलिये मैं ऐसी भ्रमपूर्ण बातोंमें कदापि नहीं आ सकता। हमारे स्वामी एक बहुत ही आवश्यक कार्यवश आपसे मिलना चाहते हैं, इसलिये मेरी प्रार्थना स्वीकार कर, आप मेरे साथ चलनेका कष्ट करें।"

राजा चन्द अब तो बुरी तरह फँसे। वीरमती और गुणावली अभी बहुत दूर न गयीं थी अतः राजाको डर था कि यह झगड़ा वे कहीं सुन लेंगीं तो लेनेके देने पड़ जायेंगे, इसलिये उन्होंने चुप चाप द्वारपालके साथ चलदेना स्वीकार कर लिया। इससे द्वारपालको बड़ाही आनन्द हुआ और वह उन्हें सहर्ष अपने साथ ले, सिंहलनरेशके राज-महलकी ओर चल पड़ा।

मार्गमें जो भी दरबान या सिंहलनरेशका कर्मचारी मिलता, वही राजा चन्दको झुक-झुककर प्रणाम करता था, इससे चन्दकी परेशानी बढ़ती जाती थी। उनकी समझमें किसी तरह यह बात न आती थी, कि यहाँके लोग उन्हें किसतरह पहचान लेते थे और उनके प्रति इतना आदर-सम्मान क्यों दिखा रहे थे। चलते चलते नगर का दूसरा दरवाजा मिला। यहाँ पर भी

कई आदमियोंने राजाको प्रणाम कर कहा,—"राजन् पधारिये ! हमारे महाराज आपकी ही राह देख रहे हैं। जिसतरह चक्र रत्न प्रकट होने पर चक्रवर्तीका मनोरथ सफल होता है और उसे नव-निधिकी प्राप्ति होती है उसीतरह आपके शुभागमनसे हमारे महाराज की कार्यसिद्धि होगी।"

चन्दराजाको यह सब बातें अच्छी न मालूम होती थीं। इससे उनकी उलझन और भी बढ़ती जाती थी। उन्होंने कुछ रुष्ट होकर कहा,—"तुमलोग मुझे चन्द क्यों मान रहे हो ? जिसतरह धतूरा खानेवालेको चारों ओर सोना-ही-सोना दिखायी देता है और वह उसे लेने दौड़ता है, उसीतरह तुमलोगोंको सर्वत्र चन्द-ही-चन्द दिखायी देते हैं। मालूम होता है कि तुम्हारे महाराज भी तुम्हारे जैसे ही हैं। उनसे मेरी कौन जान पहचान है और मेरे बिना उनका ऐसा कौनसा कार्य रुका हुआ है, जो तुमलोग इसतरहकी बातें कर रहे हो ! मुझे तो यही मालूम होता है कि तुम सब लोग पक्के धूर्त हो। इसतरह न जाने कितने राह चलतोंको चन्द बना बनाकर तुमने उन्हें ठगा होगा !"

द्वारपालोंने स्पष्टीकरण करते हुए कहा,—"राजन् ! हमलोग सिंहल नरेशके सेवक हैं। उन्होंनेही हमें एक

खास निशानी वताकर स्थान-स्थानमें वैठाया है, और उसी निशानीके कारण हमलोगोंको मालूम हो गया है, कि आप वही राजा चन्द हैं। अव हमलोग जब आपको पहचान गये हैं तो आपको भी इस तरह अपने को छिपाने की चेष्टा न करनी चाहिये।" द्वारपालोंकी यह बात सुन, मामला कुछ-कुछ राजा की समझमें आ गया। इसलिये उन्होंने शान्त होकर पूछा,—"तुमलोगोंको कौनसी निशानी वतलायी गयी है, जिससे तुम मुझे चन्द कह रहे हो?" यह सुन द्वारपालोंने कहा,—"महा-राजने हमें बतलाया था कि पूर्व दिशाके द्वारसे, एक पहर रात बीतने पर दो स्त्रियोंके पीछे जो पुरुष नगरमें प्रवेश करे, उसको राजा चन्दके नामसे पुकार कर तुमलोग उसे प्रणाम करना और उसे सम्मान-पूर्वक मेरे पास ले आना। उससे मेरा एक आवश्यक कार्य है।" इसी आदेशानुसार हमलोग स्थान-स्थानपर बैठे हुए आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। राजाने जो संकेत बतलाया था, उसीके आधार पर हमलोग आपको राजा चन्द समझते हैं और इसीसे आपको उनके पास चलनेकी प्रार्थना कर रहे हैं। महाराजका आपसे क्या काम है, सो तो हमें नहीं मालूम, न उन्होंने हमें बतलया, न हम इस विषयमें कुछ पूछ ही सके, परन्तु अव आपको हमारे

साथ अवश्यही चलना होगा। जो कार्य होगा वह उनसे मिलने पर आपही मालूम हो जायगा।"

राजा चन्द अकेलेही थे और द्वारपालोंकी संख्या बहुत बड़ी थी, अतः वे अपने मनमें सोचने लगे कि, अब तक तो माताका ही भय था, अब सिंहल नरेशका भी भय बन गया। वहाँ जाने पर न जाने क्या होगा, परन्तु इन लोगोंके हाथसे छूटना भी तो अब सहज नहीं है। एक तो मैं अकेला, दूसरे यह पराया शहर। यह सब ठहरे राज-कर्मचारी। इन्हें समझाने बुझानेसे भी कोई लाभ नहीं होगा। इसलिये अब चुप-चाप इनके स्वामीके पास जानेमें ही कल्याण है। वहाँ जो कुछ होगा, देखा जायगा। यह सोचकर उन्होंने द्वारपालोंसे कहा,—"चलो, मैं तुम्हारे महाराजके पास चलनेको तैयार हूँ। मुझे जो कुछ कहना है वहीं कहूँगा।"

रास्तेमें वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते थे, त्यों-त्यों उन्हें नये नये प्रतिहारी—दरबान और कर्मचारी मिलते जाते थे। वे सभी राजा चन्दको प्रणामकर उनका सम्मान करते थे। राज-महल तक पहुँचते राजा चन्दके साथ एक बहुत बड़ी भीड़ हो गयी। किसीतरह सब लोग राज-महलमें पहुँचे। राजा चन्दके आगमनका संवाद सिंहल नरेशको उनके सेवकोंने पहले ही पहुँचा दिया था;

अतः वे उनके स्वागत की तैयारी करनेमें लग रहे थे। जब यह संवाद दिया गया कि चन्द राजा आ गये हैं, तो वे विजय-वाद्योंके साथ सामने जा कर, सत्कार-पूर्वक उन्हें अपने वासस्थानमें लिवा लाये और अपने आसन पर बैठा कर कहने लगे,—"हे आभा नरेश! आपके पदार्पणसे आज यह नगरी और यह स्थान पावन हो गया और मैं भी आपके दर्शनसे कृतार्थ हो गया। बहुत दिनोंसे आपके दर्शनकी बड़ी अभिलाषा थी, वह आज पूरी हो गयी। आप शरीरसे दूर होने पर भी, मेरे हृदयसे दूर न थे। सूर्य्य बहुत दूर होने पर भी वह जिस प्रकार कमलको विकसित करता है, उसी प्रकार आपका नाम और सुयश सुनकर हमलोग भी प्रसन्न होते थे। आज आपके साक्षात् मिलनसे हमें असीम आनन्द हुआ और हमारी सारी आशायें सफल हुई।

इस प्रकार भूमिका बाँधते हुए सिंहल नरेशने राजा चन्दका कुशल समाचार पूछा और कहा कि,—"हे स्वामिन्! आप अन्तर्यामी हैं, आप हमारे शिरछत्र हैं। जिसप्रकार चातक वर्षाको चाहता है और वत्स गायको चाहता है, उसी प्रकार हमलोग भी आपको चाहते हैं। आपके आगमनसे आज हमलोगोंका जीवन सार्थक हो गया। प्रभु-कृपाके बिना उत्तम पुरुषोंसे भेंट नहीं होती।

हमलोग अब आपका क्या सत्कार करें ? आप तो परम दानी हैं । आपके सामने हमलोग किसी हिसाबमें नहीं हैं । यदि आप हमारे राज्यमें आते तो शायद् हमलोग आपकी कुछ सेवा भी करते, परन्तु यह विमला-पुरी तो हमारे ही लिये विदेश है । यहाँ तो जिस तरह माता बहुत प्रसन्न होने पर पुत्रकी बलैया लेकर सन्तोष मानती है, उसी तरह हमलोग भी आपको केवल प्रणाम करके ही सन्तोष मान सकते हैं । हाँ, यदि भविष्यमें कभी अवसर मिला, तो आप देखेंगे, कि हमलोग भी अपने अतिथियोंका आदर-सत्कार करनेमें किसीसे कम नहीं हैं ।"

इसप्रकार सिंहल नरेश अपनी सारी बातें कह गये, किन्तु वे वास्तवमें क्या कहना चाहते थे, सो कुछ भी राजा चन्दकी समझमें न आया । उन्होंने, जहाँ तक हो सके, इन लोगोंसे दूर ही रहनेमें अपना कल्याण समझा । इसलिये उन्होंने कहा कि,—"हे राजन् ! आपलोग चन्दके धोखेमें पड़कर मुझे इतना सम्मानित क्यों कर रहे हैं ? मैं एक विदेशी मुसाफिर हूँ और आप एक बड़े राजा हैं । आप चतुर होकर भी ऐसी गलती क्यों कर रहे हैं ? मेरी और आपकी कोई जान पहचान भी नहीं है । चन्द तो पूर्व दिशाका स्वामी

और मैं एक साधारण क्षत्रीय पुत्र हूँ। ऐसी अवस्थामें आप जान-बूझकर ऐसी वातें क्यों करते हैं ? शायद मेरे और चन्दके रूप-रंगमें समानता देखकर आपलोग भ्रममें पड़ गये होंगे। संसारमें ऐसे वहुत मनुष्य होते हैं, जिनके रूप-रंगमें समानता पायी जाती है, किन्तु उनका गुण जाने विना, उनसे किसी तरहका सम्बन्ध स्थापित करना ठीक नहीं है। कपूर और नमक—दो देखनेमें उज्वल मालूम होते हैं; पर उनके गुणमें जमी आसमानका फर्क होता है। इसलिये आप भ्रममें न प और मुझे जानेकी आज्ञा देनेकी कृपा करें।"

यह सुन सिंहलनरेशने कहा,—"राजन् ! इ तरहकी वातोंसे हमलोग भुलावेमें नहीं पड़ सकते हमें अच्छी तरह मालूम हो गया है, कि आपही आभानरेश हैं। सत्पुरुष कभी छिपे नहीं रहते। वे अपने आचरणोंसे अपने आप प्रकट हो जाते हैं। चाहे जितने जलमें डुबाइये, किन्तु तोंबड़ी ऊपर आये विना नहीं रहती। कस्तूरी अपने आपको भलेही छिपाये, परन्तु उसकी सुगन्ध उसे प्रकट किये विना नहीं रह सकती। हमलोग वहुत दिनोंसे आपके आगमनकी राह देख रहे थे। आज ठीक समयपर आप यहाँ आ पहुँचे हैं। अब आप अपनेको

छिपाना छोड़ दीजिये और हमारा एक काम कर, हमें सदाके लिये अपना ऋणी बनाइये।"

राजा चन्द और सिंहल नरेशमें इस तरहकी बात-चीत हो रही थी, इसी समय सिंहल नरेशका हिंसक नामक मन्त्री वहाँ आ पहुँचा। वह महा दुर्बुद्धि, कपटी, कुटिल और दुराग्रही था। झूठ तो वह इतना बोलता था कि जिसका कोई ठिकानाही नहीं था। जहाँ जल होता, वहाँ स्थल बतलाता और जहाँ स्थल होता वहाँ जल। इसतरह सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्त पर्यन्त झूठ बोलना ही उसका काम था। उसने आतेही चन्द राजाको प्रणाम कर, अपना आसन ग्रहण किया और अपनी कुटिलता दिखानी आरम्भ कर दी। उसने प्रसन्न वदनसे कहा,—"हे नरेश्वर चन्द! आज हमलोगोंको आपके दर्शनसे असीम आनन्द हुआ है। अब आपको हमारे महाराजकी प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिये। इस तरह अपने आपको छिपानेसे काम न चलेगा। हमलोग नादान बच्चे नहीं हैं, जो आपकी बातोंके भुलावेमें पड़ जायेंगे। हमें झूठ बोलना पसन्द नहीं है। आपको अब व्यर्थ समय नष्ट नहीं करना चाहिये और यह भी जान लेना चाहिये, कि अब हमारा काम किये बिना आप यहाँसे जा नहीं

सकते। हमलोगोंने आपकी बड़ी आशा कर रक्खी है। किसी कल्पनाके आधार पर हमलोग आपको यहाँ नहीं पकड़ लाये हैं; बल्कि देवीके वचनसे ही आपको हमलोगोंने पहचाना है। समय थोड़ा और काम बहुत है, इसलिये अब इन्कार न कीजिये। आधीरात होना चाहती है। आपसे हमें काम लेना है, इसलिये हमलोग कोई कड़ी बात भी आपसे नहीं कह सकते। अधिक आग्रह कराना बुरा है, इसलिये आप हमें भुलावेमें डालना छोड़ दीजिये और हमें आज्ञा दीजिये, ताकि हम अपनी प्रार्थना आपको कह सुनायें।"

मन्त्रीकी यह खरी-खरी बातें सुनकर राजा चन्द बड़े ही असमंजसमें पड़ गये। अब न उनसे हाँ कहते बनता, न इन्कार करते। कुछ देर तक इसी विचारमें रहे, अन्तमें उन्होंने कहा,—"अच्छा कहिये, आपकी क्या आज्ञा है? आप चन्दके लिये इस तरह व्याकुल क्यों हो रहे हैं? क्या संसारमें और आदमी नहीं है, जो आपका काम कर सके? खैर, अब आपलोगोंको जो कहना हो सो कहिये। मैं आभानगरीका निवासी हूँ और जो काम चन्द कर सकता है, वह मैं भी कर सकता हूँ।"

आभापतिके यह वचन सुन, सिंहलनरेशको विश्वास हो गया, कि वे राजा चन्दही थे, कोई और नहीं। इससे

उन्हें बहुतही आनन्द हुआ और उन्होंने अपने मन्त्रीकी ओर देखा। मन्त्रीने कहा,—"राजन्! आभानरेश आपकी सारी चिन्तायें दूर कर सकते हैं। इनसे कोई भी बात छिपानेकी जरूरत नहीं है। जो आप कहना चाहते हैं, वह इनसे स्पष्ट शब्दोंमें कह दीजिये, क्योंकि लज्जा या छिपावट रखनेसे आपका कार्य सिद्ध न हो सकेगा।"

मन्त्रीकी यह बातें सुन, राजा चन्द अपने मनमें सोचने लगे कि,—"यह लोग क्या कहते हैं? सो समझ नहीं पड़ता। न जाने मुझे यहाँ कौनसा काम करना होगा? मुझसे वह हो सकेगा या नहीं? अब तो मैं इन लोगोंके पंजेमें बुरी तरह फँस गया हूँ। यह सबके सब बड़ेही धूर्त मालूम होते हैं, परन्तु अब तो इनकी बातें सुनने और यह जो कुछ कहें, वह चुप-चाप कर देनेके सिवा और कोई उपाय नहीं दीखता।"

राजा चन्दको इस तरह विचार करते देख, सिंहल नरेशने कहा,—"राजन्! आप चिन्तामें क्यों पड़ रहे हैं? हमलोग कोई ठग नहीं हैं, जो आपको ठग लेंगे। आप अपने हृदयमें जरा भी सन्देह न करें। आप जैसे परोपकारी पुरुषको संसारमें विरली ही माता जन्म देती है। देखिये, सूर्य सारे संसारको प्रकाशित करता है, वृक्ष फल-फूल देते हैं, चिन्तामणि रत्न मन-वाञ्छित फल

देता है, गाय तृण खाकर भी दूध देती है, परन्तु इनके कार्योंका क्या कभी कोई बदला दे सकता है ? क्या इनका मूल्य कभी चुकाया जा सकता है ? इसी तरह आप भी परोपकारी पुरुष हैं, आपके समान परोपकारी सज्जन विरले ही होते हैं। हमलोग आपकी पूरी आशा लगाये बैठे हैं। हमें विश्वास है कि आप हमारी आशा अवश्यही पूर्ण करेंगे।"

इस समय वहाँ सिंहल नरेश, उनकी रानी, कनकध्वज नामक उनका कोढ़ी पुत्र, हिंसक मन्त्री, कपिला नामक धाय और राजा चन्दके सिवा और कोई उपस्थित न था। इस समय यह सब लोग इस तरह शोभा दे रहे थे, जिस तरह पञ्चेन्द्रियोंके साथ मन शोभा देता है। राजा चन्दने एकान्त देखकर कहा,—"हे सिंहल नरेश! आपको जो कुछ कहना हो वह स्पष्ट शब्दोंमें कहिये। आपकी अस्पष्ट बातें मेरी समझमें नहीं आती, आप लोग बाहरसे तो विवाहोत्सव मना रहे हैं, किन्तु भीतरसे आप मुझे अत्यन्त चिन्तित दिखायी देते हैं। यदि आप अपना असली भेद न बतायेंगे, तो मैं बिना सोचे-समझे आपका कार्य कैसे कर सकूँगा ? इधर मुझे सवेरा होनेके पहले ही आभापुरी लौट जाना है, अतः कृपया शीघ्र ही बतलाइये, कि आप मुझसे कौनसा कार्य कराना चाहते हैं ?

और यहभी कहिये कि मेरा नाम धाम और कुल आदि आपको कैसे मालूम हो सका ।"

राजा चन्दका यह प्रश्न सुनकर सिंहल नरेशने मन्त्री-की ओर संकेत किया। अतएव मन्त्रीने कहा,—"हे आभा नरेश ! आप हमारे रक्षक हैं। हमारे एकमात्र आशा स्थान हैं। इसलिये हम कोई भी बात आपसे छिपाना नहीं चाहते। ऊँटकी चोरी छिपकर कैसे की जा सकती है? जब पैरमें घुंघरू बाँधकर नाचना ही है तो फिर घुंघटसे क्या प्रयोजन? जब सेवक बनकर सेवा ही करनी हो, तो फिर लज्जा क्यों रखनी चाहिये? आपसे सच्ची बात कहनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं है। हमलोगोंने आपको इसीलिये बुलाया है कि राजकुमार कनकध्वजके लिये आप राजपुत्री प्रेमलालच्छी ब्याह दें। आपसे हमारी यही प्रार्थना है। आप परम दयालु और परोपकारी हैं। इसलिये हमें पूर्ण विश्वास है, कि हमारा यह कार्य आप अवश्य ही करेंगे।"

यह सुन आभा नरेशने कहा,—"आप लोग यह क्या कह रहे हैं? मैंने तो सुना है कि प्रेमला-लच्छीका ब्याह सिंहल नरेशके पुत्रसे होनेवाला है। और यही जानकर उसका उत्सव देखनेके लिये मैं यहाँ पर आया हूँ। मेरी तरह अन्यलोग भी यही कहते हैं कि

प्रेमलालच्छीका व्याह कनकध्वजके साथ होनेवाला है। कृपया बतलाइये कि अब कनकध्वज उससे व्याह क्यों नहीं करता ? व्याह करनेमें उसे क्या आपत्ति है, जिससे यह भार आप मेरे शिर डाल रहे हैं ?" यह सुन मन्त्रीने कहा,—"राजन् ! कुमार कनकध्वज पूर्व कर्मके उदयसे कोढ़ी हो गया है। यह बात किसीसे कहने योग्य नहीं है। किसी तरह उसका विवाह प्रेमलालच्छीके साथ होना स्थिर हुआ है। अब इसको निभाना आपके ही हाथ है। तूफ़ानके कारण नौका मझधारमें जा पड़ी है, उसे अब किनारे लगाना आपही का काम है और सिंहल नरेशकी लज्जा रखना भी आपके ही हाथमें है।" यह सुन राजा चन्दने कहा,—"यदि कुमारको कुष्ट हो गया था तो आपने उसका विवाह क्यों स्थिर किया राजकुमारीके साथ आपकी ऐसी कौनसी शत्रुता है जिससे उसका व्याह आप एक कोढ़ीके साथ करने जा रहे हैं ? आपलोग उसका जीवन इसतरह क्यों नष्ट कर रहे हैं ? ईश्वर ऐसा पाप कैसे देख सकेगा ? आप यह भार मेरे मत्थे क्यों डाल रहे हैं। भला, उस राज-कन्या के साथ व्याह कराना मेरे लिये क्या कभी सम्भव है मुझमें ऐसी योग्यता भी नहीं है, इसपर भी यदि किसी तरह व्याह हो जाय तो व्याह करनेके बाद उसे कि

आपको दे देना यह मुझसे कैसे हो सकेगा ?"

इस प्रकार चन्द राजाने हिंसक मन्त्री और सिंहल नरेशको बहुत समझाया, परन्तु उनपर इन बातोंका कोई असर न पड़ा। वे दोनों पूर्वकी ही भाँति राजा चन्दकी खुशामद करते रहे। अन्तमें राजा चन्दने हिंसक मन्त्रीको एकान्तमें ले जाकर कहा,—"आपलोग यह अनुचित भार मेरे शिर क्यों डाल रहे हैं? आज पहली ही बार मेरा और आपका परिचय हुआ है। केवल इर्षाके बल पर आप मुझसे यह अनुचित कार्य कराना चाहते हैं; किन्तु इसमें कोई लाभ नहीं हो सकेगा। प्रेमलालच्छीके समान रूपवती राज-कुमारीको कोढ़ी राज-कुमारके गले लगाना यह तो महान पातक है। मैं तो आपको यही सम्मति देता हूँ कि इस विवाहका विचार ही छोड़ दीजिये। यदि आप ऐसा नहीं करसकते तो मुझे यह कहिये कि आपका देश और नगर कहाँ है? यह अनुचित सम्बन्ध किस प्रकार हुआ? यदि आप सारी सच्ची बातें बतला देंगे, और किसी प्रकारका कपट न रक्खेंगे तो मैं आपकी प्रार्थना पर अवश्य ही विचार करूँगा।"

आभा नरेशके यह आशापूर्ण वचन सुनकर हिंसक मन्त्रीने कहा,—"राजन्! सिन्धु नदीके किनारे पर सिन्ध नामक एक देश है। उस देशमें सिंहलपुरी नामक

एक बहुत बड़ी और सुन्दर नगरी है। वहाँ जन्म लेने वाले मनुष्य परम भाग्यशाली माने जाते हैं। जिनसे आप बातें कर रहे थे, वही सिंहलपुरीके नरेश हैं। इनकी रानीका नाम कनकवती है। और मैं भी उन्हींका मन्त्री हूँ। मेरा नाम हिंसक है। राज्यके छोटे-बड़े सभी काम मेरे अधीन हैं। मेरी आज्ञाके बिना वहाँका एक पत्ता भी इधरसे उधर नहीं हो सकता। हमारे महाराजके पास चतुरङ्गिणी सेना और अपार सम्पदा है। हमारे प्रजाजन भी धन-धान्यसे पूर्ण सम्पन्न हैं। दरिद्र तो वहाँ कोई खोजने पर भी नहीं मिलता। विद्वान पण्डितोंकी भी वहाँ कोई कमी नहीं है। वहाँकी स्त्रियाँ भी बड़ी ही सुन्दरी, सुशीला, पति-परायणा और शान्त प्रकृतिकी हैं।"

कई वर्ष पहलेकी बात है कि, एक दिन राणी कनकवती अपने महलमें बैठी-बैठी पुत्र प्राप्तीके लिये चिन्ता कर रही थी, मारे दुःखके उसकी आँखोंसे अश्रु-धारा बह निकली। इससे उसके कपड़े भींज गये। वह ठंढी सांसें ले लेकर, बिना पानीके मछलीकी तरह छटपटाने लगी। स्वामिनीकी यह अवस्था देखकर एक दासी तुरन्त राजाके पास दौड़ गयी और उनसे यह समाचार कह सुनाया। राजा उसी समय महलमें चले आये और अनेक प्रकारसे रानीको

आश्वासन देने लगे। उन्होंने पूछा,—"हे चन्द्रानने! तुम इस तरह उदास क्यों हो रही हो? क्या किसीने आज तुम्हारी आज्ञाका अनादर किया है? या किसीने तुम्हें कटु वचन कहा है? अथवा किसीने तुम्हारा जी दुखाया है? बोलो बोलो, मैं उसे इस अपराधके लिये अवश्य ही कठोर दण्ड दूँगा। तुम मुझे प्राणसे भी अधिक प्यारी हो। अपनी इस उदासीका कारण शीघ्र ही कहो!" यह सुन रानी कनकवतीने कहा,—"प्राणनाथ! आपकी कृपासे मुझे किसी बातकी कमी नहीं है। दास-दासी सभी हाथ बांधे खड़े रहते हैं। किसीकी हिम्मत नहीं जो मेरी आज्ञाका अनादर करे। फिर आपके समान पती पाकर मैं नित्य नये-नये वस्त्र धारण करती हूँ, तरह तरहके आभूषण पहनती हूँ। इस तरह मुझे सभी प्रकारका सुख है; किन्तु बिना पुत्रके यह सुख व्यर्थ है, तृण-तुल्य है। बिना पुत्रके मेरा जीवन वन पुष्पकी भाँति निष्फल हो रहा है। मनुष्य चाहे जितना धनवान हो, किन्तु यदि उसके पुत्र नहीं होता है तो सुबहके वक्त लोग उसका मुँह भी देखना पसन्द नहीं करते। जिसके घरमें जमीन पर लोटनेवाले, रोने धोने और गिरने पड़नेवाले, तोतली बोली बोलनेवाले, धूलि भरे बदनसे गोदीमें बैठनेवाले और लकड़ीका घोड़ा बना-

कर गलियोंमें खेलनेवाले पुत्र होते हैं, उसीका जीवन सफल होता है। पुत्रसे कीर्ति बढ़ती है, वंशका विस्तार होता है, सम्पत्ति प्राप्त होती है, खोयी हुई जमीन-जायदाद वापस मिलती है, वृद्धावस्थामें सुख प्राप्त होता है और मरुभूमि जैसे शुष्क जीवनमें भी आनन्दकी धारा प्रवाहित होती है। ऐसे एक पुत्रके विना मेरी गोद खाली है, मेरा महल सुना है। हे प्राणनाथ! इसी दुख-चिन्तासे, आज मैं चिन्तित हो उठी हूँ। मेरे दुखका और कोई भी कारण नहीं है।" राजाने यह सुनकर कहा,—"प्यारी! तुम अपने हृदयसे इस दुखको निकाल दो। मैं मन्त्र-तन्त्रादिके अनुष्ठान द्वारा पुत्र-प्राप्तिके लिये भरसक उद्योग करूँगा। प्रयत्न करना ही अपना काम है। बाकी, यह तो तुम जानती ही होगी कि पुत्र आदि समस्त चीजोंकी प्राप्ति भाग्यानुसार ही हुआ करती है।"

इस प्रकार रानीको सान्त्वना दे, राजाने मुझे बुलाया और यह सारा किस्सा कह सुनाया। मैंने गम्भीरतापूर्वक विचार कर उन्हें अठ्ठम तप द्वारा कुलदेवीकी आराधना करने और उन्हें प्रसन्न कर पुत्र प्राप्त करनेकी सलाह दी। राजाको यह बात पसन्द आ गयी इसलिये उन्होंने दूसरे ही दिनसे अठ्ठम तप द्वारा

कुलदेवीकी आराधना करनी आरम्भ कर दी। तीन दिन पूरे होने पर कुलदेवी प्रकट हुई। उनके चरण जमीनसे चार अंगुल ऊँचे उठे हुए थे, कण्ठमें उत्तम और सुगन्धित पुष्पोंकी माला थी, आँखोंकी पलकें स्थिर थीं, मुख प्रसन्न था, नेत्र करुणापूर्ण और शरीर वस्त्र-भूषणोंसे सुशोभित था। देवीने कहा,—"राजन्! मैं तेरी आराधनासे प्रसन्न हुई हूँ। तुझे जिस चीजकी जरूरत हो, वह खुशीसे माँग सकता है। मैं तेरी मनोकामना अवश्य ही पूर्ण करूँगी।"

देवीके यह वचन श्रवणकर, राजाने हाथ जोड़ कर कहा,—"हे माया! आप कुलकी वृद्धि करनेवाली समृद्धिको देनेवाली और दुःखको दूर करनेवाली हैं। मैंने पुत्रके निमित्त आपकी आराधना की है। जिनके आँगनमें पुत्रके लिये, जिनके हृदयमें ज्ञानके लिये और जिनके गृहमें मुनिके लिये स्थान नहीं होता, ऐसोंका संसारमें होना न होना बराबर है। हे माता! आपको मेरी यह प्रार्थना अवश्यही स्वीकार करनी ही होगी। यदि मेरे पुत्र न होगा, तो आपकी पूजा कौन करेगा और आप कुलदेवी किस तरह कहलायेंगी? रत्नाकरके किनारेपर रहते हुए भी यदि मनुष्य दरिद्र बना रहे तो रत्नाकरके लिये लज्जाकी बात है। इसी तरह यदि

मेरे कुलमें पुत्र न होगा, तो वह आपके लिये ही लज्जाकी बात होगी। यदि आप इस सेवकपर प्रसन्न हैं, तो एक पुत्र अवश्य दीजिये। आपकी दयासे मुझे और किसी भी वस्तुकी कमी नहीं है। रानीके आग्रहसे मैंने आपकी आराधना की है और मुझे विश्वास है कि आप मेरी यह मनोकामना अवश्य ही पूर्ण करेंगी।" यह सुन कुलदेवीने कहा,—"राजन्! तेरी इच्छा अवश्यही पूर्ण होगी। शीघ्रही तुझे एक पुत्र प्राप्त होगा, किन्तु वह कोढ़ी होगा।"

राजाने हाथ जोड़कर कहा,—"पूज्य माताजी! जब आप प्रसन्न हैं और मुझपर इतनी कृपा कररही हैं, तब मुझे कोढ़ी पुत्र क्यों दे रही हैं? यदि देना ही है तो निरोगी पुत्र दीजिये।"

देवीने कहा,—"राजन्! तू चतुर होकर मूर्खोंकीसी बातें क्यों करता है? जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसाही भोगना पड़ता है। जिनेश्वर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव जैसोंको भी अपने किये हुए कर्म भोगने पड़ते हैं तो भला, सामान्य प्राणियोंकी क्या हकिकत है। जो प्राणी सम्पूर्ण सुकृत करता है, वही निरंतर सुख भोग सकता है। मैंने तुझे जो वरदान दिया है, वही ठीक है, उसमें किसी तरह हेर-फेर नहीं हो सकेगा।

राजाने उदास होकर कहा,—"यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मैं कर ही क्या सकता हूँ। परन्तु दयाकर यह तो बतलाइये, कि जब आप प्रसन्न हैं तो मुझे कोढ़ी पुत्र क्यों दे रही हैं?"

देवीने कहा,—"हे राजन्! इसका कारण बतलानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। मेरे पतिका नाम महर्द्धिक है। उनकी हम दो देवियाँ हैं और दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक अपना समय व्यतीत कर रही हैं। एक दिन मेरे पतिने मुझसे छिपाकर, मेरी सौतको एक हार दे दिया था, इससे मेरे हृदयमें ईर्ष्याग्नि धधक उठी और हम दोनोंमें झगड़ा हो गया। इसी समय मेरे पति आ पहुँचे और उन्होंने भी मेरी सौतका ही पक्ष लिया। इससे मुझे बहुत ही बुरा मालूम हुआ और मैं उदास हो गयी। ठीक, इसी समय तेरी आराधनाके कारण मेरा ध्यान तेरी ओर आकर्षित हुआ और मुझे यहाँपर आना पड़ा। मैंने तुझे वर तो दिया है; पर आन्तरिक वैमनस्यके कारण मेरे मुँहसे कोढ़ी पुत्रकी बात निकल गयी। हमलोग एक बार जो वर देती हैं, उसे फिर किसी तरह नहीं पलटाती। मनुष्यके भाग्य में जैसा बदा होता है वैसी ही बात हमारे मुँहसे निकल जाती है। इसलिये हे राजन्! अब तुझे

किसी तरहकी चिन्ता न करनी चाहिये।" यह सुन राजाने सोचा कि अपुत्र रहनेकी अपेक्षा तो कोढ़ी पुत्रका होना किसी अंशमें ठीक ही है, अतः देवी उसी समय अन्तर्धान हो गयीं और राजा आराधना पूरी करनेके बाद मेरे पास आये। उन्होंने मुझसे वर प्राप्तिका सारा हाल कह सुनाया। उस समय मैंने राजाको यह कहकर सान्त्वना दी, कि एक बार पुत्र तो होने दीजिये। यदि उसके कुष्ठ होगा, तो उसे निवारण करनेकी चेष्टा की जायगी। मेरी इस सान्त्वनासे रानीको भी आनन्द हुआ। इसके बाद उसी दिन रानीके उदरमें गर्भ-सञ्चार हुआ। इसलिये राजाने महलके एक गुप्त तहखानेमें रानीके लिये रहने की व्यवस्था कर दी। जिस तरह कृपणकी सम्पत्ति सदा जमीनके नीचे ही रहती है और उसे कोई देख नहीं सकता, ठीक वही अवस्था रानीकी थी। गर्भावस्थामें उन्हें कोई भी फिर देख नहीं सका। गर्भ-काल पूर्ण होनेपर रानीके उदरसे पुत्रका जन्म हुआ। यह शुभ-संवाद राजाके पास गया तो उन्हें बड़ाही आनन्द हुआ। कई दिन तक नगरमें उत्सव मनाया गया। हाट-बाट ध्वजा-पताकाओंसे सजाये गये और घर-घर मंगलाचार हुए। नगर-निवासिओंने राज-सभामें उपस्थित हो

राजाको वधाई दी और राजाने यथोचित भेंट-पुरस्कार दे सम्मानित किया। राज-कुमारका नाम कनकध्वज रक्खा गया, परन्तु वह जन्मके दिनसे ही कुष्ट रोगसे पीड़ित रहने लगा। इस रोगको दूर करनेके लिये अनेक उपाय किये गये; किन्तु कोई लाभ न हो सका।

जिस तरह खानिमें रत्नकी वृद्धि होती है उसी तरह उस तहखानेमें राज-कुमार बड़ा होने लगा। उसके पास कपिला धायके सिवा और किसीको जानेकी आज्ञा नहीं थी। वही राज-कुमारका लालन-पालन किया करती थी। राज-कुमारको कभी भी बाहर न निकलते देख, लोगोंको बड़ाही आश्चर्य होता था। ज्यों-ज्यों समय बीतता था, त्यों-त्यों लोगोंकी राज-कुमारको देखनेकी लालसा भी बढ़ती जाती थी। अनेकबार लोग वस्त्राभूषण ले लेकर राज-सभामें आते और राज-कुमारको देखनेकी इच्छा प्रकट करते, परन्तु उन्हें सदा निराश होकर ही लौटना पड़ता था। मैं सबसे यही कह दिया करता था कि राज-कुमार बहुतही सुन्दर हैं। किसीकी नजर न लग जाय, इसलिये उन्हें सदा तहखानेमें ही रक्खा जाता है। बड़े होने पर जब वे बाहर निकलेंगे, तब आपलोग उन्हें देख सकेंगे। लोग मेरी बात सच मानने लगे और राजाके भाग्यकी सराहना करने लगे। वे यह कहकर सन्तोष

मानते कि जिसका मुख सूर्य भी नहीं देख सकते, उ
हमलोग कैसे देख सकते हैं। खैर, वे चिरंजीवी हों
किसी-न-किसी दिन तो देखनेको मिलेंगे ही। शास्
कारोंका कथन है कि सार वस्तुको यत्नसे ही रखना
चाहिये। राज-कुमारकी इस प्रकार रक्षा की जा रही है
सो ठीकही है।

धीरे धीरे यह वात देश-देशान्तर में भी फैल गयी
लोगोंको क्या मालूम कि हमारी इन वातोंमें क्या रह
छिपा हुआ है? खैर, कुछ दिनोंके वाद हमारे नगर
व्यापारी इस विमलापुरीमें अपना माल बेचने आये। य
एकदिन वे राजा मकरध्वजसे मिलनेके लिये उसकी राज
सभामें उपस्थित हुए। राजाने उनका वहुत आद
सत्कार किया। इसी समय अपने पिता की गो
प्रेमलालच्छी आकर वैठ गयी। उसका रूप-लाव
और उसकी चतुरता देखकर वे व्यापारी आश्चर्यमें
गये। उस समय मकरध्वजने कहा कि तुमलोग कि
देशमें रहते हो और उस देशका राजा कौन है, इस
उन्होंने कहा कि,—"हमलोग सिन्धु देशके रहने
हैं। वहाँ अलकापुरीके समान सिंहलपुरी नाम ए
नगरी है। उस नगरीमें कनकरथ नामक राजा रा
करते हैं। उनके पुत्रका नाम कनकध्वज है। स

कामदेवके समान बड़ाही सुन्दर है, इसलिये सदा उसे एक तहखानेमें ही रक्खा जाता है। लोग उसे देखने-के लिये बहुतही लालायित रहते हैं, परन्तु राजाको भय है कि उसे बाहर निकालनेसे शायद किसीकी नजर लग जाय। इसलिये अबतक किसीने भी अपनी आँखोंसे नहीं देखा है, परन्तु हमलोगोंने सुना है कि उसका सौ-न्दर्य कामदेवको भी मात करनेवाला है।"

व्यापारियोंकी यह बात सुनकर राजा मकरध्वजको बहुतही आनन्द हुआ। व्यापारियोंको पोशाक आदि देकर विदा करनेके बाद उसने अपने मन्त्रीको बुलाया और उसे कनकध्वजके रूपका हाल कह सुनाया। मन्त्रीने जब यह बातें कहनेका कारण पूछा, तो राजा-ने कहा,—"तुम्हें मालूम ही है कि हमलोग बहुत दिनों-से राज-कन्या प्रेमलाके लिये वर खोज रहे हैं। आज अचानक यह समाचार सुनकर, मुझे विचार हो आया कि यदि व्यापारियोंकी बात ठीक हो, तो उसी कुमारके साथ राज-कुमारीका विवाह क्यों न कर दिया जाय? मेरी समझमें तो ऐसा वर मिलना कठिन है। यदि तुमारी राय हो, तो यह सम्बन्ध ठीक कर लिया जाय।"

मकरध्वजका मन्त्री बड़ाही चतुर था, इसलिये उसने कहा,—"महाराज! परदेशी आदमियोंकी बातोंपर कैसे

विश्वास किया जाये ! भला हो या बुरा; किन्तु सभी अपनी बातोंका समर्थन करते हैं। विदेशमें सभी लोग अपने देशादिककी प्रशंसा करते हैं। अपनी माताको कोई भी अपने मुँहसे चुड़ैल नहीं कहता। कुरूप और काना वर होने पर भी उसकी माता तो हमेशाँ प्रशंसा ही करती है। अपने देशके काँटे भी प्रिय मालूम होते हैं, परन्तु विदेशके फूल प्रिय नहीं मालूम होते। यह व्यापारीलोग वहींके रहनेवाले हैं, इसलिये मेरी समझमें इनकी बातोंपर विश्वास करना ठीक नहीं। हाँ, यदि किसी दूसरे देशके व्यापारी या मुसाफिर ऐसी कोई बातें कहें, तो उसपर विश्वास किया जा सकता है।"

मन्त्रीकी यह राय राजाको पसन्द आ गयी इसलिये उसने यह बात मान ली। इसके बाद सभा विसर्जन कर राजा शिकार खेलनेके लिये जंगल चला गया और वहाँ मृगादि अनेक पशुओंका शिकार करने लगा। इसी समय मन्त्री भी वहाँ जा पहुँचा। राजा श्रमित हो गया था, इसलिये एक तालाबके किनारेपर वे दोनों बैठकर विश्राम करने लगे। इसी समय कई सौदागर उधरसे आ निकले और पानी पीनेके लिये उस तालाबके पास ठहर गये। राजाने उन्हें अपने पास बुलाकर आदरपूर्वक पूछा,—"आप लोग परदेशी मुसाफिर हैं और

अनेक देशोंको देखते हुए यहाँ आये हैं। मुझे देश-देशान्तरोंकी विचित्र और आश्चर्यपूर्ण बातें सुननेका बड़ाही शौक है। यदि आपलोगोंने वैसी कोई बात देखी या सुनी हो, तो मुझे सुनानेकी कृपा करें।"

राजाकी यह बात सुन, सौदागर उनके पास बैठ गये और देश-विदेशके आश्चर्य-जनक हाल सुनाने लगे। बात-चीतके सिल-सिलेमें उन्होंने कहा,—"राजन्! कुछदिन हुए हमलोग सिन्ध देश गये थे। वहाँ सिंहल-पुरी नामक नगरीमें कनकरथ नामक राजा राज करता है। उसके पुत्रका नाम कनकध्वज है। वह बहुतही रूपवान है। चारों ओर उसके रूपकी प्रशंसा हो रही है। परन्तु आश्चर्यकी बात यह है; कि वह सदा एक तहखानेमें ही रक्खा जाता है। सुना है कि, उसे इसी भयसे बाहर नहीं निकाला जाता, कि बाहर निकालनेसे उसे किसीकी नजर लग जायेगी या सूर्यके तापसे उसका सुकोमल शरीर मुरझा जायगा।"

इसी तरहकी और भी अनेक बातें सौदागरोंने राजाको कह सुनायीं, जिससे उन्हें बड़ीही प्रसन्नता हुई। इसके बाद राजाने उन व्यापारियोंको पुरस्कार-सरपाव आदि दे कर विदा किया। कनकध्वजके रूपके विषयमें राजाको अब कोई सन्देह न रहा। उसने स्थिर किया

कि प्रेमलाका विवाह उसके साथ करना किसी तरह भी अनुचित न होगा। परन्तु मन्त्रीका सन्देह इतने पर भी दूर न हुआ। उसने कहा,—"राजन्! मुझे अब भी विश्वास नहीं होता है। कानकी सुनी और आँखकी देखी बातोंमें बहुत अन्तर हुआ करता है। यह सब लोग केवल सुनी हुई बातें कहते हैं। यदि हम-लोगोंका कोई आदमी वहाँ जाय और कनकध्वजका रूप अपनी आखों देख आये, तब यह बातें सच्ची मानी जा सकती हैं। विवाहकी चर्चा करना उसी अवस्थामें ठीक होगा। यह कोई मामूली बात नहीं । इस पर समूचे जीवनका सुख-दुःख निर्भर रहा रता है, इसलिये इस सम्बन्धमें पहले पूरी तरह जाँच कर लेनी चाहिये।"

हमारे नगरके व्यापारी अब तक वहीं थे। इसलिये मन्त्रीकी सलाह मानकर, राजाने उन व्यापारियोंको अपने पास बुलाकर उनसे कहा,—"आपलोगोंको हमारा एक कार्य करना होगा। वह यह कि आप हमारे मन्त्रियोंको साथ लेकर सिंहलपुरी जाइये और वहाँ उन्हें राज-कुमारको दिखाइये। यदि वह हमारी राज-कन्याके लिये उपयुक्त वर हो, तो वहीं श्रीफल देकर, विवाह पक्का कर लीजिये। यदि आप हमारा इतना कार्य

कर देंगे, तो बड़ी कृपा होगी और हम सदाके लिये आपके चिर-ऋणी बने रहेंगे।"

व्यापारियोंने कहा,—"राजन्! यह कौनसा ऐसा बड़ा कार्य है, जिसके लिये आप नम्रतापूर्वक इस तरह अनुरोध कर रहे हैं। हमें यह कार्य करनेमें जरा भी आपत्ति नहीं है। इधर जैसी रूपवती और सुशीला आपकी राज-कुमारी है; उधर वैसाही रूपवान राज-कुमार है। विधाताने मानों एक दूसरेकी जोड़ी मिलानेके लिये ही इन्हें उत्पन्न किया है। यदि किसी तरह यह विवाह सम्बन्ध ठीक हो गया, तो हमें बहुत ही आनन्द होगा। आप अपने मन्त्रियोंको सहर्ष हमारे साथ भेजिये। हम लोग इस कार्यके लिये भरसक चेष्टा करेंगे।"

उसी समय राजाने इस कार्यके लिये चार चतुर मन्त्रियोंको तैयार कर दूसरेही दिन उन व्यापारियोंके साथ उन्हें सिंहलपुरीकी ओर रवाना किया। यथा समय वे सभी सिंहलपुरी पहुँचे। वहाँ जाकर व्यापारियोंने अपने मकान पर उन मन्त्रियोंको ठहराया और भोजनादि द्वारा अच्छी तरह उनलोगोंकी अतिथि सेवा की।

शामके समय, अच्छा अवसर देख, वे व्यापारी उन चारों मन्त्रियोंको हमारे महाराजके पास ले आये।

तदन्तर उनको बाहर बैठाल, उन्होंने एकान्तमें जाकर राजासे सारा हाल कह सुनाया। इसके बाद मन्त्रियोंको उनके सम्मुख उपस्थित करते हुए उन्होंने कहा,—"हे राजन्! राज-कन्या प्रेमलालच्छीका रूप-लावण्य बहुत ही उत्तम है, शायद्ही उसके समान कोई रूपवती हो। उसे हम लोग अपनी आँखों देख आये हैं। राजा मकरध्वज उसका विवाह आपके राज-कुमारके साथ करना चाहते हैं। इसीलिये उन्होंने अपने इन मन्त्रियोंको आपकी सेवामें भेजा है।" इसके बाद राजाने उन चारों मन्त्रियोंको आदरपूर्वक आसन पर बैठाते हुए कुशल-समाचार पूछा और कहा कि आपलोग किस कार्यसे आये हैं। यह सुन, एक मन्त्री जो उन चारोंमें अग्रणी और परम चतुर था, उसने राजाके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए कहा,—"राजन्! हमलोग सोरठ देशसे आये हैं और हमारे महाराज मकरध्वजने हमें आपहीके पास भेजा है। आपके नगरके इन व्यापारियोंने महाराजके समक्ष आपकी और राज-कुमारकी बड़ीही प्रशंसा की थी। पश्चात् अन्य सौदागरोंने भी ऐसी ही बातें कहीं, जिससे इनके कथन पर राजाको विश्वास हो गया। राज-कुमार वास्तवमें ऐसे ही रूपवान हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं; क्योंकि

हंसके कुलमें ही हंस उत्पन्न हुआ करते हैं। हमारे महाराजके प्रेमलालच्छी नामक एक पुत्री है, वह भी अत्यन्त रूपवती और विदुषी है। हमारे महाराजकी बड़ीही उत्कट इच्छा है कि दोनोंका विवाह सम्बन्ध कर दिया जाय और इसी कार्यके लिये उन्होंने हमें आपकी सेवामें भेजा है। अब हमारी समझमें यह सम्बन्ध हर तरहसे अच्छा मालूम होता है। राजकुमारी रूप, गुण और अवस्था—सभी तरहसे एक दूसरेके उपयुक्त हैं। हमारे महाराज सोरठ देशके राजा हैं और आप सिंहल देशके हैं। यह सम्बन्ध किसी तरह भी अनुचित नहीं है। हमारा आपसे अनुरोध है कि इस सम्बन्धके लिये आप अपनी अनुमति देकर हमारा यहाँतक आनेका परिश्रम सफल करें।"

मकरध्वजके मन्त्रीकी यह बातें सुन, हमारे महाराजने कहा,—"आपकी सारी बातें मैंने समझ ली हैं। ऐसे कार्योंमें शीघ्रता करनी ठीक नहीं। धीरजके फल सदा मीठे होते हैं। इसलिये, आप अभी यहाँ ठहरिये और हमारा आतिथ्य ग्रहण कीजिये। हम लोग अच्छी तरह सोच-समझ कर आपकी इस प्रार्थनाका उत्तर देंगे।" यह सुन मन्त्रीने कहा,—"राजन्! हमारे महाराज इस सम्बन्धके लिये बहुत ही उत्सुक हैं। इसीलिये

इतनी दूर हमें भेजा है। अब हम आपसे यही प्रार्थना करते हैं कि आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें और हमें निराश होनेका कारण न दें।"

राजाने कहा,—"आपका कहना यथार्थ है; पर मेरा पुत्र अभी बहुत छोटा है। अभीसे उसके विवाहकी बात करना ठीक नहीं। जब वह बड़ा होगा, तब देखा जायगा। अभी तो उसने महल भी नहीं देखा है। वह निरंतर तहखानेमें ही रहता है। उसे हमने गोदमें लेकर कभी खिलाया भी नहीं। फिर, आपकी राज-कुमारीको भी हमलोगोंने नहीं देखा है। इसलिये बिना कन्या देखे ब्याह कैसे हो सकता है? यदि आपके महाराज शीघ्रही ब्याह करना चाहते हों तो आप लोग दूसरा वर खोज सकते हैं। इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" यह सुन मन्त्रीने कहा,—"नहीं, महाराज! हमें ठहरनेमें कोई आपत्ति नहीं है। आप अच्छी तरह सोच-समझ लीजिये। पश्चात् आप जो उत्तर देंगे, वही हम अपने महाराजसे निवेदन कर देंगे। परन्तु आपसे हमारा यही कहना है, कि यह विवाह-सम्बन्ध सोने-सुगन्धका मेल है—मणि-काञ्चनका संयोग है। इसके लिये आप कदापि इन्कार न करें।"

राजाने मन्त्रियों की यह बातें सुन, उन्हें तो विदा

कर दिया और मुझे बुलाकर पूछा,—"कहिये, मन्त्रीजी ! अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये ? परदेशी आदमियोंको इस तरह कब तक हम लोग धोखा देते रहेंगे ? कबतक उन्हें अन्धकारमें रक्खे रहेंगे ? एक बड़े राजाकी रूपवती कन्याके साथ कोढ़ी राज-कुमारका ब्याह कैसे किया जा सकेगा ? मुझे तो इस तरह किसी-को धोखा देना जरा पसन्द नहीं है। कपटसे बढ़कर इस संसारमें और कोई दूसरा पाप नहीं है। सत्कर्मके लिये तो यह कुल्हाड़े की तरह घातक है। इसलिये, इन मन्त्रियोंको सच्ची बातें समझाकर लौटा देना चाहिये। जान-बूझकर देव-कन्या के समान राज-कुमारीके साथ अपने कोढ़ी पुत्रका विवाह कर देना मैं किसी प्रकार ठीक नहीं समझता। यदि अपनलोग कपट करेंगे, तो न जाने इसका कैसा बुरा फल भोगना पड़े, इसलिये इस दुष्कर्मसे तो मुझे दूरही रहना भला मालूम होता है। अब, कहिये, आपकी क्या सम्मति है ?"

महाराजके यह वचन सुनकर मैंने कहा,—"राजन् ! अबतक किसीको यह भेद मालूम नहीं है, कि राज-कुमार कोढ़ी है। यदि यह बात प्रकट ही करनी थी तो फिर उसे तहखानेमें बन्द कर क्यों रक्खा गया ? आरम्भही-से मिथ्या प्रचार हरगीज न करना चाहिये था। अब

यदि एकवार मिथ्या प्रचार किया जा चुका है, तो फिर डरनेकी क्या जरूरत है ? जब तक अपने अच्छे दिन हैं, तब तक जो कुछ करेंगे, वह ठीक ही होगा। यह मन्त्रीगण बहुत दूरसे आये हैं, इसलिये इन्हें किसी तरह निराश करना ठीक नहीं। यह सम्बन्ध बहुतही उत्तम है। ऐसा मौका शायद ही फिर हाथ आये। अब रह गयी बात, राज-कुमार के कोढ़ी होनेकी, सो इसके लिये मेरी समझमें फिर एकबार कुलदेवीकी आराधना करनी चाहिये। वे संभवतः इसे नीरोग कर देंगी। जो बात अब तक अपनलोग कहते आये हैं, उसे भविष्यमें भी निबाहना चाहिये। हिम्मत हारनेकी जरूरत नहीं है। ऐसे अवसर पर यदि झूठ बोलना पड़े तो वह बुरा नहीं। झूठसे सम्पत्ति मिलती है और झूठसे ही प्रतिकूल बातें अनुकूल बनती हैं। इसलिये झूठसे जरा भी डरनेकी जरूरत नहीं है। जिस तरह चोरी-जारी करनेवालोंको कोई-न-कोई सहायक मिल ही जाते हैं, उसी तरह हम लोगोंको भी कोई सहायक मिलही जायेगा। इसलिये आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें, हमलोग सब काम ठीक कर लेंगे।"

मेरी यह बात सुनकर राजाने कहा,—"मैं तेरे विचारोंसे सहमत नहीं हो सकता। साथ ही तेरे

कार्यमें बाधा देना भी ठीक नहीं समझता। इस विषयमें तुझे जो ठीक लगे सो कर। तू जैसा करेगा, वैसा तुझेही भोगना पड़ेगा।"

इसी तरहके विचारोंमें कई दिन बीत गये। पश्चात् एक दिन मकरध्वजके मन्त्रीगण राजाकी सेवामें उपस्थित हो कहने लगे कि,--"राजन्! विचार-ही-विचारमें इतने दिन बीत गये, परन्तु आपने कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। विवाह सम्बन्ध दोनोंकी इच्छासे ही हो सकता है, एककी इच्छासे नहीं। हमारा कहना तो केवल यही है कि आज नहीं तो चार दिनके बाद कुमार कनकध्वज का विवाह आप अवश्य ही करेंगे। जब किसीके साथ उनका विवाह करना ही है तब हमारी राज-कन्याके साथ ही क्यों न हो? हमारा और आपका यह सम्बन्ध किसी तरह भी अनुचित नहीं है। हम चाहते हैं कि जिस राज-कुमारका नाम हम अपनी राज-कन्याके नामके साथ उच्चारण कर चुके हैं, वह अब सदाके लिये उसीकी होकर रहे। जब लक्ष्मी घर आ रही है, तो उसे लौटा देना ठीक नहीं। यदि आप हमें निराशकर लौटा देंगे तो निःसन्देह यह बड़ी भूल होगी। हम तो आपसे यही कहते हैं कि सरको हाथसे हरगीज न जाने दीजिये।"

मन्त्रियोंकी यह बात सुन मैंने महाराजसे कहा,—"यह लोग इतनी दूरसे आये हैं और कई दिनोंसे यहाँ ठहरे हुए हैं, इसलिये इनकी यह प्रार्थना स्वीकार कर लेनी चाहिये, इन्हें निराश करना ठीक नहीं है। कुमार कनकध्वज और राज-कुमारी प्रेमलालच्छीका विवाह-सम्बन्ध किसी तरह अनुचित नहीं कहा जा सकता। इससे सिंहलपुरी और विमलापुरीका सम्बन्ध भी घनिष्ट हो जायगा, और परस्पर एक दूसरेको बड़ीही सहायता पहुँचेगी। इसलिये आपको यह प्रार्थना अवश्यही स्वीकार कर लेनी चाहिये।" यह कह मैंने महाराजके उत्तरकी प्रतीक्षा किये विना ही उनसे श्रीफल ले लिया और विवाह पक्का कर रिवाजके अनुसार पान-सुपारी बँटवा दिये। मकरध्वजके मन्त्रियोंको इससे बड़ाही आनन्द हुआ। अन्यान्य लोग भी बहुत प्रसन्न हुए। केवल हमारे महाराजको ही यह सम्बन्ध पसन्द नहीं आया।

इस तरह सब बातचीत ठीक हो जानेपर उन मन्त्रियोंने मुझसे कहा,—"आपने यह सम्बन्ध ठीक कराकर, हमलोगोंपर बहुतही उपकार किया है। अब हमें कृपा कर एकबार राजकुमारको दिखा दीजिये, ताकि हम अपने महाराजसे सारा हाल अच्छी तरह बता सकें। राज-कुमारको देखनेके लिये हमलोग उसी दिनसे

छटपटा रहे हैं, जिस दिन यहाँ आये थे, परन्तु दुर्भाग्य वश अभीतक हम लोग उन्हें देख नहीं सके।"

अब मुझे झूठका सहारा लेना पड़ा। मैंने उनसे कहा,—"राज-कुमार तो अपने ननिहालमें रहते हैं। वह यहाँसे डेढ़ सौ योजन दूर है। राज-कुमारके पास एक धायके सिवा और कोई नहीं रहता। वहाँ भी वे तहखानेमें ही रहा करते हैं। उनके शिक्षा-गुरु उन्हें बाहरसे ही पढ़ा कर चले जाते हैं। यानी वे भी राज-कुमारको देख नहीं सकते, ऐसी अवस्थामें राज-कुमारको दिखाना कैसे हो सकेगा? आप लोग पूरा इतिमनान रक्खें और किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। जिस समय राज-कुमार विवाह करने आयेंगे, उस समय देख लीजियेगा। इस समय तो लाचारी है।"

इस तरह मैंने बहुत कुछ कहा सुना और उन्हें समझानेकी भी बड़ी चेष्टा की, परन्तु उन्होंने किसी तरह भी कुमारको देखने की हठ न छोड़ी। अन्तमें कोई उपाय न देख, मैं उन्हें अपने घर ले गया। वहाँ मैंने उन्हें खूब खिलाया-पिलाया, बहुत आदर-सत्कार किया और तरह-तरहके वस्त्राभूषण तथा रत्नादि देकर उन्हें सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा की, परन्तु मुझे इसमें भी सफलता न मिली। उन्होंने फिर मुझसे कहा कि, किसी-न

तरह हमें राज-कुमारको अवश्यही दिखाइये। उन्हें देखे विना हम लोग यहाँसे नहीं जा सकते। उनकी यह बात सुन मैंने फिर उन्हें समझाते हुए कहा कि,—"महाशय! आपलोग इस छोटीसी बातके लिये इतना हट क्यों करते हैं? विश्वास कीजिये, राज-कुमार बड़ेही सुन्दर और सुशील हैं। हम लोग स्वयं कोई ऐसा कार्य नहीं करना चा ते, जिससे आपके महाराज आप-लोगोंपर क्रोधित हों। हम लोग भी सातबार छानकर पानी पीते हैं। यदि हम लोगोंको कोई कपट करना होता, तो हमारे लिये दुनिया पड़ी थी। आपलोगोंको फँसानेकी हमें जरूरत न थी। फिर, राज-कुमारका हाल तो किसीसे छिपा नहीं है। सारा संसार जानता है कि वे बड़ेही सुन्दर और सुशील हैं। उनके रूप-सौन्दर्यकी प्रशंसा सुनकरही तो आपलोग य ाँ तक आये हैं। हम सबोंने जो कार्य किया है, वह बहुत सोच-विचार करही किया है। इसमें किसी तरह आपकी हँसी नहीं हो सकेगी। यद्यपि यह कार्य हमारे लायक न था और हमारे महाराज किसी तरह भी यह सम्बन्ध स्वीकारनेको राजी न थे, परन्तु मैंने ही आपलोगोंकी बात रखनेके लिये उनपर जोर डाला और कि हसगाई मंजूर करायी। आपलोग यह सब अपनी ों। वों देख चुके हैं, फिर भी आप मुझे एक ऐसे कार्यके

लिये दबाते हैं, जिसका करना मेरी शक्तिके बाहर है। मैं तो यही कहूँगा कि आपलोग बहुत अच्छे मुहूर्तमें आये थे जो यह कार्य इतनी आसानीसे बन गया। आपकी राज-कुमारी भी बड़ीही भाग्यशाली है। उसने सच्चे दिल से ईश्वरकी उपासना की होगी, तभी तो उसे ऐसा पति मिला है। अब आपलोग अधिक कदाग्रह न करें। यह तो पूर्व-जन्मका संयोग था, इसीलिये यह सगाई हो गई। नहीं तो कहाँ हम और कहाँ आप!"

इस तरह मैंने उन लोगोंको बहुत समझाया, परन्तु वे किसी तरह राजी न हुए। जब मैंने देखा कि अब बात बिगड़ रही है और समझाने बुझानेसे काम नहीं चलता, तब मैंने उन चारों मन्त्रियोंको एक एक करोड़ रुपये देनेका प्रलोभन दिया। यह तो आप जानते ही हैं कि संसारमें ऐसे कोई विरलेही पुरुष होते हैं, जो रूपचन्दके फेरमें न पड़ते हों! करोड़ रुपयेका नाम सुनते ही उनके मुँहमें मानो ताले पड़ गये। जो अब तक लाल पीले हो रहे थे, वही अब एकदम ठंडे हो गये। उन्होंने कहा,—"अच्छा, मन्त्रीजी! उस बातको जाने दीजिये और यह बतलाइये, कि विवाह कब करेंगे? यदि इसी समय विवाहका दिन भी निश्चित हो जाय, तो और भी उत्तम होगा।"

इस तरह मन्त्रियोंको सन्तुष्ट कर, मैं उन्हें महाराजके पास लिवा ले गया। वहाँ ज्योतिषी बुलाये गये और छः महीने बादकी एक लग्न ठीक की गयी। राजाने भी मन्त्रियोंका सम्मान करनेमें कोई कसर न रक्खी, इसलिये उनके सामने भी कुछ कहनेकी उन्हें हिम्मत न पड़ी। उनका कार्य पूरा हो चुका था, अतः उन्होंने अब प्रस्थान करनेकी तैयारी की। हम लोगोंने उन्हें सम्मान पूर्वक विदा किया। रिश्वतके रुपये उन्होंने पहलेही अपने देश भेज दिये थे। यथासमय वे विमलापुरी पहुँच गये। वहाँ उन्होंने महाराजको सारा हाल कह सुनाया। उन्होंने भी राज-कुमारके सौन्दर्यकी उसी तरह प्रशंसा कर दी, जिस तरह सब लोग किया करते थे। राजा मकरध्वज इस समाचारको सुनकर बहुतही आनन्दित हुए। उन्होंने इस कार्यकी सफलताके लिये चारों मन्त्रियोंकी बड़ी प्रशंसा की और उन्हें एक लाख रुपये पुरस्कार दे, राज-सभामें सम्मानित किया। उन्हें इस बातका स्वप्नमें भी खयाल न था, कि इस कार्यमें किसी तरहका कपट-जाल किया गया हो।

इधर मैंने व्याहकी तैयारी करनी आरम्भ कर दी। हाथी, घोड़े और रथ आदि वाहन सजाये गये। बाराती भी आ-आकर इकट्ठे होने लगे। नगर-निवासी लोग

राज-कर्मचारियोंसे इस धूमका कारण पूछने लगे। उन्हें जब मालूम हुआ, कि राज-कुमारका ब्याह होनेवाला है, तब उनके आनन्दका वारापार न रहा। सब लोग समझने लगे कि अब राज-कुमारको देख कर अपने नेत्रोंको तृप्त करेंगे। चारों ओर इसीकी चर्चा होने लगी। यह सब तैयारी देखकर एकदिन महाराजने मुझे एकान्तमें बुलाकर कहा कि,—"मन्त्री! तू यह क्या अनर्थ कर रहा है? क्या सच-मुच उस भोली-भाली राज-कुमारीका जीवन नष्ट करेगा? कनकध्वजको इस तरह आखिर तू कहाँ तक छिपा सकेगा। जब वह ब्याह करने जायगा, तब उसका रूप-रंग अवश्यही प्रकट हो जायगा। उस समय यदि प्रेमलालच्छी ब्याह करनेसे इन्कार कर देगी, तो हम लोगोंको बहुतही नीचा देखना पड़ेगा और हमलोग संसारमें मुँह दिखाने लायक न रहेंगे।" यह सुनकर मैंने कहा कि,—"हे राजन्! आप किसी तरहकी चिन्ता न कीजिये। जैसे आपने पहले कुलदेवीकी आराधना की थी, वैसे ही इसबार भी कीजिये। वे अवश्यही कोई-न-कोई उपाय दिखलायेंगी।" यह सुनकर राजाने मेरी सलाह मान ली और उसी समय कुलदेवीकी आराधना आरम्भ कर दी। इससे देवीने पूर्ववत् प्रकट होकर कहा,—"हे

राजन् ! तुम मुझे वारंवार क्यों बुलाते हो ?" यह सुन राजाने हाथ जोड़ते हुए कहा,—"माताजी ! मेरे विरोध करने पर भी मन्त्रीने कुमार कनकध्वजका ब्याह पक्का कर लिया है। अब मेरी लज्जा रखना आपके ही हाथ है। जिस तरह हो सके कुमारको निरोग बना दीजिये। इसी कार्यके लिये आपको कष्ट दिया है। आप हमारी कुलमाता हैं, हमारा यह दुःख आप नहीं दूर करेंगी, तो और कौन करेगा ?"

देवीने कहा,—"हे राजन् ! पूर्व जन्मके वेदनीय कर्मोंके कारण तुम्हारा राज-कुमार रोग-ग्रस्त है, इसलिये वह किसी तरह निरोग नहीं हो सकेगा। परन्तु मैं किसी दूसरे उपायसे तुम्हारी यह चिन्ता अवश्य दूर कर सकती हूँ। सुनो, ब्याहके दिन एक पहर रात बीतने पर विमलापुरीमें पूर्वदिशाके द्वारसे, आभा नगरीके चन्द-राजा अपनी विमाता और पत्नीके पीछे, गुप्त वेशमें प्रवेश करेंगे। यदि उस समय उन्हें बुलाकर तुम लोग विनय-अनुनय करोगे, तो प्रेमलालच्छीके साथ ब्याह करनेको वे राजी हो जायँगे और इस तरह तुम्हारी यह चिन्ता दूर हो जायगी।" यह कह देवी अन्तर्धान हो गी। हमारे महाराजको इससे कुछ सन्तोष हुआ और वे भी ब्याहकी तैयारियाँ करवानेमें भाग लेने लगे।

धीरे-धीरे प्रस्थानका दिन आ पहुँचा। उस दिन एक हाथी पर, पर्देवाली अम्बारीमें राज-कुमारको बैठाकर हम लोगोंने विमलापुरीके लिये प्रस्थान किया। हमारा यह कपट-जाल किसीकी समझमें न आया। इस तरह बड़ी सज-धज और आडम्बरके साथ रास्ता तय करते हुये, हमलोग विमलापुरी आ पहुँचे। यहाँ राजा मकरध्वजने हम लोगोंके लिये निवास-स्थान आदिका प्रबन्ध पहलेहीसे कर रक्खा था, इसलिये आज कई दिनोंसे हम लोग उन्हीं का आतिथ्य ग्रहण कर रहे हैं।

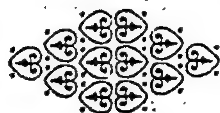
हे राजन्! इस तरह यहाँ तक तो हमें किसी कठिनाई का सामना न करना पड़ा। परन्तु आज राज-कुमार के व्याहका दिन था। आज तो हमारी लज्जा आपहीके हाथ थी, इसलिये हमलोग बड़ी उत्सुकतासे आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आप किसी तरह कहीं अन्यत्र न चलेजायें, इसलिये हमने शामसे ही नगरके प्रत्येक दरवाजे और प्रत्येक चौराहे पर अपने आदमी बैठा दिये थे। उन्हें अच्छी तरह समझा दिया था कि, दो स्त्रियोंके पीछे राजा चन्द नगर में प्रवेश करेंगे, उन्हें किसी भी तरह हमारे पास लिवा लाना होगा। तदनुसार हमारे आदमी आपको पहचानकर यहाँ लिवा लाये। अब आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कर, हमारे राज-कुमारके लिये प्रेमलालच्छी

ब्याह दीजिये । यदी आप इन्कार करेंगे, तो हम पाँच आदमी अन्न-जल त्यागकर, प्राण-दे देंगे । हमें जिलान या मारना अब आपकेही हाथमें है । यदि हमारा यह का आप नहीं कर देंगे तो हमारी अप्रतिष्ठा होगी औ हमारे शत्रु हमारी हँसी करेंगे । अधिक बात-ची करनेका भी मौका नहीं है । इस समय यदि आप वाद विवाद करेंगे, तो किसीतरह यह भेद खुल जायगा, क्योंकि राजमहल बहुतही नजदीक है । हम आप से जो कार्य कराना चाहते हैं, वह किसी प्रकार अनुचित नहीं है। अनेक बार दूसरोंके लिये दूसरे लोग ब्याह कर दिया करते हैं । यह कार्य देवीके आज्ञानुसार हो रहा है, अतः इसमें कोईभी दोष नहीं है । कृपया व्यर्थ समय नष्ट न कर हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिये, ताकि आगेका कार्य किया जाये ।"

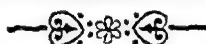
हिंसक मन्त्रीके मूँहसे यह समस्त वृत्तान्त सुनकर राजा चन्दने सिंहल नरेश से कहा,—"राजन् ! यह कार्य बहुतही अनुचित हुआ है । इसके लिये हिंसक मन्त्रीकी जितनी निन्दा की जाय, उतनी ही कम है । राज-कुमारीके साथ ब्याह कर उसे आपलोगों को सौंप देना यह मुझे उचित नहीं मालूम होता । इससे क्षात्र धर्मका नाश होता है । कृपया इस कार्यके लिये मुझसे आग्रह न

कीजिये। मुझसे यह कदापि न हो सकेगा।"

राजा चन्दने इस तरह अपना पीछा छुड़ाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु सिंहल नरेश और हिंसक मन्त्रीकी खुशामदके कारण अन्तमें उन्हें झुकना ही पड़ा। उन्होंने जब देखा कि यह कार्य किये बिना यहाँसे किसी तरह छुटकारा नहीं हो सकेगा, तब उन्होंने कुछ सोच-विचार कर, उनकी प्रार्थना स्वीकार करली। इससे सिंहल नरेश और हिंसक मन्त्रीको अत्यन्त आनन्द हुआ और उनकी सारी चिन्तायें दूर हो गयीं। उसी समय बरात तैयार करनेका हुक्म दिया गया, तरह-तरहके बाजे बजने लगे, हाथी घोड़े सजाये गये और चारों ओर चहल-पहल मच गयी।



आठवाँ परिच्छेद



विवाह और वियोग



ब्याहके लिये राजा चन्दकी स्वीकृति मिलने पर, उन्हें नहला धुलाकर अच्छे अच्छे वस्त्रा-भूषण पहनाये गये और बरात की तैयारी की गयी। यथासमय बरात कनकरथके डेरेसे निकलकर राजमहलकी ओर रवाना हुई। वर और बरातको देखनेके लिये रास्तेमें दोनों ओर लोगों की बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी थी। लोग वरको देख देखकर, मुक्तकण्ठसे उसकी प्रशंसा करते थे। रोशनीकी उज्ज्वलतासे दसों दिशाएँ देदिप्यमान हो रही थीं। जि धरसे बरात निकलती, उधर ही रातका दिन मालूम होत था। चन्द्रने भी आज आकाशमें मानो दूनी शोभ धारण की थी। वरका स्थान राजा चन्दने ग्रह किया था, परन्तु स्त्रियोंके गीतोंमें कुमार कनकध्वजका नाम लिया जाता था। वे एक बहुतही अच्छे घोड़े

सवार थे। दर्शकोंकी दृष्टि सबसे पहले उन्हीं पर पड़ती थी। कुछ लोग कहते थे कि यह कनकध्वज नहीं, कोई दूसरा ही पुरुष मालूम होता है। इनमेंसे कोई उन्हें उत्तर देते हुए कहता था कि,—"हमलोगोंने इसके पहले कनकध्वजको देखा ही कब था? वास्तवमें यह वैसा ही रूपवान है, जैसा हमलोगोंने सुना था। धन्य है राज-कुमारी प्रेमलाको, जिसे ऐसा सुन्दर वर मिला है। कनकध्वजकी माताको भी धन्य है, जिसने ऐसे सुन्दर ...को जन्म दिया है। इसके सामने देवताओंका रूप-...ण्य भी किसी हिसाबमें नहीं है।"

इस प्रकार चारों ओर भिन्न-भिन्न प्रकारकी चर्चा ...रही थी। अधिकांश लोग राज-कुमारके सौन्दर्यकी ...सा करते थे। धीरे-धीरे बरात राज-महलके समीप पहुँची, महलके सम्मुख आने पर वर-देवता घोड़े परसे ...वे उतर पड़े और सासने यथाविधि पूजनादि कर उन्हें ...मानपूर्वक मण्डपमें प्रवेश कराया। यथा समय ...मलालच्छी भी मातृ-गृहमें लाकर वरके सामने बैठायी ...। उस समय वे दोनों कामदेव और रतिकी तरह ...दे रहे थे। लोग उन्हें देख-देखकर आनन्दित ...थे और यह जोड़ी अखण्ड रखनेके ...भु-प्रार्थना करते थे।

इसी समय वीरमती और गुणावलीने मण्डपमें प्रवेश किया और वे दोनों भी वर-वधूको देखकर आनन्दित होने लगीं। शीघ्र ही वर-वधू वेदिकाके पास लाये गये और यथा विधि उनका पाणि-ग्रहण कराया गया। वैवाहिक क्रियायें पूर्ण होजानेपर गुणावलीने वीरमतीसे कहा,—"माताजी! क्या इस वरको आप पहचानती हैं? मुझे तो मालूम होता है कि, यह आपके ही पुत्र हैं।"

वीरमतीको गुणावलीका यह कथन बिलकुल असंभवसा मालूम हुआ, इसलिये उसने न तो इस बातका कोई उत्तर ही दिया न उस ओर ध्यान दिया। परन्तु गुणावलीके हृदय पर तो मानों साँप लोट रहे थे। उसने पुनः वरको अच्छी तरह देखकर कहा,—"माताजी! ध्यानसे देखिये, मेरा कहना बिलकुल ठीक है। यह मेरे पतिदेव ही हैं। मुझे तो मालूम होता है कि उन्हींने यह ब्याह किया है और प्रेमलालच्छीको मेरी सौत बनाकर अब घर लायेंगे। हमलोगोंकी तरह यह भी किसी प्रकार यहाँ आये होंगे। इस विषयमें मुझे सन्देह और चिन्ता हो रही है।"

वीरमतीने कहा,—"अरी निगोरी! तू इतनी हायहत्या और सन्देह क्यों करती है? चन्द तो आभा ... में सो रहा है। यह राजा कनकरथका पुत्र

कनकध्वज है। मैं तो पहलेही तुझसे कहती थी कि इस संसारमें चन्दसे भी चढ़कर रूपवान पुरुष मौजूद हैं। यह उसीका प्रत्यक्ष प्रमाण है। तू वारंवार चन्द-चन्द क्या कहती है ? वह तो मन्त्र-मुग्ध सर्पकी भाँति घोर निद्रामें पड़ा होगा। हमलोग जब वहाँ पहुँचेंगी और मन्त्रका प्रयोग करेंगी, तब कहीं उसकी नींद खुलेगी। मेरी इस बात पर विश्वास कर और अपने हृदयसे सन्देहको निकाल दे। संसारमें एकसाँ रूप-रंगवाले भी लाखों मनुष्य हुआ करते हैं।" वीरमतीकी यह बातें सुन, गुणावली चुप हो गयी, परन्तु उसका हृदय इन बातोंको स्वीकार न करता था। वह ज्यों-ज्यों वरको देखती थी, त्यों-त्यों उसे और भी सन्देह होता जाता था, परन्तु अब चुप-चाप देखते रहनेके सिवा और कोई उपाय ही क्या था ?

इधर राजा मकरध्वज वरको देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए और ऐसा दामाद पाकर, वे अपने भाग्यकी सराहना करने लगे। वे अपने मनमें कह रहे थे कि, विधाताने ऐसे सुन्दर पुरुषकी रचना किस प्रकार की होगी ? मेरी पुत्री जैसी रूपवती और गुणवती है, उसी प्रकार उसे रूपस्वी और गुणवान भर्तार मिला है। प्रभु अब इन दोनोंकी जोड़ी बनाये रक्खे, यही एकमात्र मेरी

है।" इसतरह मनमें हर्षित होते हुए, राजा मकरध्वजने हथलेवेके समय हाथी, घोड़े, रथ, मणि, मुक्ताफल, सोना, चाँदी, पक्कान्न, वस्त्र, गहने, वर्तन और शय्या आदि विविध सामग्री समर्पण कर अपनी उदारताका परिचय दिया। इसके बाद अन्यान्य वैवाहिक प्रथाएँ यथा-विधि सम्पन्न हुई। प्रेमला अपने पतिका मुख देखकर मन-ही-मन प्रसन्न हुई और विधाताका उपकार मानने लगी। इसी समय उसकी दाहिनी आँख फड़क उठी। इससे वह मन-ही-मन चिन्तित होने लगी, परन्तु उसने यह बात किसीसे जाहिर न की।

विवाह-कार्य निर्विघ्न समाप्त होने पर सिंहल नरेशने भी याचक और आश्रितोंको दानादि देकर भली-भाँति सन्तुष्ट किया। विवाहका अब कोई कार्य बाकी नहीं था, इसलिये चारों ओर आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। नवविवाहित दम्पति भी एक विशाल भवनमें विनोद करनेके लिये चले गये। वहाँ सोनेकी चौपड़ सजाकर, वर-कन्या दोनों पासे फेंक-फेंक कर चौपड़ खेलने लगे। राजा चन्दने खेलते-खेलते समस्याके रूपमें यह पंक्तियाँ कहीं :—

"आभापुरीके चन्द्रका, संयोगसेही साथ है।
इस अप्रार्थित प्रेमका निर्वाह किसके हाथ है?"

अर्थात्,—"हे सुन्दरी ! आज आभापुरीके चन्द्रसे जो यह मिलन हुआ है, इसे एक संयोग ही समझना चाहिये। यह एक अप्रार्थित प्रेम है। क्या तुम कह सकती हो कि इसका निर्वाह किस प्रकार होगा,—कौन करेगा ?"

राजा चन्दकी यह समस्या प्रेमला अच्छी तरह न समझ सकी। उसने अपने मनमें खयाल किया कि शायद् यह आकाश और चन्द्रके मिलन की बात कह रहे हैं। इसलिये उसने उत्तर दिया :—

"आकाशसे इस चन्द्रका जिसने मिलाया साथ है।
उस साथका निर्वाह भी करना उसीके हाथ है॥"

अर्थात्,—"आकाशसे चन्द्रका संयोग—साथ जिसने मिलाया है, वही उसका निर्वाह करेगा।" राजा चन्दने देखा कि प्रेमलालच्छी चतुर होनेपर भी भोली भाली है, इसलिये मेरे सांकेतिक शब्द इसकी समझमें न आ सके। मौका मिलने पर इसे जरा स्पष्ट शब्दोंमें अपना नाम आदि बतला देना उचित होगा। यह सोचकर वे बहुत देरतक चौपड़ खेलते रहे। अन्तमें, मानों अब ऊब उठे हों, ऐसा भाव दिखा कर उन्होंने कहा:-

"पूर्व ओर है आभा नगरी, चन्द्र नृपतिका राज्य जहाँ।
क्रीड़ा योग्य भवन हैं उनके, पासे भी हैं र

वैसी यहाँ सजावट हो तो, जी अपना वहलायें हम।
निरस खेलमें कहो सुन्दरी, कैसे रात वितायें हम!"

राजा चन्दके यह वचन सुन, इस बार प्रेमला विचारमें पड़ गयी। वह अपने मनमें कहने लग कि,—"पतिदेव ऐसी बेतुकी बातें क्यों कह रहे हैं यह तो सिंहलपुरीसे मुझे ब्याहने आये हैं, परन्तु वहाँ प्रशंसा करनेके बदले आभानगरीके भवन और पासों गुण-गान क्यों कर रहे हैं? कहीं ऐसा तो न हुआ कि सिंहल कुमारके बदले आभा नरेशही मु ब्याहने आये हों? अवश्यही इन बातोंमें कोई गह रहस्य छिपा हुआ है; वर्ना ऐसी अप्रासंगिक बा यह मुझसे क्यों कहते?"

इतनेहीमें चौपड़का खेल पूरा हुआ और रा चन्द भोजन करने बैठे। प्रेमला तो अबतक उ उधेड़-बुनमें लगी हुई थी। सिंहलपुरीके राज-कुमा आभापुरी आदिकी प्रशंसा क्यों की, यह बात उस समझमें न आती थी। अस्तु, भोजन करते-करते रा चन्दने पानी मांगा। पासही शीतल और सुगन्धि जलकी सुराही रक्खी हुई थी, उसमेंसे जल ला प्रेमलाने राजा चन्दको पिलाया। उसे पितेही रा चन्द बोल उठे,—"प्यारी! तुमने कभी गंगाज

पिया है ? उसके सामने यह जल बिलकुल फीका मालूम होता है।" यह सुनकर प्रेमला फिर विचारमें पड़ गयी, वह मन-ही-मन कहने लगी कि,—"इनकी सिंहलपुरी तो सिन्धु नदीके पास है और गंगा-नदी पूर्व दिशामें है। उसे तो शायद इन्होंने देखा भी न होगा। फिर यह उसके जलकी प्रशंसा क्यों करते हैं ? संभव है कि इन बातोंमें भी कोई गहरा रहस्य हो।" उसने नजर उठाकर एकबार राजा चन्दकी ओर देखा तो उसे मालूम हुआ कि, मानो उनका चित्त कुछ उचटा हुआ है। वह फिर उसी चिन्तामें पड़ गयी और अपनी गुत्थियोंको सुलझाने लगी।

इसी समय सिंहल नरेशने राजा चन्दको एकान्तमें बुलाकर कहा,—"महाशय ! अब रात बहुत थोड़ी रह गयी है। आपको यह स्थान छोड़ना शायदही भला मालूम होता होगा, परन्तु क्या किया जाय, लाचारी है। अब आप शीघ्रही यहाँसे चलदें तो अच्छा हो।"

राजा चन्दको सिंहल नरेशकी यह बात बुरी तो अवश्यही मालूम हुई, परन्तु वे अपने वचनके पक्के थे। उन्होंने उनके कथनानुसार ब्याह किया था और उनके कथनानुसारही वे अब अपनी विवाहिता पत्नीको छोड़कर, वहाँसे चलनेकी तैयारी करने लगे। जिस

घोड़ेके लिये एक इशाराही काफी होता है, उसी तरह राजा चन्दके लिये सिंहल नरेशके इतने शब्दही काफी थे।

शीघ्रही एक रथ तैयार किया गया और उसमें बैठकर राजा चन्द अपनी प्रेमला पत्नीके साथ वासस्थानको लौट आये। मार्गमें चलते समय उन्होंने दीन-दुखियोंको बहुतसा दान दिया। वासस्थानमें पहुँचने पर राजा चन्द और प्रेमला एक एकान्त स्थानमें बैठ गये। यहाँ प्रेमलाने देखा कि पतिदेवका चित्त बहुतही अस्थिर हो रहा है। जो रंग ब्याहके समय था, वह चौपड़ खेलते समय न था और जो चौपड़ खेलते समय था, वह अब नहीं है। उस और इस रंगमें तो बड़ाही अन्तर मालूम हो रहा है।"

जिस समय प्रेमला इस प्रकारका विचार कर रही थी, उसी समय वहाँ हिंसक मन्त्रीने आकर —का पह्लवी (सांकेतिक) भाषामें राजा चन्दसे शीघ्रही वा स्थान छोड़ जाने को कहा। राजा चन्दको यह बात समझनेमें देरी न लगी, परन्तु वह बड़ेही असमंजसमें पड़ गये थे। इधर प्रेमलाका प्रेम उन्हें खींच रहा था और उधर यह ध्यान था कि उन्होंने अपने लिये नहीं बल्कि कनकध्वजके लिये उससे ब्याह किया था। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी चिन्ता हो रही थी, कि वीरमती

उस वृक्षको लेकर कहीं आभापुरीकी ओर प्रस्थान कर देगी तो मैं कहींका भी नहीं रहुँगा। इस-लिये वे जिस तरह साँप कैंचुल छोड़ता है उसी तरह प्रेमलाका मोह छोड़ कर, उठ खड़े हुए। परन्तु प्रेमला ने उसी समय उनका हाथ पकड़ते हुए कहा, "प्यारे! कहाँ जा रहे हो?"

राजा चन्द ने कहा,—"प्यारी! मैं मल-शुद्धिके लिये जा रहा हूँ, अभी लौट आऊँगा।"

प्रेमला अब सहजमें उन्हें छोड़ने वाली न थी। जल की सुराही उठाकर वह भी उनके साथ चल पड़ी। राजाने उसे बहुत मना किया, परन्तु उसे सन्देह होगया था, इसलिये उसने उनकी एक न सुनी। लाचार, राजा चन्दको टट्टीसे शीघ्र ही लौट आना पड़ा। जरासी देरमें फिर हिंसकने उन्हें अन्योक्तिके बहाने संकेत करते हुए कहा,—"हे निशिभूप! ❀ जल्दी कर, यदि दिनकर × तुझे देख लेंगे, तो तेरा रूप प्रकट हो जायगा।"

राजा चन्द समझते तो सब कुछ थे, वे यह अन्योक्ति भी समझ गये, परन्तु क्या करें; चतुराईके सामने उनकी एक भी

❀ रात्रि का राजा—उल्लू। × सूरज।

पाती थी। वे भागनेके विचारसे बार-बार द्वारके पास जाते थे, परन्तु जिस तरह सुगन्ध पुष्पका पीछा नहीं छोड़ती, उसी तरह प्रेमलाभी उनका पीछा नहीं छोड़ती थी। अब उसे धोखा देकर भाग निकलना उनके लिये वास्तवमें एक कठिन कार्य हो पड़ा।

उधर प्रेमला प्रेमोन्मत्त हो रही थी। वह हाथ पकड़ कर राजा चन्दको शैय्याके पास घसीट लायी और उन्हें अपने पास बैठा कर कहने लगी,- "प्यारे! बार बार यह क्या करते हो? कभी बाहर जाते हो और कभी भीतर आते हो-इसका क्या कारण है? पहले समागममें ही ऐसा कपट-व्यवहार क्यों? यदि आप ऐसा करेंगे तो हमलोगोंकी प्रेम-लता कैसे विकसित होगी? यदि प्रथम ग्रासमें ही मक्षिका-पात होगा, तो भोजन फिर किस कामका रहेगा? आप अपने चित्तकी चंचलता दूर कर आनन्दसे बैठिये और हमलोगोंके इस मधुर सम्बन्धमें कटुता न आने दीजिये। आपकी बातोंसे तो आपका कुछ कुछ भेद मैं समझ गयी हूँ, इसलिये मैं आपको किसी तरह यहाँ से नहीं दूँगी। प्यारे! आपको भी उचित है कि किसी तरह निराश न करें। मैं आपकी दासी

आपकी सभी आज्ञाएँ सदा पालन किया करूँगी। आप मेरे शिरछत्र हैं। मेरे प्राणाधार हैं। यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा कीजिये। अब कृपया यह बतलाइये कि आप अप्रसन्न क्यों हो रहे हैं? आपके उज्ज्वल चन्द्र-मुख पर उदासीकी काली घटा क्यों छायी हुई है? प्यारे कहाँ विमलापुरी और कहाँ आभापुरी! सचमुच, किसी संयोग वशही विधाता ने हमलोगोंको एक दूसरेसे मिला दिया है। अब मैं आपकी बातें समझ गयी हूँ और इसीलिये आपसे कहती हूँ कि आप मुझसे ऐसा व्यवहार हरगीज न कीजिये। इससे आपही की अप्रतिष्ठा होगी। मेरे पिताने दहेज देने और आपका आतिथ्य करने में भी कोई कसर नहीं रक्खी है। फिर भी, यदि उनसे किसी प्रकारकी त्रुटि रह गयी हो, तो मुझसे कहिये, मैं उन्हें निवेदन कर आपकी मनोकामना पूरी करनेकी अवश्य चेष्टा करूँगी। आपका यह अकारण रूठना मुझे भला नहीं मालूम होता। ऐसी बातें तो बालक और मुनियोंको ही शोभा देती हैं। आप तो गृहस्थ हैं, इसलिये आपको प्रेमालाप और हास्य-विलास आदिमें मन लगाना चाहिये। प्यारे! इससे अधिक मैं क्या कहूँ? यदि आप मेरी प्रार्थना

अस्वीकार कर, किसी तरह चले जायेंगे, तो यह विश्वास रक्खें कि मैं भी आभापुरी का पता लगा कर, वहाँ पहुँचूँगी और आपकी दासी बनकर निरन्तर आपकी चरण-सेवा में अपना जीवन व्यतीत करूँगी।"

प्रेमला की यह बातें सुन, राजा चन्दने कहा,- "प्यारी! तुम इतनी हठ क्यों करती हो? मैं तुम्हारा मनोभाव अच्छी तरह ताड़ गया हूँ, पर क्या किया जाये, लाचारी है। विधाताके लेख पर मेख नहीं मारी जा सकती। मेरे मुँह में ताला लगा हुआ है, मेरे हाथ पैर प्रतिज्ञाके बन्धनसे जकड़े हुए हैं, इसलिये मैं कोई भी बात तुमसे कह नहीं सकता। बँधी मुट्ठी लाखकी है, उसे खोलनेमें कोई सार नहीं है। तुम चतुर हो, इसलिये मुझे आशा है कि इतनेही से सारा रहस्य समझ जाओगी। अपने मनको वश में रक्खो और विधाता जो जो खेल दिखाये, उसे देखती चलो। मुझे भी तुम्हें छोड़ कर जानेकी इच्छा हरगीज नहीं होती है, पर क्या किया जाये, मेरी गति भी सांप छछून्दरकीसी हो रही है इसलिये मैं लाचार हूँ।"

इस तरह राजा चन्दने प्रेमला को बहुत समझाया परन्तु वह किसी तरह उन्हें छोड़नेको राजी न हुई।

इससे वे गहरी चिन्तामें पड़ गये। परन्तु इतने ही में हिंसक मन्त्री वहाँ अचानक आ खड़ा हुआ और कठोर वचनोंका प्रयोग करने लगा। यह देख, प्रेमला लज्जित हो, एक तरफ खड़ी हो गयी, इसी समय राजा चन्द वहाँसे झटपट बाहर निकल गये।

चलते समय राजा चन्दने एकबार सिंहल नरेशसे मिल लेना उचित समझा, इसलिये वे उनके पास जाकर विनय पूर्वक कहने लगे कि—"राजन आपकी इच्छानुसार मैंने आपका सारा कार्य कर दिया है। अब मैं जाता हूँ। प्रेमलाको रोती बिलखती छोड़ कर आया हूँ। इसलिये अब उसकी लज्जा रखना आपके ही हाथ है।"

यह कह राजा चन्द सिंहल नरेशसे विदा ग्रहण कर, उस उद्यानमें आये, जहाँ वह आम्र-वृक्ष खड़ा था। वे पूर्ववत् पुनः उसी कोटरमें छिप कर बैठ गये। कुछ ही समय में वीरमती और गुणावली भी वहाँ आ पहुँची। रात अब बहुतही थोड़ी थी, इसलिये दोनों शीघ्रता-पूर्वक वृक्ष पर चढ़ बैठी। वीरमतीने पूर्ववत् छड़ीका प्रहार करते हुए वृक्षको आभापुरी चलनेकी आज्ञा दी और वह उसी समय आकाश मार्गमें उड़ चली। सौभाग्य वश इस बार भी राजा चन्द पर वीरमती या गुणावलीकी दृष्टि न पड़ी।



नवाँ परिच्छेद



स्वप्न या सत्य

—=:○:=—

आभापुरीकी ओर लौटते समय रास्तेमें वीरमतीने गुणावलीसे कहा,—"प्यारी बहू! यदि तू मेरे साथ न आयी होती, तो विमलापुरी और कुमार कनकध्वजको कैसे देख सकती? मैं तुझे इसी तरह नित्य नये न कौतुक दिखा कर तेरी उम्मेद पूरी करूंगी। किन्तु इसके बदलेमें तुझे भी मुझसे मेल-जोल रखकर मेरी आज्ञानुसार बर्ताव करना होगा। इस संसारमें मेरे सिवा और किसमें ऐसी सामर्थ्यता है, जो आकाश विचरण कर इतनी लम्बी सफर थोड़ेही समयमें पार कर सके? केवल सिद्धान्तमें चारण मुनिकी गति बहुत तेज बतलायी गयी है। अन्यथा पक्षी तो अधिक से अधिक दिन भरमें बारह योजन जा सकते हैं। परन्तु मेरी शक्ति तो अपार है। जहाँ वायु जा सकता है

वहाँ मैं भी जा सकती हूँ, साथ ही मैं ऐसे कार्य कर सकती हूँ, जिन्हें संसारमें कोई नहीं कर सके।"

वीरमतीके मुखसे यह आत्म-प्रशंसा सुनकर गुणावलीने कहा,—"पूज्य माताजी! आपका कहना बिलकुल ठीक है। मुझे आपकी शक्तियोंके विषयमें जरा भी संदेह नहीं है; क्योंकि मुझे आज उनका प्रत्यक्ष प्रमाण मिल चुका है। किन्तु माताजी! आप एक बड़ीही गलती कर गयी हैं, वह यह कि, आप जिन्हें कुमार कनकध्वज कहती हैं, वे तो आपके पुत्र ही थे और उन्हीं ने प्रेमलासे शादी की है। मुझे इस विषयमें पूरा विश्वास होगया है। यदि यह बात झूठ निकल जाये तो आप मेरा कठोर-से-कठोर शब्दोंमें तिरस्कार कर सकती हैं।" यह सुन कर वीरमतीने कहा,—"वाह! क्या तू मुझसे भी अधिक चतुर है, जो मैं उसे पहचान न सकी और तू पहचान गयी! तू व्यर्थही इस विषय में सन्देह कर रही है। तू जिस किसी को रूपवान देखेगी, बस उसी को चन्द मान लेगी! परन्तु मैं तेरी तरह भोली नहीं हूँ, जो ऐसी बातों पर विश्वास कर लूँ।"

इधर राजा चन्द कोटरमें बैठे हुए यह सारी बातें सुन रहे थे। उन्हें चिन्ता होरही थी कि कहीं वीरमती मुझे देख लेगी तो, सारा खेल बिगड़ जायगा। परन्तु

सौभाग्यवश ऐसा न हुआ। अनेक नद-नदी, वन-उपवन और पर्वत आदि उल्लंघन करता हुआ वह आमवृक्ष शीघ्र ही आभापुरीके निकट आ पहुँचा। उस समय मुर्गे बोल रहे थे और पूर्व दिशामें सूर्योदयकी तैयारी हो रही थी। यथा समय, आम्रवृक्ष अपने स्थान पर आकर स्थिर हो गया। उसके स्थिर होते ही वीरमती और गुणावली उससे नीचे उतर पड़ी। सौभाग्यवश उस समय भी राजा चन्द उनकी दृष्टिमें न पड़े। आम के पेड़से उतर कर वे दोनों शरीर-शुद्धिके लिये समीपकी पुष्करणीमें चली गयीं। इससे राजा चन्दको बहुत ही अच्छा मौका मिल गया, वे झटपट कोटरसे बाहर निकल आये और महलमें जाकर, पूर्ववत् शैय्यामें सो रहे। वीरमती और गुणावली भी हँसती बोलती हुई अपने महलमें शीघ्रही आ पहुँचीं।

महलमें आते ही वीरमतीने गुणावलीको वह छड़ी देकर राजा चन्दको जगानेके लिये भेजा और वह स्वयं नगर-निवासियोंकी निद्रा दूर करनेकी चेष्टा करने लगी। शीघ्रही उसके मन्त्र-बलसे सब लोग जाग पड़े और नित्य-कर्मसे निवृत्त हो, अपने अपने काम-धन्धेमें लगे। रातको क्या हुआ था, यह किसीको भी मालूम न हो सका।

इधर गुणावली भी शीघ्रता से अपने महल में आ पहुँची। उसने देखा कि राजा चन्द पहले के अनुसार ही घोर निद्रा में पड़े हुए हैं। उधर राजा चन्द ने भी झाँकते हुए उसे देख लिया। गुणावली अपने मनमें पश्चाताप कर रही थीं, कि मैंने व्यर्थ ही इन्हें ऐसी निद्रा में डालकर धोखा दिया और अपने लिये एक पाप संचित कर लिया! दूसरी ओर उसे यह देखकर आनन्द भी हुआ कि राजा चन्द ज्यों-के-त्यों सो रहे हैं और विमलापुरी में उसे जो संदेह हुआ था, वह भी बिलकुल निरर्थक प्रतीत हुआ।

इसके बाद गुणावलीने धीरे-धीरे तीन बार यह छड़ी अपने पतिके शरीरसे छुआदी। उसके स्पर्श होते ही राजा चन्द कपट पूर्वक बारंबार शरीर को मोड़ने लगे, यह देखकर गुणावली ने कहा,—प्यारे! उठिये सवेरा होगया है। आज तो आप ऐसे सोये, मानो महीनों के जगे हुए हों। रात में जगानेपर बोलने या उठने की कौन कहे; आपने तो करवट तक न बदली, भला आज इतनी गहरी नींद आने का कारण क्या है। स्वप्न में किसीकी सम्पदा मिल रही थी या किसी सुन्दरीके प्रेम जाल में उलझ रहे थे? प्यारे! उठिये, सूर्योदय होने ही चाहता है, मैं आपके दर्शनार्थ खड़ी हूँ। कृपया शीघ्र

सौभाग्यवश ऐसा न हुआ। अनेक नद-नदी, वन-उपवन और पर्वत आदि उल्लंघन करता हुआ वह आमवृक्ष शीघ्र ही आभापुरीके निकट आ पहुँचा। उस समय मुर्गे बोल रहे थे और पूर्व दिशामें सूर्योदयकी तैयारी हो रही थी। यथा समय, आम्रवृक्ष अपने स्थान पर आकर स्थिर हो गया। उसके स्थिर होते ही वीरमती और गुणावली उससे नीचे उतर पड़ी। सौभाग्यवश उस समय भी राजा चन्द उनकी दृष्टिमें न पड़े। आम के पेड़से उतर कर वे दोनों शरीर-शुद्धिके लिये समीपकी पुष्करणीमें चली गयीं। इससे राजा चन्दको बहुत ही अच्छा मौका मिल गया, वे झटपट कोटरसे बाहर निकल आये और महलमें जाकर, पूर्ववत् शैय्यामें सो रहे। वीरमती और गुणावली भी हँसती बोलती हुई अपने महलमें शीघ्रही आ पहुँचीं।

महलमें आते ही वीरमतीने गुणावलीको बड़ छड़ी देकर राजा चन्दको जगानेके लिये भेजा और वह स्वयं नगर-निवासियोंकी निद्रा दूर करनेकी चेष्टा करने लगी। शीघ्रही उसके मन्त्र-बलसे सब लोग जाग पड़े और नित्य-कर्मसे निवृत्त हो, अपने अपने काम-धन्धेमें लगे। रातको क्या हुआ था, यह किसीको भी मालूम न हो सका।

इधर गुणावली भी शीघ्रता से अपने महल में आ पहुँची। उसने देखा कि राजा चन्द पहले के अनुसार ही घोर निद्रा में पड़े हुए हैं। उधर राजा चन्द ने भी झाँकते हुए उसे देख लिया। गुणावली अपने मनमें पश्चाताप कर रही थी, कि मैंने व्यर्थ ही इन्हें ऐसी निद्रा में डालकर धोखा दिया और अपने लिये एक पाप संचित कर लिया! दूसरी ओर उसे यह देखकर आनन्द भी हुआ कि राजा चन्द ज्यों-के-त्यों सो रहे हैं और विम-लापुरी में उसे जो संदेह हुआ था, वह भी बिलकुल निरर्थक प्रतीत हुआ।

इसके बाद गुणावलीने धीरे-धीरे तीन बार वह छड़ी अपने पतिके शरीरसे छुआदी। उसके स्पर्श होते ही राजा चन्द कपट पूर्वक बारंबार शरीर को मोड़ने लगे, यह देखकर गुणावली ने कहा,—प्यारे! उठिये सवेरा होगया है। आज तो आप ऐसे सोये, मानो महीनों के जगे हुए हों। रात में जगानेपर बोलने या उठने की कौन कहे; आपने तो करवट तक न बदली, भला आज इतनी गहरी नींद आने का कारण क्या है। स्वप्न में किसीकी सम्पदा मिल रही थी या किसी सुन्दरीके प्रेम जाल में उलझ रहे थे? प्यारे! उठिये, सूर्योदय होने ही चाहता है, मैं आपके दर्शनार्थ खड़ी हूँ। कृपया शीघ्र

ही दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये। अब यह समय सोने का नहीं है। इस समय तो राजपुत्रोंको अखाड़ेमें जाकर मल्ल-युद्ध करना चाहिये। राज-सभा का भी समय होने आया है। प्यारे! उठिये, यदि माताजी को यह मालूम होगा कि आप इतनी देरी से उठते हैं, तो वे व्यर्थ ही नाराज होगी।"

गुणावली के यह वचन सुन कर, राजा चन्द कपट-निद्रा त्याग कर शीघ्र ही उठ बैठे और कहने लगे कि,—"ओहो आज बहुत देर हो गई है। सूरज कब निकल आये, सो भी मुझे मालूम न हुआ। कल रात को तूफानके कारण तबियतमें कुछ सुस्तीसी आ गयी थी, इसीलिये आज उठनेमें देरी हो गयी है। परन्तु प्यारी! तुम्हारी आंखें देखनेसे तो मालूम होता है कि आज तुमने भी सारी रात जागरण किया है। साथ ही आज मुझे तुम्हारी बातोंमें बड़ीही मधुरता मालूम हो रही है, क्योंकि तुमने रंग पलटना आरम्भ कर दिया है। मालूम होता है कि आज रातको तुम कहीं की सैर कर आयी हो। पहले अपना सारा हाल बताओ, फिर मुझसे मीठी-मीठी बातें करना।"

पतिके यह वचन सुन कर गुणावलीके कान खड़े हो गये। वह कहने लगी,—"प्यारे! आज मेरी

उटपटांग बातें क्यों करते हो? भला मुझे आपके चरणोंको छोड़कर और कहाँ जाना है? मैं तो कहीं भी नहीं गई थी, पर मालूम होता है कि आपही आज कहीं निकल गये थे। मैं तो बिना आज्ञाके महलके बाहर पैर भी कैसे रख सकती हूँ?"

गुणावलीकी यह बातें सुन कर राजा चन्द आश्चर्य-चकित बन गये। वे अपने मनमें कहने लगे कि,—"गुणावलीका कोई दोष नहीं है। वीरमतीके संगसे ही यह कटु और असत्य वचन बोलने लगी है। यह सारा दोष मेरी विमाताका ही है। जिस तरह नारियल का पानी कपूरके संगसे जहर बन जाता है, उसी तरह साधुजन भी कुसंगतिके कारण विकारको प्राप्त हो जाते हैं। यह जानी हुई बात है कि यन्त्रकी घड़ीके संगसे घण्टको भी हथौड़ेकी मार सहनी पड़ती है। दुष्टोंका संग अग्निके समान है। उससे सभी अवस्थामें हानि ही होती है। किसीने ठीकही कहा है कि,—"स्त्री, जल, तलवार, आँख, घोड़ा, और राजा इनको जिसतरह झुकाया जाये, उसी तरह झुक जाते हैं।" इस प्रकार सोचते हुए उन्होंने फिर गुणावलीसे कहा,—"प्यारी! इधर उधरकी व्यर्थ बातें छोड़कर सच्ची-सच्ची कहो, कि आजकी रातमें

तुमने कहाँ मौज ...

गुणावली बड़ेहीअसमंजसमें पड़ गयी, अब उसे सच्ची बात कहनेमें भय मालूम होने लगा, इसलिये उसने एक मन-गढ़ंत कहानी सुनाते हुए कहा,—"प्यारे! सुनो, वैताढ्य पर्वत पर विशाला नामक एक नगरी है। वहाँ मणिप्रभ नामक विद्याधर राजा राज्य करता है। उसकी स्त्रीका नाम चन्द्रलेखा है। उसने समस्त विद्याधरोंको अपने अधीन कर रक्खा है। आज रातको तीर्थाटन कर, आभानगरीके ऊपरसे वह अपने निवास स्थानको वापस जा रहा था, इतनेहीमें तूफान आ जानेके कारण उसका विमान रुक गया। यह देखकर उसकी स्त्रीने पूछा,—"हे स्वामिन्! आज यहाँ असमयमें वृष्टि क्यों हुई और हम लोगोंका विमान क्यों रुक गया है?" यह सुन विद्याधर ने कहा,—"प्रिये! यह बात कहने योग्य नहीं है, व्यर्थही पराई बात न करनी चाहिये।"

पतिका यह उत्तर सुनकर विद्याधरीकी आकांक्षा और भी चढ़ गयी और वह इसका कारण जाननेके लिये बारबार आग्रह करने लगी। अन्तमें विद्याधरने कहा,—"प्रिये! इस आभानगरी पर किसी देवताका कोप हुआ है। उसने राजाको कष्ट देनेके लियेही यह

वृष्टि की है और राजाके पुण्य प्रतापसे हमारा यह विमान रुक गया है।" यह सुन विद्याधरीने कहा,—"प्यारे! ऐसा कोई उपाय नहीं है, जिससे उसकी यह विपत्ति दूर हो सके? यदि अपनसे बन सके तो इतना उपकार अवश्यही करना चाहिये।"

विद्याधरने कहा,—"प्रिये! मैं इस विषयमें कुछ नहीं कर सकता। हाँ, यदि उसकी विमाता चाहे, तो वह इस विपत्तिसे अपने पुत्रको अनायास बचा सकती है।" यह सुनकर विद्याधरी अपने पतिको साथ लेकर आपकी माताके पास आयी। तदनन्तर विद्याधरने कहा कि शिघ्रही आपके पुत्रपर बड़ी विपत्ति आनेवाली है, इसलिये यदि किसी पवित्र स्थानमें श्री शान्तिनाथजीके महा मंगलमय बिम्बकी स्थापना कर उसके सामने पाँच दीपक जला, आप स्वयं और मेरी स्त्री (विद्याधरी) तथा आपकी बहू—तीनों सारी रात जागरण कर प्रभुका गुणगान कर सकें और प्रातःकाल यह छड़ी अपने पुत्रको स्पर्श करायें तो इस विपत्तिसे उसे छुटकारा मिल सकता है।

विद्याधर की यह बात सुन कर माताजीने मुझे बुलाया और हम तीनोंने विद्याधरकी आज्ञानुसार सारी रात जिनेश्वरके गुण-गानमें व्यतीत की। सुबह होनेपर यह छड़ी स्पर्श करा, मैंने आपको जगाया। यही

सच्चा हाल है ।"

चतुर चन्द राजाने धैर्यपूर्वक यह कहानी सुननेके पश्चात् कहा,— "प्यारी ! तुमने सच्ची बात कह डाली, जिससे मुझे बड़ा ही आनन्द हो रहा है । पतिके हित-चिन्तनमें लीन रहनाही पति-व्रताका धर्म है । पति-हितके लिये सुकृत्यकी कौन कहे, यदि स्त्री कुकृत्य भी कर डाले, तो वह भी सराहनीय है । माताजीने जो कुछ किया वह तो अच्छा ही है ।"

पुत्रकी शुभ-कामना माता न करेगी तो और कौन करेगा ? तुमने मेरे लिये रातभर जागनेका जो कष्ट उठाया है, वह वास्तवमें तुम्हारे प्रेमका परिचायक है। विपत्ति-कालमें ही पत्नीके प्रेमकी परीक्षा होती है । भला मेरे लिये यदि तुम्हीं जागरण न करोगी तो और कौन करेगा ? हे चन्द्रानने ! मैं तुम्हारी बात पर सोलह आने विश्वास करता हूँ । यह तो बड़ाही अच्छा हुआ कि इस निमित्तसे सारी रात प्रभु-भक्ति हो सकी; वर्ना हमलोगोंका ऐसा भाग्य कहाँ है, जो प्रभु -भक्ति कर सकें । जिनेश्वरकी भक्तिसे प्राणी इस संसार-सागरको तर जाते हैं । फिर ऐसी विपत्तिका टल जाना कौनसी आश्चर्यकी बात है ? प्यारी ! जिस तरह तुमने आजकी रात्रि जागरण में व्यतीत की है,

उसी तरह मैंने भी एक आश्चर्य-जनक सपना देखा है। वह स्वप्न बहुत ही बड़ा है। यदि विस्तार-पूर्वक उसका वर्णन करने बैठूँगा, तो बहुत विलम्ब हो जायगा, इसलिये संक्षेपमें ही तुम्हें उसका हाल सुनाता हूँ। स्वप्नमें मुझे ऐसा मालुम हुआ, मानो यहाँसे तुम माताजीके साथ १८०० योजनकी दूरी पर, विमलापुरी नामक नगरीमें गयी हो, वहाँ तुमने नगरकी सैर करनेके बाद एक रूपवान पुरुषको एक सुन्दरीके साथ विवाह करते देखा। इसके बाद तुम दोनों वहाँसे लौट आयीं। परन्तु मेरे इस स्वप्न और तुम्हारी बातमें बहुत ही अन्तर है। स्वप्न कभी सत्य नहीं होते। स्वप्न, स्वप्न ही है और सत्य, सत्यही है। मैं तो तुम्हारी बातोंकोही सत्य मानता हूँ, उन्हें मैं असत्य कह भी कैसे सकता हूँ? सच झूठकी बात परमात्मा जाने, परन्तु संसारका साधारण नियम तो यही कहता है, कि स्वप्न झूठे होते हैं और पतिव्रताकी बात तो सोलह आने सच हुआ करती है।"

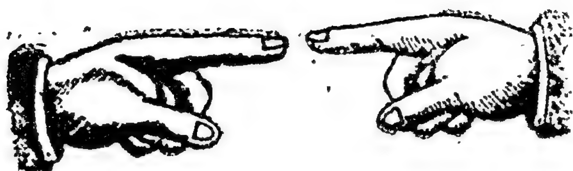
पतिकी यह बातें सुन कर गुणावली मन-ही-मन बहुतही लज्जित हुई। परन्तु एक झूठको छिपानेके लिये अनेक झूठका सहारा लेना पड़ता है। गुणावलीकी भी अब यही अवस्था थी। उसने कहा—"प्यारे! स्वप्न सदा झूठे ही हुआ करते हैं, इसलिये उनपर हरगीज

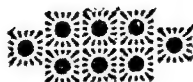
विश्वास नहीं करना चाहिंये। सुनिये, मैं आपको एक पुजारीका किस्सा सुनाती हूँ, वह इस प्रकार है,—"किसी शिव-मन्दिरमें एक पुजारी रहता था, उसने एकदिन ऐसा स्वप्न देखा कि समूचा शिव-मन्दिर मिठाईसे भर गया है, इसलिये वह नींदसे उठतेही बाहर निकला और अपने समस्त जाति-बन्धुओंको भोजनका निमन्त्रण दे आया। पश्चात् उसने मन्दिरमें जाकर देखा तो वहाँ मिठाईका नाम-निशान भी नहीं था। अब वह अपने मनमें कहने लगा,—"मालूम होता है कि शिवजी बाबा सारी मिठाई उड़ा गये, उसने फिर एकबार सोकर मिठाई प्राप्त करने का निश्चय किया। परन्तु शिवजी कहीं फिर मिठाई चट न कर जायें, इसलिये इसबार वह कीवाड़ बन्द करके उसी मन्दिरमें सो रहा। दो तीन घंटे बीत गये; पर दूसरीबार मिठाईका वह मधुर स्वप्न नहीं आया। इतनेमें शाम हुई और निमन्त्रित मनुष्योंकी बहुत बड़ी भीड़ वहाँ इकट्ठी हो गयी। लोगोंको न तो कहीं भोजन-सामग्री ही दिखायी दी, न कहीं वह पुजारी ही दिखायीदिया। मन्दिरके द्वार भी बन्द थे। अन्तमें उन्होंने उस पुजारीको जगा कर कहा कि,—हे भाई! तुम्हारे निमन्त्रणसे ही हम सब लोग भोजन करने आये हैं और अभी तो तुम आनन्दपूर्वक सोये हुए हो, हम

तरह किसीको-निमन्त्रण देकर उसे बेइज्ज़त करना यह भले आदमीका काम नहीं है। यह सुन कर उसने आँख मलते हुए कहा,—"भाइयो! अभी जरा ठहरिये। आजकी मिठाई तो शिवजीने गायब कर दी है। अब फिर नया स्वप्न देखूँगा, तब आपलोगोंको मिठाई खिलाऊँगा। यह सुन कर लोगोंने कहा कि,—"अरे मूर्ख! क्या तू हमें सपनेकी ही मिठाई खिलाना चाहता था? उस मिठाईसे क्या किसीका पेट थोड़ेही भर सकता है? हमें तो अब मालूम होता है कि तू पागल बन गया है।"

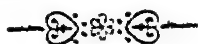
इस तरहकी बातें कहकर सब लोग वापस चले गये। तदनन्तर पुजारीको भी अपनी गलती मालूम हुई और वह भी पश्चात्ताप करने लगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि सपने सदा झूठे ही हुआ करते हैं। आपको स्वप्नमें ऐसा मालूम हुआ, मानो मैं विमलापुरीकी सैर कर रही हूँ, पर वास्तवमें मैं इसी जगह थी। विमलापुरी तो यहाँसे १८०० योजन दूर है। भला रात-ही-रात वहाँ जाना और वहाँसे लौट आना कोई हँसी-खेल है?" यह सुनकर राजा चन्दने कहा,—"प्यारी! तुम तो मेरे स्वप्नको सच मान लेती हो, पर यह सब बातें तो तुम्हें उसी अवस्थामें कहनी चाहिये थीं कि, जब

असत्यवादी कहता। किन्तु मुझे तो तुम्हारी बातोंपर सोलह आने विश्वास है। फिर तुम्हें इस तरह व्यर्थकी चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है ?"





दशवाँ परिच्छेद



मानव-जीवनसे मुर्गा



चन्द राजाके अन्तिम वाक्यसे गुणावलीको फिर बोलनेकी हिम्मत हुई। उसने कहा,—प्यारे! आप अपने स्वप्नकी बात हृदयसे एक दम निकाल दीजिये। हमलोगोंने आपके लिये सारी रात जागरण किया, परन्तु उसका खयाल आपको लेशमात्र भी नहीं हुआ। खैर, आप भले ही उसे भूल जाय, परन्तु ईश्वर थोड़े ही भूल सकता है? संसारमें कहावत है कि घोड़ा शक्ति भर दौड़ता है, किन्तु सवार उससे बिलकुल अनभिज्ञ रहता है। उसी तरह आप भी कर रहे हैं। मालूम होता है कि आप कहींसे वणिक-विद्या सीख आये हैं, इसीसे आप हमारी सारी बातें हँसीमें उड़ा कर ऊपरसे उलटी-सुलटी बातें कह रहे हैं। किन्तु मुझे तो यह सब बातें करने नहीं आती। मैंने तो आपसे रातकी सच्ची

बात बतला दी, मुझे ऐसी दिल्लगी अच्छी नहीं मालूम होती। इससे अनेक बार अनर्थ हो जाता है। कहाँ मैं और कहाँ विमलापुरी ? मेरा वहाँ जाना और घूमना कैसे हो सकता है। मैं तो आपकी आज्ञाके बिना बाहर पैर भी नहीं रखती। फिर ऐसी बातें कहकर आप मेरे जीको दुःखित क्यों कर रहे हैं? आपको ऐसा व्यवहार हरगीज नहीं करना चाहिये।

राजा चन्दने कहा,—"रानीजी ! किसलिये तुम क्रोध कर रही हो ? तुम्हें जो पसन्द आये सो करो, मैं तुम्हें कब मना करता हूँ, मैंने तो अपने सपनेकाही हाल तुम्हें सुनाया है। इसमें बुरा माननेकी कौनसी बात है ? तुम इतने दिनोंसे मेरे साथ हो, क्या तुम्हें नहीं मालूम कि मुझे मजाक करनेकी आदत है। परन्तु यह बात तो मैं अवश्यही कहूँगा कि मुझे अपना यह स्वप्न असत्य नहीं मालूम होता। विधाताने जो तुम दोनों—सास-बहूकी जोड़ी मिलायी है वह सब तरहसे ठीकही है। अब खुशीसे मौज करो, जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ और नित्य नये नये कौतुक देखो। इसमें मेरा डर रखनेकी जरूरत नहीं है। परन्तु कभी कभी कृपा कर मुझे भी कौतुक दिखा दिया करना, जिससे तुम्हारे साथ साथ मेरा भी कार्य निकल जाया करेगा।

किन्तु रानीजी ! तुम्हारा सच्चा रूप तो मैंने आज ही देखा है। अब तक मैं तुम्हें जरा भी पहचान नहीं सका।"

पतिके यह वचन सुनकर गुणावलीने कहा,— "प्यारे! व्यर्थ ही मुझपर मर्म प्रहार क्यों कर रहे हो? आपकी इन बातोंसे तो यही मालूम हो रहा है कि आपके प्रेममें कुछ अन्तर आ गया है। आप हँस हँसकर ऐसी बातें कहते हैं, जो तीरकी तरह हृदयमें चुभ जाती है। मालूम होता है कि किसी चुगल-खोरने आपसे मेरे विषयमें कुछ झूठी बातें कह दी हैं, इसीलिये आप असन्तुष्ट हो रहे हैं, परन्तु विश्वास कीजिये कि, मैं कोई बुरा कार्य भूल कर भी नहीं कर सकती। आप तो चलते बैलको अरइ मारने जैसा करते हैं। मैं जानती हूँ कि संसारमें ऐसी कुलटा स्त्रियाँ भी मौजूद हैं, जो पतिको सोता छोड़, इधर उधर चली जाती हैं, परन्तु मैं वैसी स्त्रियोंकी तरह नहीं हूँ। अतएव आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि वारवार ऐसे शब्दोंका प्रयोग हरगीज न कीजिये; क्योंकि इससे हमारे पारस्परिक प्रेममें हानि पहुँचती है। फिर जैसी आपकी इच्छा।

गुणावलीकी इन बातोंका राजाचन्दने कोई उत्तर

न दिया। यह देख कर गुणावली भी चुप हो गयी, परन्तु राजा चन्दके शरीरपर विवाह के कुछ चिन्ह देखकर उसे विश्वास हो आया कि अवश्यही किसी तरह यह विमलापुरी पहुँच कर, प्रेमलासे शादी कर आये हैं। इसपर भी कुमतिके कारण उसने राजा चन्दके सामने सच्ची बात स्वीकार नहीं की, बल्कि राजा चन्द शय्या त्याग कर ज्योंही इधर उधर हुए, त्योंही वह भी वीरमतीके पास जा पहुँची।

गुणावली अपने कर्त्तव्यसे शून्य हो गयी। अब वह एक ऐसी उलझनमें पड़ गयी जिससे उसका सारा धैर्य जाता रहा, वह अपने मनमें नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प करने लगी। अन्तमें उसने वीरमतीसे कहा,—"माताजी! मैं आपको एक अशुभ समाचार देने आयी हूँ। वह यह कि, मैं आपके साथ विमलापुरी गयी थी जिससे मेरे पतिदेव मुझसे नाराज हो गये हैं। न मालूम उन्हें किस तरह यह सब बातें मालूम हो गयी हैं। आप तो अपनी बड़ी प्रशंसा करती थी और कहती थी कि मेरी जैसी विद्याएँ अन्य किसीके पास नहीं है, परन्तु अब तो मुझे आपकी विद्यासे अपने पतिकी विद्या बढ़ कर मालूम होती है। उस समय मैंने आपसे कहा भी था कि आपके पुत्रही प्रेमलासे शादी कर रहे हैं, परन्तु आपने मेरी बात

नहीं मानी । अब तो मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि उन्होंने वह ब्याह किया है । स्त्रियाँ चाहे जितनी चतुर हों, किन्तु पुरुषोंके सामने उनकी एक भी नहीं चलती । हम दोनोंने मिलकर उन्हें धोखा देना चाहा था, परन्तु उन्होंने अकेलेही हम दोनोंको छका डाला । इसलिये मैं पहले ही कहती थी कि उनको धोखा देना कठिन कार्य है । परन्तु मेरी बातको आपने ध्यानमें नहीं लिया । जरा यह तो सोचिये कि जो पुरुष इतने राज-काज करते हैं और रण-संग्राममें छाती पर भाला-बरछी की चोटें सहते हैं, भला वे स्त्रियोंके द्वारा किस तरह ठगे जा सकते हैं ? आपकी बातोंमें मैं किसी तरह आ गयी, इसीलिये मुझे आज उनके समक्ष लज्जित होना पड़ा । जो जिसका कार्य होता है, वही उसे कर सकता है । यदि उसे अन्य लोग करना चाहते हैं तो उनकी इसी तरह फजीहत होती है । माताजी ! अब अपनी यह चतुराई और विद्याएँ आप अपनेही पास रहने दीजिये । मुझे इनकी जरूरत नहीं है । आपको भी इस तरह अपनी प्रशंसा कर, मुझ जैसी अबोध बालिकाको इस झंझटमें न डालना चाहिये था । देखने गयी थी कौतुक, पर इधर नाथही रूठ गये । यह तो "लेने गयी पूत और खो आयी खसम" जैसा हाल हुआ । यद्यपि अभी तक मैंने

उनकी कोई बात स्वीकार नहीं की है, किन्तु जिसने स-
कुछ अपनी आँखों देख लिया है, उसे कब तक धोखा
दिया जा सकता है? उसे असत्य बतानेसे लाभ ही क्या
अब कहिये कि, मैं क्या करूँ? उनकी बातें सुन सु-
कर मुझे तो बड़ाही दुःख हो रहा है। कभी तो ऐसी
इच्छा होती है कि अपराध स्वीकार कर उनसे क्षमा
प्रार्थना कर लूँ और कभी ऐसी इच्छा हो जाती है कि
कहीं तालाब या कूएमें गिरकर डूब मरूँ।"

गुणावलीकी यह बातें सुनतेही वीरमतीके बदनमें
मानों आगसी लग गयी। उसका चेहरा लाल-पीला
हो गया और आँखोंसे चिनगारियाँ झरने लगीं। व
उसी समय हाथमें तलवार लिये खड़ी हुई और गुणावली
से कहने लगी कि,—"बहु! चल, मैं अभी इसका इलाज
किये देती हूँ।" यह कह, वह उसी समय राजा चन्दके
पास जा पहुँची। उस समय वे स्नानादिसे निवृत्त हो
ध्यान कर रहे थे। उन्हें देखतेही वीरमती अचानक
उन्हें पलंग पर पटक कर, उनकी छाती पर च
बैठी। तदनन्तर उसने गरज कर कहा,—"अ
दुष्ट! पापी! बोल, तूने बहुसे क्या कहा है? |
अभीसे मेरे छिद्र देखने लगा है, तो बुढ़ापेमें तू कि
तरह मेरी रक्षा करेगा? मुझसे देवता भी डरते हैं, तं

फिर तेरी क्या विसात है ? यह तो ऐसी मसल हुई कि चिउँटी को मोहर-अशर्फी पर बैठनेसे अभिमान आ गया। उसी तरह तू भी समझता होगा कि मैं एक बड़े देशका राजा बन गया हूँ, इसलिये अब मुझे किसीकी परवा नहीं है, परन्तु तुझे यह न भूलना चाहिये कि यह सब मेराही दिया हुआ है। मैं स्वयं राज्यको सम्हाल सकती हूँ। मुझे तेरी जरूरत ही नहीं है। तू अब अपने इष्टदेवका स्मरण कर। अब मैं तुझे हरगिज जीता न छोड़ूँगी।"

विमाताके यह वचन सुन कर राजा चन्द किंकर्त्तव्य-विमूढ़ बन गये। गुणावली अञ्चल फैलाकर विनय अनुनय करते हुए कहने लगी कि,—"पूज्य माताजी ! पुत्र पर इतना क्रोध न कीजिये। इनका किसी तरह अनिष्ट होनेसे लोग आपहीको हँसेंगे। जब तक मैं जीती हूँ, मेरा सौभाग्य अचल रहने दीजिये। मैं आपके पैर पकड़ती हूँ, आपसे अञ्चल पसार कर भिक्षा मांगती हूँ कि, मुझ पर कृपा कीजिये। आपके क्रोधानलकी आँच मुझसे सही नहीं जाती, न जाने किस दुर्भाग्यके कारण उन्हें छिद्रान्वेषण करनेकी सूझी और मैंने आपसे यह हाल कह डाला। मैं चतुरा होने पर भी चूक गयी। अब मुझे बहुत पश्चात्ताप हो रहा है। पूज्य माताजी ! पुत्र भलेही कुपुत्र हो जाय, पर माताको

कुमाता न होना चाहिये। इनकी इस समय अवस्थाही क्या है? इन्हें सांसारिक बातोंका अनुभवही कहाँ है? यह सब सोचकर, इन्हें छोड़ दीजिये। यदि इनका जीवनही न रहेगा, तो यह राज्य, यह सम्पदा और यह महल मेरे किस काममें आयेंगे? इनके साथही मेरा जीवन भी नष्ट हो जायगा, इसलिये इनपर नहीं तो, मुझपरही कृपाकर इन्हें जीवन-दान दीजिये। इन्हें शिक्षाके निमित्त जो कुछ हो चुका है, वही बहुत है। यह तो आपके प्यारे पुत्र हैं। बछड़ा रस्सीके बलपरही कूदता है। पुत्र माताकेही बलपर उत्पात करता है। इसलिये, इनका अपराध क्षमा कीजिये और इन्हें जो कुछ कहना हो वह मुझसे कहिये।"

यह सुन वीरमतीने कहा,—बहू! तू अब दूर रह। मेरे काममें तुझे माथा मारनेकी जरूरत नहीं है। ऐसा पुत्र होनेकी अपेक्षा न होनाही अच्छा है। तेरा अब कहना सुनना व्यर्थ है। अब मैं इसे किसी तरह भी जीता नहीं छोड़ूँगी। ऐसा सोना किस कामका, जो कान फाड़ डाले। यह तो राज्य पाकर, मेरीही बुराइयाँ करने लगा, इसलिये इसको अवश्य ही दण्ड देना चाहिये।"

यह कह, वह ज्योंही राजा चन्दके गलेपर तलवारका वार करनेको तैयार हुई, त्योंही गुणावली बीचमें आ



गुणावती बीचमें आ पड़ी।

[पृष्ठ १७५]

पड़ी। उसके नेत्रोंसे अश्रु-धारा बहने लगी। उसने वीरमतीके पैर पकड़ते हुए कहा,—"पूज्य माताजी! किसी तरह भी मुझे मेरे पतिकी भिक्षा दीजिये। माना कि, इनसे भूल हुई है, पर अब इनमें समझ होगी, तो ऐसा कार्य अपने जीवनमें कदापि न करेंगे। मैं आपसे दीनतापूर्वक प्रार्थना करती हूँ, कि इन्हें इसबार जीवन-दान दीजिये।"

गुणावली की यह विनय-अनुनय सुनकर वीरमतीको कुछ दया आ गयी, इसलिये उसने राजा चन्दका प्राण तो छोड़ दिया, परन्तु एक तागा मंत्रित कर उसके पैरमें बांध दिया, जिससे राजा चन्द मनुष्यसे मुर्गा बन गये। उनकी यह अवस्था देख, गुणावलीको बहुतही दुःख होने लगा। उसने वीरमतीसे कहा,—"माताजी! आपने यह क्या कर डाला? बेचारे इन्हें जीवन-दान तो दिया, पर इन्हें किसी कामका न रक्खा। कृपा कर इन्हें पुनः मनुष्य बनाइये। इनपर इतना क्रोध करना ठीक नहीं है। मेरे और आपके बीचमें इनके सिवा और कौन अपना बैठा है? अब हमलोग किसका मुख देखकर जीवन बितायेंगी? आप वयो-वृद्ध हैं। आपके सामने मैं नादान हूँ, इसलिये आपसे अधिक कहना उचित नहीं समझती। दयाकर इन्हें मनुष्य बनाइये। चाहे भ

हों या बुरे, पर यह आपकेही पुत्र हैं। इन्हींसे सारे राज्यकी शोभा है। इनके बिना अब राज्य कौन करेगा? और सिंहासन पर कौन बैठेगा, इसलिये जब आपने इन्हें जीवन-दान देनेकी दया की है, तो मनुष्यत्व भी प्रदान कीजिये। बिना मनुष्यत्व-का जीवन संसारमें व्यर्थही है।

इस प्रकार गुणावलीने प्रार्थना करते हुए बहुत कुछ कहा सुना, पर वीरमतीको जरा भी दया नहीं आयी। उल्टें उसने डपटकर कहा,—"बहू! सुन, अब अधिक चिल्लानेसे कोई लाभ नहीं है। यदि तुझे भी मुर्गी हो, तो अब मुझसे कोई बात कहना!"

वीरमतीके यह क्रूर वचन सुनकर गुणावली चुप हो गयी। इसके बाद वीरमती भी अपने महलमें चली गयी। धन्य है, उस विधाताकी लीलाको! घड़ी भरमें क्या था और अब क्या हो गया! कलतक जो चन्द एक राज्यके अधीश्वर थे, वह आज मुर्गा बन गये। सचमुचं भाग्यके लेख, लाख उपाय करने पर भी किसीके मिटाये नहीं मिटते। यह एक ईश्वरकी ही लीला है।

वीरमतीके चले जानेपर गुणावली मुर्गेको गोदमें लेकर उसे आँसुओंसे नहलाने और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा,—"प्यारे! जिस मस्तक पर अब तक

राज-मुकुट शोभा देता था, उस पर अब लाल पिच्छेकी कलंगी दिखायी दे रही है। जो शरीर बहुमूल्य वस्त्रों से ढका रहता था,-वह अब पाँखोंसे ढका हुआ है। जिन हाथोंमें तलवार आदि शस्त्र रहते थे, उनमें अब केवल लम्बे-लम्बे नख रह गये हैं। जो सूर्योदय होनेपर दूसरोंके उठानेसे उठते थे, वे स्वयं अब प्रातःकाल उठकर अपनी आवाज़से दूसरोंको उठानेका काम करेंगे। जो अबतक भाँति भाँतिके भोजन करते थे, वे अब कूड़ेके ढेरपर दृष्टि डालेंगे। जो मधुर वचन बोलते थे, वे अब कर्कश शब्द उच्चारण करेंगे। जो रत्न-जड़ित सिंहासनपर बैठते थे, वे अब चारों ओर मारे मारे फिरेंगे। जो सुवर्णके हिंडोले पर बैठकर झूलते थे, वे अब पिंजड़ेके लोह-निर्मित झूलेसे सन्तोष मानेंगे। हे दैव! तूने यह क्या कर डाला?"

इस तरह गुणावली अत्यन्त विलाप करते करते मुर्च्छित हो गयी। तुरन्त कई दासियाँ दौड़ आयीं और उन्होंने समुचित उपचार कर उसे सावधान किया। होश आनेपर गुणावली पुनः विलाप करने लगी। उसके दुःखका वारापार न रहा। उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रुपात हो रहा था। उसकी यह अवस्था देखकर, सखियाँ भाँति भाँतिके वचनों द्वारा उ

सान्त्वना देते हुए कहने लगीं,—"प्यारी बहिन! इसमें किसीका दोष नहीं है, यह तो सब भाग्यके दोषसे ही हुआ है। जब दुर्दैवने ही उन्हें राज्य और सुख-भोगसे वंचित कर डाला, तो सास या बहू क्या कर सकती है? जो भाग्यमें लिखा होता है, वह किसी तरह अमिट नहीं होता। पूर्व जन्मके संचित-कर्म, प्राणी मात्र को दूसरे जन्ममें भोगने ही पड़ते हैं। कर्मके सामने तीर्थंकर या चक्रवर्तीकी भी दाल नहीं गलती। फिर हमलोग तो किस हिसाबमें हैं? जो प्राणी जैसे कर्म बांधता है, उसे वैसेही कर्म भोग करने पड़ते हैं। इसलिये विलाप और दुःखका [illegible]ग कीजिये। जब तक यह मुर्गा आपके पास [illegible] रहे, तबतक ऐसा ही समझिये, मानो आपके पति ही आपके पास मौजूद हैं। रोने या शोक करनेसे कोई लाभ नहीं हो सकेगा, जिस विधाताने यह दुःख दिया है, वही फिर सुख भी देगा। यदि सुखके दिन नहीं रहे तो यह दुःखके दिन भी न रहेंगे। फिर आपको अपनी सासका भी ख्याल रखना चाहिये; क्योंकि उनके मनमें जरा भी दयाका अंश नहीं है। यदि वे आपको रोते कलपते देखेंगी, तो शायद और भी जल उठेंगी। इसलिये अब आपको किसी

तरह मौन धारण करना चाहिये और इस तरह रहना चाहिये मानों कुछ हुआ ही नहीं है। काया पलट हो जानेपर भी रूपान्तरसे यह मुर्गा आपका पति ही है, इसलिये इसकी सेवा कीजिये। जिनेश्वरने कर्मकी विचित्रताका जो वर्णन किया है, वह ठीक ही है। आप राज-माताकी चिकनी-चुपड़ी बातोंके फेरमें पड़ गयीं, इसीलिये आपको यह फल भोगना पड़ा। अब उनके सिवा और कौन इसे मनुष्य बना सकता है? इसलिये इस समय तो प्राणपणसे इसकी रक्षा कीजिये। पश्चात् यदि किसी समय माताजीका क्रोध शान्त होगा और वे प्रसन्न होगी, तो इसे फिर मनुष्य बना देंगी। इसके सिवा इस समय रोने या शोक करनेसे कोई लाभ नहीं हो सकेगा।"

इस प्रकार सखियोंके समझाने बुझाने पर गुणावली शान्त हो गयी और मुर्गेकी सेवामें अपना समय बिताने लगी। कभी वह उसे गोदमें लेती, कभी छाती पर सुलाती और कभी हाथ पर बैठाती। कुत्ते और बिल्लियोंसे उसकी रक्षा करती और तरह तरहके वन-फल, मेवा और अनारकी कलियाँ ला लाकर उसे खिलाती।

कुछ दिन व्यतीत होने पर एकदिन मु[illegible]
साथ लेकर वह वीरमतीके पास गयी

पैर छूकर खिन्न वदनसे वहीं बैठ गयी। वह इस विचारसे वहाँ गयी थी, कि शायद अब उसका दिल कुछ पिघला हो और वह मुर्गेको पुनः मनुष्य बना देनेकी दया करे। परन्तु वीरमतीसे ऐसी आशा रखना दुराशामात्र थी। मुर्गेको देखते ही वह कुढ़ उठी और गुणावलीसे कहने लगी,—"इस दुष्टको मेरे पास क्यों लायी है? इसे मेरी नजरसे दूर रख। क्या यह अब भी तुझे चन्दके समान ही प्यारा है? यदि ऐसी ही बात है तो मैं कहूँगी कि, तुझे जरासी भी बुद्धि नहीं है। अभी तो मैंने इसे पक्षी ही बनाया है, पर अब देखना, कि मैं इसके क्या हाल करती हूँ। यह तो मेरी बुराइयाँ करने चला था, पर आपही फँस गया। अब मैं इसे इसके कर्मका फल भली भाँति चखाऊँगी। जरा इसका मुँह तो देख! इसके भाग्यमें राज्य-भोग कहाँ लिखा है? इसे देखतेही मेरे बदन में मानों आग सी लग जाती है, इसलिये इसे यहाँसे शीघ्रही लेजा। इसे निरन्तर पींजड़ेमें बन्द रखना और भूलकर भी मेरे मनको जलानेके लिये कभी मेरे सामने न लाना।"

वीरमतीका यह रंग देखकर गुणावली उसी समय उठ खड़ी हुई और मुर्गेको अपने महलमें ले आयी। तदनन्तर उसने उसके लिये सोनेका एक पींजड़ा बनवाया

और उसीमें उसे रखकर उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगी। वह उसे सोनेकी प्यालीमें जल पिलाती, मिठाई मेवा खिलाती, कुंकुमके जलसे उसके पैर धोती और अनेक बार पींजड़ेसे बाहर निकाल, उसे गोदमें लेकर खिलाती। खिलाते समय राजा चन्दको वह अनेक प्रकारसे सान्त्वना देती और कहती कि,—"हे स्वामिन्! हे प्राणनाथ! हेप्रभो! मैं आपको क्षणभरके लिये भी अब अपने पाससे दूर न करूँगी और सदा अपनी नजरके सामने रक्खूँगी। आप पक्षी हो गये हैं, इसलिये शायद आपको भविष्यकी चिन्ता सताती होगी। आप यह भी सोचते होंगे, कि मेरी अब क्या गति होगी, परन्तु आपको ऐसी चिन्ता न करनी चाहिये। दुःखके बाद सुखके दिन अवश्यही आया करते हैं। किसी-न-किसी दिन हमलोगोंका भाग्य चक्र पलटेगा ही। तब तक हमलोग इसी तरह दिन बिताते रहेंगे। बड़े आदमियों पर बड़ी ही विपत्ति आती है। ग्रहण सूर्य और चन्द्रका ही होता है, ताराओंका नहीं। इसलिये हे प्यारे! किसी तरह चिन्तित न होकर प्रभुका स्मरण कीजिये। वह मंगलमय सब मंगल ही करेगा।"

इस प्रकार गुणावली मुर्गेको दिलासा देती और अपने दिलको भी समझाती। वह उसके पींजड़ेको

मन्दिरकी भाँति पूजती और उसे सदा पवित्र रखती। यदि कार्यवश वह कहीं दूर जाती और उस समय मुर्गा पंख फड़-फड़ाता, तो वह अपना काम छोड़ कर, तुरन्त वहाँ दौड़ आती और उसके आरामका पूरा प्रबन्ध करती।

इसी तरह गुणावली और राजा चन्दके दुर्दिन व्यतीत हो रहे थे। कुछ समयके बाद, एक दिन गोचरीके निमित्त किसी मुनिराजका शुभागमन हुआ। उन्हें देखकर गुणावलीने उनका बहुतही सत्कार किया और लड्डू वगैरः उत्तम पदार्थ देकर उन्हें सन्तुष्ट किया। इसी समय मुनिराजकी दृष्टि उस मुर्गे पर जा पड़ी। उसे देखतेही मुनिराजने कहा,—"हे भद्रे! इस पक्षीने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो तुमने इसे क़ैद कर रखा है? सोनेका पींजड़ा तुम्हें भलेही सुन्दर मालूम होता हो, पर उसके लिये तो क़ैद खानाही है। इसलिये इसे शीघ्रही मुक्त कर दो। फिर मुर्गा एक हिंसक प्राणी है, इसे पालना भी ठीक नहीं। प्रातःकालमें इसका मुँह देखनेसे पाप लगता है। जान बूझकर यह पाप अपने शिर क्यों ले रही हो?"

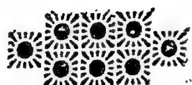
मुनिराजके यह वचन सुन कर गुणावलीने कहा,—"गुरुदेव! यह एक सामान्य मुर्गा नहीं है, यह तो आभा नरेश हैं, मेरे स्वामी हैं। राज-माताने क्रुद्ध

कर इनकी यह अवस्था कर दी है। इसकी कहानी बहुत बड़ी है। उसे सुनानेसे कोई लाभ भी नहीं। मैंने पूर्व जन्ममें कोई घोर पातक किया था, उसीका यह फल भोग रही हूँ।

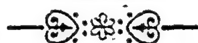
हे गुरुदेव! इसीलिये मैं इन्हें पींजड़ेमें रखकर, इनकी रक्षा कर रही हूँ। यदि यह मामूली पक्षी होता, तो मैं आपका उपदेश मानकर इसे अवश्यही बन्धन-मुक्त कर देती।"

यह सुनकर मुनिराजने कहा,—"रानी! यह बात मुझे मालूम नहीं थी इसीसे मैंने सामान्य पक्षी जानकर तुम्हें उपदेश दिया था। वीरमतीने वह कार्य बहुतही बुरा किया है। राजा चन्द तो चन्द्रके समान था, उसकी इस प्रकार दुर्दशा न करनी चाहिये थी। खैर, जो हुआ सो हुआ, अब तुम्हें इसके लिये अधिक खेद या दुःख न करना चाहिये। तुम्हारे सतीत्वके प्रतापसे अवश्यही यह संकट दूर हो जायगा। कर्मके सामने किसीका कोई चारा नहीं। कर्म सभीको सीधा बना देता है। जो कार्य कर्म कर सकता है, वह और कोई नहीं कर सकता। इसलिये शोक-चिन्ता त्यागकर, तुम्हें अब धर्माराधनमें विशेष ध्यान लगाना चाहिये। इससे तुम्हारा अवश्यही कल्याण होगा। तुम्हें यही मेरा उपदेश है।"

इस तरह गुणावलीको सदुपदेश और सान्त्वना देकर मुनिराज चलदिये और गुणावली उनकी हित-शिक्षाको ध्यानमें रख, उस दिनसे अधिकाधिक धर्माराधन करने लगी। वह निरन्तर मुर्गेकी रक्षा करती, उसे सब तरहका आराम पहुँचाती और अपनी नादानीके लिये पश्चात्ताप करती। शेष समय जो मिलता, उसे दया, दान, भक्ति और अतिथि-सेवा आदि कार्योंमें बिताती। यही अब उसकी जीवन-चर्या हो गयी और यही उसका नित्य-कर्म बन गया।



ग्यारहवाँ परिच्छेद



वीरमतीकी नीचता



राजा चन्द अब प्रकृत मुर्गेकी तरह प्रातः कालमें उठकर कुकडू कूँ की आवाज किया करते थे। गुणावली उसे सुनते ही उठ बैठती थी। पतिदेवको इस तरह बोलते देख उसका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था और आँखोंसे अश्रुधारा वह निकालती थी। वह मुर्गेको गोदमें लेकर कहने लगती कि,—"प्यारे! आपको मुर्गेकी बोली बोलनेमें शायद कोई कष्ट न होता होगा। परन्तु मुझे तो यह शब्द वज्रकी तरह कठोर मालूम हो रहे हैं। सुबह जब मुर्गे बोलते थे, तब नीदमें व्याघात पड़नेके कारण आपको उनपर क्रोध आ जाता था, परन्तु दुर्दैवने अब आपको भी मुर्गा बना दिया है। आपका शब्द सुन कर, आपकी माता भले ही प्रसन्न

होगी, किन्तु मुझे तो इससे अपार दुःख हो रहा है, इसलिये वारंवार ऐसी बोली न बोला करें।"

गुणावलीकी यह सभी बातें राजा चन्द पहलेकी तरह आसानीसे समझ लिया करते थे। परन्तु पक्षी हो जानेके कारण अब उनमें मनुष्यकी तरह बोलनेकी शक्ति नहीं थी, इसलिये वे उसकी बातोंका कोई उत्तर नहीं दे सकते थे।

एक दिन गुणावली नगरवासियोंकी चर्चा सुननेके उद्देश्यसे अपने महलके झरोखेमें जा बैठी। मुर्गेको भी पीजड़ेमें बन्द कर, उसने अपने पास रख लिया, ताकी वह भी लोगोंकी दृष्टिमें पड़ सके। इधर नगरमें राजा चन्दकी अनुपस्थितिसे घोर हाहाकार : हुआ था और जितने मुँह उतनी बातें हो रही। झरोखेमें बैठतेही गुणावली और राजा चन्दने किसीको यह कहते हुए सुना,—"भाई! बहुत दिनोंसे राजा चन्द क्यों नहीं दिखायी देते हैं? उनके बिना यह नगर चन्द्र रहित आकाशकी भाँति विरूप मालूम हो रहा है। यह सुनकर किसीने कहा कि,—"अहो! क्या आप नहीं जानते कि राजा चन्दको तो उसकी माताने मुर्गा बना डाला है? अब हम लोगोंका वह भाग्य कहाँ है, जो राजा

चन्दका दर्शन कर सकें ?"

नगरजनोंकी यह वातें सुनकर गुणावली और मुर्गा, दोनों एक दूसरेकी ओर देखकर आँखोंसे अश्रु-धारा वहाने लगे। इसी समय कुछ लोगोंने झरोखेकी ओर देखा। वहाँ सोनेके पींजड़ेमें मुर्गेको देखकर वे भलि भाँती समझ गये कि यही राजा चन्द हैं। देखते-ही-देखते वहाँ लोगोंकी वहुत वड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। सवलोग वड़ी श्रद्धापूर्वक उस मुर्गेको प्रणाम करने लगे। चारों ओर नाना प्रकारकी वातें होने लगीं। सभी लोग सरेआम राजा चन्दकी प्रशंसा और वीरमतीकी निन्दा करने लगे।

शीघ्रही यह समाचार वीरमतीको मालूम हुआ और वह दौड़ती हुई गुणावलीके पास आ पहुँची। आतेही गुणावलीको फटकारते हुए कहा,—"अरी निगोड़ी! आज यह कौनसा तमाशा करने वैठी है? मुर्गेको झरोखेमें लाकर क्यों वैठाया है? यदि तू इसे जिन्दा रखना चाहती है तो इसी समय इसे उठाकर भीतर ले जा। क्या घरकी छिपी वातें इस तरह वाहर प्रकट की जाती हैं? ऐसे कार्योंका फल वहुत ही वुरा होता है। आजतो मैं तेरे इस अपराधको क्षमा करती हूँ। परन्तु भविष्यमें फिर कभी तूनेऐसा

किया, तो मैं तुझे कदापि क्षमा न करूँगी। तूने सोचा होगा कि इसे बाहर लेकर बैठनेसे माताजीकी निन्दा होगी, परन्तु तुझे अच्छी तरह समझ रखना चाहिये, कि मैं ऐसी निन्दासे डरनेवाली नहीं हूँ। दावानल कुल्लोंसे नहीं बुझता। तेरे इन कार्योंसे यह अब मनुष्य नहीं बन सकता। यदि यह तुझे बहुतही प्यारा हो तो तू इसे गहना पहना सकती है, खिला-पिला सकती है, आरामसे रख सकती है, इसमें मैं बाधा न दूँगी। किन्तु यदि तू इसे झरोखेमें लेकर बैठेगी, या लोगोंको दिखायेगी अथवा इसे चन्दके नामसे पुकारेगी तो मैं कदापि सहन न करूँगी और फिर उस समय तेरी भी वही अवस्था कर दूँगी, जो तेरे पतिकी है।"

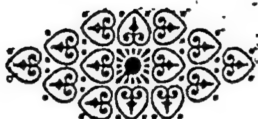
वीरमतीका एक एक शब्द उसे शूलके समान मालूम हो रहा था। उसके नेत्रोंसे अविरल अश्रु-धारा बह रही थी। वह उसी समय झरोखेसे उठकर महलमें चली गयी। वीरमतीके जाने पर वह जी भरकर रोई। रोते-रोते जब उसके हृदयका भार कुछ हलका हुआ तब वह शान्त हुई।

इस घटनाके बाद गुणावली किसी दिन भी झरोखेमें न दिखायी दी। वह अपना सारा समय महलमें ही बिताती और वहीं पर अपने पतिकी सेवा-शुश्रूषा किया

करती । संसारमें आशा बड़ी चीज है। आशा ही पर समस्त संसार अवलम्बित है। आशा जीवन और निराशा मरण है। गुणावली भी इस समय आशाके कारण ही जी रही थी। उसे आशाही नहीं, बल्कि पूर्ण विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन वह पुनः अपने पतिको प्रकृत रूपमें प्राप्त करेगी। चारों ओर निराशाकी काली घटा घिरी हुई थी, कहींसे भी किसीका सहारा न था। वीरमतीके भयसे वह किसीके सामने अपना दुःखड़ा तक न कह सकती थी। किन्तु इस अवस्थामें भी वह जी रही थी। जीनेका एक मात्र कारण अमर आशाही थी, और वही उसे जीला रही थी।

अब पतिके बिना गुणावलीको सारा संसार सूना मालूम हो रहाथा। उसे खाना-पीना या देखना-सुनना कुछ भी भला न मालूम होता था। फिर भी, यदि किसी दिन वीरमती उसे कहीं चलनेको कहती, तो वह उसे प्रसन्न रखनेके लिये उसके साथ अवश्य जाती। समय समय पर वीरमती उसे आम्र वृक्ष पर बैठाकर, दूर देशान्तरमें ले जाती और नये-नये आश्चर्यजनक कौतुक दिखाती। इच्छा न होने पर भी वीरमतीके भयसे गुणावलीको वह सब देखनाही पड़ता था और प्रशंसा करनी पड़ती थी। वह मुर्गेको

नहीं छोड़ती थी । इसी तरह वह अपने दि
व्यतीत कर रही थी । और अपने पतिपर आ
हुए संकटको निवारण करनेके लिये जप-तप भी
किया करती थी ।



बारहवाँ परिच्छेद



राजकुमारी प्रेमलाको मृत्यु-दण्ड



विमलापुरीसे आभानगरी पहुँचनेपर राजा चन्द पर क्या क्या-बीती और उनकी विमाताने उन्हें किस प्रकार मनुष्यसे मुर्गा बना दिया, यह गत परिच्छेदोंमें बतलाया जा चुका है। उसके बाद प्रेमलालच्छीका क्या हुआ और वह किस प्रकार लाञ्छित तथा अपमानित हुई यह अब पाठकोंकी जानकारीके लिये हम अंकित करते हैं।

हिंसक मन्त्रीके आने और कटु शब्दोंका प्रयोग करने पर, राजा चन्द जब प्रेमलालच्छीको छोड़ कर बाहर निकल आये, तब प्रेमलालच्छीने भी बाहर निकलनेकी चेष्टा की परन्तु हिंसक मन्त्रीने बीचमें बाधा देकर उसे वहीं रोक लिया। इससे हिंसक पर प्रेमलाको बड़ा क्रोध आया, परन्तु नवविवाहिता वधू होनेके

कारण वह कुछ भी बोल न सकी। वह बड़ी देरतक पतिदेवकी राह देखती रही, परन्तु काफी समय हो जाने पर भी जब वे वापस नहीं आये, तब वह समझ गयी कि अवश्यही मेरे साथ कोई कपट किया गया है और इसीसे प्राणनाथ मुझे छोड़ कर चले गये हैं।

इस घटनासे प्रेमला दुःखित हो खिन्नता पूर्वक अपना भविष्य सोच रही थी। इसी समय हिंसक मन्त्रीने राज-कुमार कनकध्वजको कुछ सिखा-पढ़ा कर उसके पास भेजा। उसे दूरसे आते देखकर पहले तो प्रेमलाने समझा, कि उसके पतिदेवही आ रहे हैं, इसलिये वह उनके स्वागत के लिये सामने जा कर खड़ी हो गयी, परन्तु कनकध्वजके समीप आने पर जब उसने देखा कि यह कोई दूसराही पुरुष है, तब वह तुरन्त दूर हट गयी। पश्चात् उसने कहा,—"आप कौन हैं और यहाँ किस लिये आ रहे हैं? यहाँसे शीघ्रही चले जाइये, वरना द्वारपाल आपको अपमानित करेंगे।"

कनकध्वजने मुस्कुराते हुए कहा,—"प्यारी! क्या इतनेही समयमें तुम मुझे भूल गयीं? क्या अपने पतिको भी कोई इस तरह भूल जाता है। अभीसे ऐसा करोगी, तो आगे चल कर क्या होगा? देखनेमें तो बड़ी सुन्दर मालूम होती हो, परन्तु अक्ल जरा भी नहीं है



प्रेमलाका हाथ पकड़नेकी चेष्टा की, त्यों ही उसने डपट कर कहा,—"अरे पापी ! दूर खड़ा हो, [पृष्ठ १७३]

यदि तुममें अक्ल होती तो अपने पतिको हरगीज न भूल जातीं ?"

यह कहते हुए कनकध्वज भीतर चला आया और आतेही पलंग पर बैठ गया। यह देखकर प्रेमला तो उसी तरह एक ओर खड़ी हुई, जिस तरह शेरको देखकर गाय भागती हुई एक ओर खड़ी रह जाती है। उत्तम पुष्पकी दोही गतियाँ होती हैं, या तो शिरपर चढ़ता है या जमीन पर गिरता है। उसी तरह सतीके शरीरकी भी दोही गतियाँ होती हैं—या तो उसे पति-स्पर्श करता है या अग्नि स्पर्श करती है। इस तरह प्रेमलाको दूर खड़ी देखकर कनकध्वजने कहा, "प्यारी! इतनी दूर क्यों खड़ी हो? यहाँ आओ, बैठो और आनन्द मनाओ! ऐसा अवसर बारबार थोड़ेही आयेगा। यह जवानी तो चार दिनकी चाँदनी है, इसे जाते देर न लगेगी। आज प्रथम समागममेंही ऐसी जुदाई क्यों? तुम सोरठ नरेशकी पुत्री हो और मैं सिंहल नरेशका पुत्र हूँ। ऐसा योग तो विधाताके प्रसन्न होनेपरही मिलता है।"

इस तरह कहते कहते कनकध्वज प्रेमलाके पास जा खड़ा हुआ, परन्तु उसने ज्योंहीं प्रेमलाका हाथ पकड़नेकी चेष्टा की, त्यों ही उसने ऊपर नज़र

कहा,—"अरे पापी ! दूर खड़ा हो, अब सारा भेद मेरी समझमें आगया, तू मेरा पति नहीं है ।

मैं अपने पतिको अच्छी तरह पहचानती हूँ, तू तो झूठमूठ गले पड़ने आया है । परन्तु इस तरह पराई पत्नी अपनी नहीं बन सकती । तेरी इस नादानीके लिये मुझे तुझपर दया आरही है। कोढ़ी होने पर भी तुझे तहखानेमें क्यों रक्खा गया ? वाहरे सौन्दर्य ! अवश्य ही बाहर निकलने पर तुझे किसीकी नजर लग जाती ! जा, अब यहाँसे चुप-चाप चले जानेमेंही तेरा कल्याण है । चन्दरको क्ताहार पहननेका हौंसला न करना चाहिये। इस गपर बैठ जानेसे ही तू मेरा पति नहीं हो सकता। दव-मन्दिरके कलश पर बैठनेसे कौवा गरुड़ नहीं बन जाता । तू मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपनी पत्नी बनाना चाहता है, पर यह सब किस मुराद पर कर रहा है ? जा, पहले दर्पणमें अपना मुँह तो देख आ।"

जिस समय इस तरहका वाद-विवाद हो रहा था, उसी समय कुमार कनकध्वजकी धाय कपिला वहाँ आ पहुँची और कहने लगी—"बहू ! इस तरह दूर क्यों खड़ी हो ? यह तुम्हारा पति है, इसके साथ बैठो, बातचीत करो और आनन्द मनाओ ! मुझसे

परदा करनेकी कोई जरूरत नहीं है। तुम क्या कहती हो, कि यह तुम्हारा पति नहीं है? ब्याह करनेके बाद मुँहसे ऐसी बातें कहीं निकाली जाती हैं? कोई सुनेगा तो दोनों कुलकी नाक कटेगी।"

धायके यह कपट-वचन सुनकर प्रेमलाने कहा,—"तुम बूढ़ी हो गयी हो, मुँहमें एक भी दाँत नहीं है, फिर भी ऐसी बातें कहती हो? तुम्हारी इन बातोंका मुझपर कोई असर नहीं पड़ सकता, इस तरहके भुलावेमें आनेवाली और कोई स्त्रियाँ होंगी। तुम्हें व्यर्थही मुझे धोका देनेका उद्योग नहीं करना चाहिये!"

हिंसक मन्त्रीने पहलेहीसे एक षड्यन्त्रकी रचना कर रक्खी थी। सारा मामला पहलेहीसे गँठा गया था और उसीके अनुसार यह कार्रवाई हो रही थी। प्रेमलाकी फटकार सुनतेही कपिला बाहर निकल आयी और जोर जोरसे चिल्लाकर कहने लगी—दौड़ो! दौड़ो! किसी चतुर चिकित्सकको शीघ्रही बुलाओ। पत्नीके स्पर्शसे कुमार कनकध्वजको एकाएक कोढ़ हो गया—उनकी कञ्चन-काया मिट्टी हो गयी! हाय, अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?

सूर्योदय हो चुका था। लोग शैय्याका

त्यागकर नित्यकर्ममें लगनेकी तैयारी कर रहे थे। इसी समय कपिलाको रोते-चिल्लाते देख, मन्त्री हिंसक, राजा कनकरथ और उनकी रानी आदि सब लोग वहाँ दौड़ आये। घोर हाहाकार मच गया। कुमारकी माता चिल्ला उठी,—"अहो पुत्र! यह क्या हो गया? तेरी स्त्री तो विषकन्या मालूम होती है।" राजा कनकरथ कहने लगे,—"हा दैव! मेरे पुत्रका वह रूप, जिसको देखनेके लिये दूर-दूरसे लोग आते थे, कहाँ चला गया? यह कन्या तो मेरे पुत्रकी वैरिणी मालूम होती है। यदि मुझे पहलेसेही यह बात मालूम होती, तो मैं राज-कुमारसे इसका ब्याह ही नहीं करता!"

प्रेमला यह सब लीला चुपचाप देख रही थी, किसीकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया। सोच रही थी कि, इस समय यदि मैं कुछ कहूँगी, तो वह निःसन्देह अरण्य-रोदन ही प्रमाणित होगा। मेरी सच्ची बात भी इस समय झूठी मानी जायगी, इसलिये, उपयुक्त समयकी प्रतीक्षा करना ही उचित होगा।"

बिजलीकी तरह यह समाचार राजा मकरध्वजके पास जा पहुँचा। वे भी उसी समय वहाँ दौड़ आये। राज-कुमार कनकध्वजका कोढ़ देखते ही वे आश्चर्यमें पड़

गये । उन्होंने सबको शान्तकर इस दुर्घटनाका समाचार पूछा । वे बहुत ही भोले भाले थे, अतः उनमें यह प्रपञ्च समझनेकी शक्ति नहीं थी । उस समय हिंसक मन्त्रीने कहा;—"राजन् ! आपकी पुत्री तो विषकन्या मालूम होती है, उसे स्पर्श करतेही हमारे राजकुमारकी यह अवस्था हो गयी। कल तो इनका सौन्दर्य आप देख ही चुके हैं । इनके सामने कामदेव भी मात हो जाता था । घड़ी भरमें ही इनकी यह अवस्था हो गयी । हम पहलेसेही जानते तो यह सम्बन्ध हरगीज नहीं करते। खैर, अब आप अपनी कन्याको अपने घर ले जाइये और इसका जो चाहे सो कीजिये । हमलोग तो यह ब्याह करके बुरीतरह फँस गये !"

राजा मकरध्वज यह सब हाल सुनतेही आग बबूला हो गये । उनकी आँखोंसे मानो चिनगारियाँ झरने लगीं । वे उसी समय तलवार खींचकर प्रेम-लाकी और झपट पड़े । यह देख कर कनकध्वजने विनयपूर्वक कहा,—"पिताजी ! इस तरह क्रोध न कीजिये । इसमें न तो इसका दोष है, न मेरे माता-पिताकाही दोष है । सारा दोष मेरे कर्मकाही है, इसलिये आप व्यर्थही स्त्री-हत्याका पातक

शिरपर न लीजिये ।"

कुमार कनकध्वजकी इन बातोंसे राजा मकरध्वज शान्त हुए । वे कहने लगे,—"आपके कहने परही इसे छोड़ देता हूँ, वर्ना इसी समय मैं इसे मार डालता।"

इस घटनासे राजा मकरध्वजका चित्त बहुत ही खिन्न हो गया । वे इसी पर विचार करते हुए अपने महलमें लौट आये । उसी समय उन्होंने सुबुद्धि मन्त्रीको बुलाकर उससे सारा हाल कह सुनाया। पश्चात् सुबुद्धिने सारी बातें सुन लेनेके बाद कहा,—"राजन् ! आपको यह क्या हो गया है? आप अपनी पुत्रीपर इतना क्रोध क्यों कर रहे हैं? मैं भी वरको देख आया हूँ । उसका यह कोढ़ आज कलकासा नहीं है, बल्कि जन्मकासा ही मालूम हो रहा है । उसके शरीरसे तो बेतरह बदबू निकल रही है । भला, यह सब घड़ी भरमें कहीं हो जा सकता है ? मुझे तो यह सारा प्रपञ्चही मालूम हो रहा है।"

मन्त्रीके यह कहने पर भी राजाका क्रोध शान्त न हुआ । जब मन्त्रीने देखा कि महाराज किसी प्रकार समझाने बुझानेसे नहीं मानते, तब उसने कहा,—"जो आपकी इच्छा में आये सो कीजिये, परन्तु अन्तमें आपको पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा ।

इसी समय प्रेमला अपनी माताके पास आ पहुँची, किन्तु माताके मनमें भी यही बात बस गयी थी, कि प्रेमला विष कन्या है, इसलिये उसका सत्कार करना या उसका दुःख-सुख पूछना तो दूर रहा, वह मुँहसे बोली भी नहीं। जब दैव रूठता है, तब सभी रूठ जाते हैं। राजाने उसी समय चाण्डालको बुलाकर कहा—"प्रेमला को समशानमें ले जाकर उसका शिर उड़ा दो।" यह सुनतेही चाण्डाल उसी समय उसे अपने साथ लेकर चल पड़ा। यह देख, सबलोग अचम्भेमें पड़ गये। किसीको कुछ कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ी। परन्तु मन्त्रीने फिर एक बार उन्हें समझानेकी चेष्टा की, उसने बहुत कुछ कहा सुना, पर उसका कोई फल न हुआ।

इधर वह वधिक प्रेमलाको अपने साथ ले, जब नगरके चौराहे पर पहुँचा, तब यह हाल नगरके महाजनोंको मालूम हुआ। उन्होंने तुरन्त वधिकको समशान जानेसे रोका और उन दोनोंको अपने साथ ले, वे राजाके पास आये। उन्होंने महाराजसे कहा,—"राजन्! यह अनुचित कार्य आप क्यों कर रहे हैं? जामाताको कोढ़ हो गया है तो राज-पुत्रीका उसमें क्या दोष है? इसलिये हमलोगोंका अनुरोध

स्वीकार कर, राज-पुत्रीको जीवन-दान दीजिये और उसका अपराध क्षमा कीजिये । चाहे भली हो या बुरी, पर आपहीकी पुत्री है । उस पर इतना कोप न करना चाहिये । परदेशी और दुर्जनोंकी बात पर इस प्रकार विश्वास कर लेना भी ठीक नहीं है।" इस तरह महाजनोंने राजाको बहुतही समझाया; पर उसे क्रोध रूपी सर्पका विष इस कदर चढ़ गया था, कि वह किसी प्रकार उतारा न जा सका। महाजन निराश होकर लौट आये । राजाने पुनः चाण्डालको आज्ञा दी कि,—"इसे शीघ्रही यहाँसे ले जाओ, अब मैं इस पापिनी विष कन्याका मुँह भी नहीं देखना चाहता हूँ ।"

उसी समय राजाके आदेशानुसार चाण्डाल पुनः उसे स्मशानकी ओर ले चला । इससे समूचे नगरमें हाहाकार मच गया । स्मशान पहुँचनेपर वधिकने हाथ जोड़ते हुए प्रेमलासे कहा, "हे राजकुमारी! आपके पिताने मुझे आपको मार डालनेकी आज्ञा दी है, इसलिये मुझे उनकी आज्ञाका पालन करना ही होगा । अपने जीवन और इस व्यवसाय पर धिक्कार हो रहा है । यदि मैं यह कार्य ही न करता, तो आज मुझे ऐसा पाप क्यों करना पड़ता ? पूर्व



"हे राजपुत्री ! मृत्यूको सामने देख कर भी आप हँस क्यों रही हो ?"

(पृष्ठ १८१-१८८)

जन्मके पापसे ही इस समय मेरी यह गति हो रही है। अब इन पापोंके कारण दूसरे जन्ममें भी न जाने मेरी कौनसी गति होगी। वास्तवमें पेट बड़ाही पापी है, वही यह सब पाप कराता है। हे राज-कुमारी! मेरी इस मजबूरीके लिये क्षमा कीजिये और अपने इष्टदेवका स्मरणकर मुझे अपना कर्तव्य पालन करनेकी आज्ञा दीजिये।"

प्रेमला आखिर वीर-पुत्री थी। वधिकके यह वचन सुन कर या उसकी नंगी तलवार देखकर वह जरा भी भय-भीत न हुई। वह इस घटनाके लिये न तो अपने श्वसुर आदिको दोषी मानती थी न अपने पतिको। वह इसके लिये अपने कर्मको ही दोष दे रही थी, इसलिये वधिककी यह बातें सुनतेही वह खिल-खिलाकर हँस पड़ी और उसे शीघ्रही अपना कर्तव्य पालन करनेकी आज्ञा दे दी।

राज-कुमारी प्रेमलाका यह धैर्य देखकर चाण्डालको बड़ाही आश्चर्य हुआ। वह मनमें सोचने लगा कि यह मामला क्या है? इस समय तो यह मरने जा रही है, फिर ऐसी अवस्थामें इसे हँसी क्यों आरही है, इसलिये संभव है कि इसमें कोई गहरा रहस्य छिपा हो। इसी तरहके तर्क-वितर्क करते हुए उसने पूछा,—"हे राज-पुत्री! मृत्युको सामने देख कर भी

आप हँस क्यों रही हो ?" यह सुन कर प्रेमलाने कहा,—"अरे भाई ! मैं अपने हँसनेका कारण तुझसे क्या कहूँ ? यहाँ कहनेसे भी कोई लाभ नहीं है ? हाँ यदि महाराज पूछते तो उनसे अवश्य ही कहती; पर उन्होंने तो कुछ भी नहीं पूछा, न मेरी कोई बात ही सुनी। वे तो लोगोंकी मिथ्या बातें सुनकर भ्रममें पड़ गये। यही बात मुझे खटक रही है और इसीलिये मुझे हँसना आ रहा है। यदि वे अब भी मेरी बात सुनना चाहें, तो मैं उन्हें सच्चा हाल बता सकती हूँ। उस घटनाको सुनकर अवश्यही उनकी आँखें खुल जायेंगी।"

वधिकको सारा हाल मालूम तो था ही, उसने सोचा कि, राज-कुमारीकी यह सारी बातें महाराजसे कह देनी चाहिये। पश्चात् कहीं ऐसा न हो, कि महाराज रुष्ट हो जायें और कहें कि मुझे पहले आकर क्यों न बताया ? यह सोचकर वधिक राज-कुमारीको अपने एक संगीके सिपुर्द कर, आप सुबुद्धि मन्त्रीके पास जा पहुँचा और उससे सारी बातें कह सुनायीं। अन्तमें उसने कहा,—"राज-कुमारी बिलकुल निर्दोष मालूम हो रही है। एक बार उनकी बातें अवश्य ही सुन लीजिये। राज-कुमारी महाराजके सिवा और किसीसे कुछ बताना नहीं चाहतीं। उन्होंने यह भी

कहा है, कि मेरी बातें सुनने पर महाराजको सारा रहस्य मालूम हो जायगा। इसलिये आप एकबार महाराजके पास जाइये और उन्हें राज-कुमारीकी बातें सुननेके लिये राजी कीजिये। फिर जैसी महाराजकी इच्छा।"

उसी समय मन्त्री महाराजके पास पहुँचा, उसने उनसे कहा,—"हे स्वामिन्! राज-कुमारी अन्त समयमें आपसे कुछ कहना चाहती है। उसका कथन सत्य हो या मिथ्या, भला हो या बुरा, पर एकबार अवश्यही सुन लेना चाहिये। न्याय भी यह ही कहता है। साधारण अपराधिको भी दण्ड देनेके पहले अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करनेका मौका दिया जाता है। फिर यहतो आपकी प्यारी पुत्री है। यदि इसमें कोई अनुचित कार्य हो जायगा, तो संसारमें न केवल अप्रतिष्ठा ही होगी, बल्कि आपको भी पश्चात्ताप होगा। मैं तो आपसे आरम्भहीसे कह रहा हूँ, कि परदेशी आदमियोंकी बात पर विश्वास करना ठीक नहीं। यदि आप उसे विषकन्या ही मानते हों और उसका मुँह देखनेमें पाप समझते हों, तो उसे परदेमें बैठाकर उसकी बातें सुन सकते हैं। आपसे बारबार यही अनुरोध है कि मनुष्यता और न्यायके नामपर, मेरी यह प्रार्थना अमान्य न करें राज-कुमारीकी बातें एकबार

अवश्यही सुन लीजिये !"

राजा मकरध्वजको मन्त्रीका यह अनुरोध इस बार स्वीकार करना ही पड़ा । वे पुत्रीका मुख देखना नहीं चाहते थे, इसलिये मन्त्रीने परदेकी व्यवस्था कर दी । उसी समय प्रेमला वधस्थानसे वापस लाकर उस परदेकी ओटमें बैठायी गयी । तदनन्तर मन्त्रीने प्रेमलाको अपना सारा हाल सुनानेकी आज्ञा दी, इससे वह बड़ीही आनन्दित हुई और अपने पितासे नम्रता पूर्वक सारी बातें निवेदन करने लगी,— "पिताजी ! मैं आपके समक्ष एक शब्द भी असत्य नहीं बोलूँगी । मेरे विवाहके सम्बन्धमें जो घटना घटित हुई है, उसका सारा सच्चा हाल सुनेंगे, तो आपको मेरी निर्दोषिता पर अवश्यही विश्वास हो जायगा । यद्यपि यह बात कहते हुए मुझे बड़ीही लज्जा हो रही है; पर क्या किया जाय, लाचारी है । यदि यह सारा भण्डाफोड़ मैं न करूँ तो मुझेही इसका फल भोगना पड़ता है । पिताजी ! सुनिये, सबसे पहले आपको मैं यह बतलाना चाहती हूँ, कि रातमें जिसके साथ मेरा ब्याह हुआ था और जिसे आपने हाथी घोड़े आदि दान किये थे वह यह वर नहीं था । वे तो आभानगरीके स्वामी

राजा चन्द थे। उनकी बातोंसे मुझे जो हाल मालूम हुआ है, उसीसे मैं कह सकती हूँ, कि उनके सामने यह लोग किसी बिसातमें नहीं हैं। मेरे इस कथनमें जरा भी असत्य हो तो आप मुझे वही दण्ड दे सकते हैं, जो एक चोरको दिया जाता है।" यह सुनकर मन्त्रीने पूछा,—"हे राज-कुमारी! तुम्हें यह भेद कैसे मालूम हुआ कि तुम्हारे पति आभा नरेशही हैं? तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है? यह सब बातें तुम्हें अपने पिताके समक्ष स्पष्ट शब्दोंमें प्रकट करनी चाहिये।" यह सुनकर प्रेमलाने कुछ सकुचाते हुए कहा,—"पिताजी! हमलोग शादी करनेके बाद जब चौपड़ खेल रहे थे तब उन्होंने कई बार ऐसी बातें कहीं जिनसे मुझे उनके विषयमें सन्देह उत्पन्न हो गया। पश्चात् उनकी बातों पर विचार करते हुए मुझे निश्चय हो गया कि वेही आभा नरेश थे। चौपड़ खेलते समय उन्होंने आभानगरीके सुन्दर भवनोंकी तथा वहाँके पासोंकी बड़ी प्रशंसा की थी। उस समय तो मैं उनकी यह बातें सुनकर चकित हो गयी; पर मेरी समझमें यह बात न आयी कि यह सिंहलपुरीकी प्रशंसा करनेके बदले आभा नगरीकी प्रशंसा किसलिये कर रहे हैं? इसी तरह जब वे भोजन करने बैठे, तब उन्होंने और भी

अनेक बातें ऐसी कहीं, जिनसे यह मालूम होता था कि आभा नगरीसे इनका घनिष्ट सम्बन्ध है। अब मुझे उनके आभा नरेश होनेमें किञ्चित भी सन्देह नहीं है। उनकी बातों में अपूर्व मधुरता थी। रूप और सौन्दर्यमें भी वे काम-देवके समान थे, किन्तु यह कोढ़ी तो कौएकी तरह है। कहाँ वे और कहाँ यह?

पिताजी! हमलोग जब यहाँसे बिदा हो कर उनके डेरेपर गये, तब आभा नरेशने कई बार बाहर जानेकी चेष्टा की, परन्तु मैंने उन्हें बाहर न जाने दिया। कुछ देरके बाद वहाँ हिंसक मन्त्री अचानक आपहुँचा, और आतेही उसने बकना शुरु किया। यह देख, मैं एक ओर हट गयी। इसी बीचमें आभापति वहाँसे बाहर निकल पड़े। मैंने भी उनके साथ बाहर निकल जानेकी चेष्टा की, परन्तु हिंसक मन्त्रीने मुझे रोक लिया। यदि उस समय मैं लज्जाके फेरमें न पड़ जाती, तो यह घटना कदापि नहीं घटती। खैर, उनके चले जानेके बाद यह कोढ़ी पुरुष पति बननेकी इच्छासे मेरे पास आया और तरह-तरहकी बातें बनाने लगा। मैंने इसकी बातोंपर जब ध्यान न दिया तब धायने आकर हो हल्ला मचाया और सबलोग मुझे विषकन्या कहने लगे। कनकध्वज तो पहलेहीसे कोढ़ी था। मुझे तो मालूम

होता है कि इन लोगोंने पहलेहीसे कोई षड्यन्त्र कर रक्खा था। पिताजी! यह सब बातें मैं अक्षरशः सत्य कहती हूँ। मैं इस कोढ़ीको तो पहचानती भी नहीं। मेरे पति तो आभानरेश हैं। सिंहल नरेशने आपको धोखा दिया है और मुझे व्यर्थही परेशान किया है। यह सब बातें मैं सत्य कह रही हूँ, इसपर भी आपको विश्वास न हो, तो आप जो चाहें सो कर सकते हैं। पुत्रीका भाग्य तो पिताके हाथमें रहता है, आप मुझे जो आज्ञा देंगे, वही मुझे करना पड़ेगा। किन्तु इन धूर्तोंके वचनपर आपको विश्वास न करना चाहिये। मेरा तो कथन मात्रही एक उपाय है। यदि आप मुझपर कोप करेंगे, और मेरी बातोंपर विश्वास न करेंगे, तो आपसे मेरा कोई जोर नहीं है। परन्तु मैं आपसे अनुरोध करती हूँ, कि आप जो कुछ करें, वह अच्छी तरह सोच-समझ कर ही करें; जिससे आपके गुणगणकी वृद्धि हो और भविष्यमें आपको पश्चात्ताप न करना पड़े। बस, यही मेरा अन्तिम निवेदन है।

प्रेमलालच्छीका यह वृत्तान्त सुनकर, मन्त्रीने राजासे कहा,—"हे स्वामिन्! मुझे तो राजपुत्रीकी सारी बातें सत्य मालूम हो रही हैं। निःसन्देह, यह कोढ़ी इसका पति नहीं है। अब प्रेमलाको महलमेंही रहने दीजिये और

एक आदमीको आभानगरी भेजकर जाँच कराइये। यदि वहाँपर राजा चन्द होंगे, तो उनसे पूछने पर इस रहस्यका पूरा पता आसानीसे मिल जायगा। जब तक सच्ची बातोंका पता न लग सके, तब तक प्रेमलाको किसी प्रकारका दण्ड देना बहुतही अनुचित होगा।"

राजाने कहा,—"मुझे भी प्रेमलाकी बातें सुनकर ऐसाही मालूम हो रहा है, कि हमलोगोंके साथ कपट किया गया है। परन्तु इस समय प्रेमलाको मैं अपने यहाँ रखनेको तैयार नहीं हूँ, इसलिये जब तक हमलोगोंकी जाँच पूरी न हो, तब तक आप उसे अपने यहाँ रखिये।" यह सुन कर मन्त्री प्रेमलाको अपने घर ले गया। तदनन्तर उसे खिलाया-पिलाया, जब वह शान्त हुई तब मन्त्रीने उससे कहा,—"देखो बेटी! जिसका रक्षक ईश्वर होता है उसका कोई भी कुछ नहीं कर सकता। तुम्हारी अशुभ घड़ी टल गयी। अब तो मंगलमय प्रभुकी दयासे सब मंगल ही होगा। मैं तेरे पतिकी खोज कराकर महाराजकी अप्रसन्नता शीघ्रही दूर कराऊँगा। तुझे अब किसी बातकी चिन्ता न करनी चाहिये।" मन्त्रीकी इस सान्त्वनासे प्रेमलाको बहुतही शान्ति मिली और वह कुछ समयके लिये अपना सारा दुःख भूल गयी।

राजा मकरध्वज शामके समय अपनी राज-सभामें बैठा करते थे। इसी समय मन्त्रीने अवसर देखकर राजासे कहा,—"महाराज! आपको स्मरण होगा कि राज-कुमारीका ब्याह स्थिर करनेके लिये हमलोगोंने चार मन्त्रियोंको सिंहलपुरी भेजा था। उन्होंने वापस आनेपर कुमार कनकध्वजके रूपकी बड़ी प्रशंसा की थी। जरा उन्हें भी बुलाकर पूछना चाहिये, कि उन्होंने कुमारको देखा था, या ऐसे ही आकर उसकी प्रशंसा कर दी थी, क्योंकि कुमारका कोढ़ बहुतही पुराना मालूम हो रहा है, इसलिये हमलोगोंको इस विषयमें अवश्यही जाँच-पड़ताल करानी चाहिये।" यह सुनकर राजाने मन्त्रीसे कहा,—"हाथके कंगनको आरसी क्या? इसकी जाँच तो इसी समय की जा सकती है। उन्हें इसी समय बुलाकर सारी बातें पूछ लीजिये।"

राजाकी आज्ञा मिलतेही सुबुद्धिने उन चारों मन्त्रियोंको बुला भेजा। उनके आतेही राजाने पूछा कि,—"आपलोग जब राज-कन्याका ब्याह करनेके लिये सिंहलपुरी गये थे, तब आपने कुमार कनकध्वजको देखा था या नहीं? इस समय मैं सच्ची बात सुनना चाहता हूँ। यदि आप लोग झूठ बोलकर मुझे धोका देनेकी चेष्टा करेंगे, तो इसके लिये मैं अवश्यही कठोर-से-कठोर दण्ड दूँगा।"

राजाकी यह बात सुनकर मन्त्रियोंके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगी और वे एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। महाराज जिसकी ओर देखते, वही अपने किसी संगीकी ओर संकेत करके पहले उससे पूछनेको कहता। सुबुद्धिने उनकी यह अवस्था देखकर महाराजके कानमें कहा,—"राजन्! मुझे तो कुछ दालमें काला मालूम हो रहा है। यह सभी पहले बोलनेसे डरते है, इसलिये इन चारोंको अलग-अलग एकान्तमें बुलाकर पूछना चाहिये, जिससे सारा रहस्य मालूम हो जाय।"

सुबुद्धिकी यह बात राजाको पसन्द आगयी इसलिये उनमेंसे एक मन्त्रीको एकान्तमें बुलाकर, उससे सच्चा हाल कहनेको कहा। उसने हाथ जोड़ते हुए कहा,—'महाराज! मैंने आपका नमक खाया है, इसलिये आपके सामने कदापि झूठ नहीं बोलूँगा। मुझसे आपके कार्यमें अवश्यही गलती हुई है। जिस समय सिंहलपुरीमें सब लोग कुमारको देखने और व्याहकी बातचीत करने जा रहे थे, उस समय मुझे खयाल आया, कि मैं अपनी अँगुठी डेरेपर भूल आया हूँ, इसलिये मैं उसे लेने चला गया और इसी बीचमें इन तीनोंने कुमारको देखकर व्याह पक्का कर लिया। न तो मैंने अपनी आँखोंसे कुमारको ही देखा, न मैंने बातचीत करनेमें ही

कोई भाग लिया है इसलिये मैं अपना अपराध स्वीकार कर आपसे क्षमा प्रार्थना करता हूँ ।”

मन्त्रीकी यह बातें सुनकर राजा समझ गये कि और बातें चाहे सच हो या झूठ हों ; किन्तु यह तो निर्विवाद है कि इसने वरको हरगीज नहीं देखा है । अब देखना चाहिये कि दूसरा मन्त्री क्या कहता है ?

इसी समय दूसरे मन्त्रीको भी एकान्तमें बुलाकर उससे पूछा गया तो उसने कहा,—“राजन् ! साँप बाहरसे भले ही टेढ़ा होकर चले, किन्तु जब वह बिलके पास आता है, तब सीधा हो जाता है । उसी तरह मैं भी आपके समक्ष सत्यतापूर्वक सारी बातें कहूँगा । महाराज ! सत्य बात तो यह है कि जिस दिन हमलोग ब्याहकी बातचीत करने गये, उसके पहले दिन मैंने कुछ अधिक भोजन कर लिया था, जिससे मुझे अजीर्णकी शिकायत हो गयी और उसी समय मुझे देह-चिन्ताकी हाजत मालूम हुई, इससे मैं वहाँसे उठकर बाहर चला आया और पीछेसे इन तीन जनोंने ब्याह पक्का कर लियाँ । वर काला था या गोरा—मैं कुछ भी नहीं उसे देखनेकी जो मेरी लालसा थी वह भी ।”

इस मन्त्रीकी बातोंसे राजाको

गया कि यह झुठ बोल रहा है। इसने भी कुमारको नहीं देखा है, पर यह अपना दोष छिपानेके लिये ही मनगढ़न्त कहानी सुना रहा है।

तदनन्तर तीसरे मन्त्रीको बुलाया गया। उसने कहा,—"महाराज! व्याह पक्का करते समय वर काना है या कूबड़ा, यह मैंने नहीं देखा, परन्तु इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, क्यों कि उस समय सिंहलनरेशका एक भानजा नराज होकर कहीं भगा जा रहा था, इसलिये सब लोगोंने मुझे उसको मनाने भेज दिया। मैं उधर गया और इधर तीन जनोंने व्याह पक्का कर लिया। यदि उस समय मैं वहाँ उपस्थित रहता, तो वरको अवश्यही देखता, पर क्या किया जाये? मुझसे यह गलती अवश्यही हुई है पर इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है।

यह सुनकर राजा अपने मनमें सोचने लगे कि,—"इसने वरको नहीं देखा है, और यह भी अपना अपराध छिपानेके लियेही इधर उधरकी बातें बना रहा है, इसलिये अब चौथेको बुलाकर पूछना चाहिये कि वह क्या कहताहै?" कुछही समयमें उसे बुलाकर राजाने कहा,—"महाशय! अब आपकी पारी है। याद रखिये, यदि झूठ कहियेगा, तो उसका दण्ड आपहीको भोगना पड़ेगा।"

यह सुन कर मन्त्रीने कहा,—"राजन् ! झूठ अधिक समय तक नहीं चल सकता, इसलिये मैं सत्य ही कहूँगा। झूठ कह कर दण्डित होनेकी अपेक्षा सत्य कह कर दण्डित होना मैं अच्छा समझता हूँ। सच्ची बात तो यह है कि सिंहलनरेश किसीतरह कुमारका विवाह करनेको राजी नहीं होते थे, परन्तु हिंसक मन्त्रीने अपनी ओरसे ब्याह पक्का कर लिया। इसके बाद जब हमलोगोंने वर देखना चाहा, तब वह तरह तरहके बहाने-बाजी करने लगा। उसने कहा कि कुमार तो अपने ननिहाल गये हैं और वे इस समय वहाँसे नहीं आ सकते। जब हमलोगोंने उससे अधिक आग्रह करते हुए कहा कि, बिना कुमारको देखे हमलोग यहाँसे नहीं जा सकेंगे, तब उसने हम चारों आदमियोंको करोड़ करोड़ सोना मोहरें रिश्वतमें दी। लक्ष्मीका प्रलोभन बहुतही बुरा होता है, उसने हमारा मुँह बन्दकर दिया और हमलोग उसीसमय लग्न ठीक कर, बिना वर देखेही वहाँसे चले आये। निःसन्देह, हमलोगोंने आपके साथ घोर विश्वासघात किया है। इसके लिये अब मुझे जो चाहे सो दण्ड दे सकते हैं। इन बातोंमें लेशमात्र भी झूठ नहीं।"

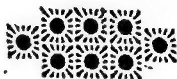
राजाको इस मन्त्रीकी बातें

इसलिये अब उन्हें विश्वास हो गया कि प्रेमला बिलकुल निर्दोष है। जब पुण्यका उदय होता है, तब सभी बातें अनुकूल हो जाया करती हैं। राजाने सुबुद्धिसे कहा,—"मन्त्रीजी! इस मामलेमें तो बड़े-बड़े गुल खिल रहे हैं। हमारे चारों मन्त्री रुपयोंके प्रलोभनमें पड़ गये, इसलिये उन्होंने बिना वर देखे ही ब्याह पक्का कर लिया। तीन आदमी तो समयके फेरमें पड़ कर झूठ बोल रहे हैं और बच्चों कीसी कपोल कल्पित कहानियाँ सुना रहे हैं। परन्तु मैं इनका अधिक अपराध नहीं मानता। इन्होंने जो कुछ किया, वह रुपयेके प्रलोभनमें पड़कर ही किया है। सबसे अधिक कपट तो सिंहलनरेश और उनके मन्त्रीने किया है। उन्होंने जान बूझकर, कोढ़ी होते हुए भी कुमारको छिपाया और उसका सारा दोष मेरी कन्याके शिरपर मढ़नेकी चेष्टा की है, इसलिये अपने मन्त्रियोंको तो मैं छोड़ देना चाहता हूँ, पर सिंहलनरेश आदिके लिये आपका क्या विचार है?"

सुबुद्धिने कहा,—"सबसे पहले प्रेमलाके असल पतिका पूरा पता लगाना चाहिये। जब तक उसका पता न चलेगा और उसकी भी सब बातें न सुनी जायँगी तब तक इस मामलेका पूरा भण्डा फोड़ करने

हो सकेगा ? इसलिये उससमय तक सिंहलनरेशको सपरिवार कारागारमें रखना चाहिये ; क्योंकि इन लोगोंका अपराध कोई मामूली नहीं है ।"

राजा मकरध्वजको मन्त्रीकी यह बातें पसन्द आ गयी । दोनों जनोंमें कुछ गुप्त मन्त्रणा हुई और तदनुसार हिंसक मन्त्री तथा सिंहल नरेशको परिवारके सहित भोजनके लिये निमन्त्रण दिया गया । निमन्त्रण स्वीकार कर, वे सब लोग जब भोजन करने आये, तब राजा मकरध्वजने सिंहल नरेश, उनकी रानी, कुमार कनकध्वज, हिंसक मन्त्री और कपिला धायको गिरफ्तार करवा लिया और बारातके शेष सभी आदमियोंको सिंहलपुरी वापस भेज दिया । अब वे पाँचों जन विमलापुरीके कारावासमें अपना कर्म-दण्ड भोगने लगे । उन्हें अपने दुष्कर्मके लिये बहुतही पश्चात्ताप हो रहा था, परन्तु उससे अब कोई लाभ न था।



तेरहवाँ परिच्छेद



आभानरेशकी खोज



प्रेमलाकी निर्दोषिता प्रमाणित हो जाने पर राजा मकरध्वज आभानरेशकी खोज कराने लगे। इसके लिये उन्होंने एक बड़ी विशाल दानशाला बनवाई और उसमें प्रेमलालच्छीको अधिकारिणी बनाकर कहा कि,—"प्यारी बेटी! सुनो, यहाँपर जितने मुसाफिर आया करें उन सभीको अन्न-वस्त्र देकर, उनसे आभानगरीका समाचार पूछ लिया करो, यदि कोई कुछ समाचार बतलाये तो तुरन्त आकर मुझसे सूचित कर देना।"

पिताकी इस आज्ञानुसार प्रेमलालच्छी दान-शालामें बैठकर अतिथि अभ्यागतोंको निरन्तर दान देती और उनसे आभानगरीका समाचार पूछती। प्रायः सभी मुसाफिरोंसे वह प्रश्न किया करती कि,—"आपलोग

देशविदेशमें घूमते हैं तो पूर्व दिशामें क्या कहीं आपने आभा नामक नगरी देखी है ? वहाँके राजा चन्दका नाम आपने क्या कभी सुना है ?" अधिकांश मुसाफिरोंकी ओरसे इसका उत्तर निराशाजनकही मिलता था। कोई कहता—"हमलोग कभी उस ओर गये ही नहीं।" कोई कहता,—"हमने आभा नगरीका नाम तक नहीं सुना है।" कोई कहता—"हम नहीं जानते कि राजा चन्द कौन हैं और वे कहाँ रहते हैं।"

इसी तरहके प्रश्नोत्तर सुनकर प्रेमला उदास बन जाती। एकान्तमें बैठ कर आँसू बहाती और अन्तमें शान्त हो जाती। इसके सिवा वह और करही क्या सकती थी ? पतिका पता लगानेका और कोई उपाय भी तो नहीं था, इसलिये वह स्वयं कलेजा थामकर रह जाती परन्तु अपने दुःखका हाल किसीसे कुछ भी नहीं कहती।

कुछ समयके पश्चात् एकदिन विमलापुरीके उद्यानमें जंघाचरण मुनिका आगमन हुआ। वनपाल द्वारा यह समाचार मिलतेही राजा मकरध्वज, प्रेमला और अपने परिवारको साथ लेकर मुनिराजकी वन्दना क गये। अनेक नगर निवासी भी उनके साथ हो

मुनिराजको वन्दनाकर सब लोग यथास्थान बैठ गये। तदनन्तर मुनिराजने धर्मोपदेश दिया। उसे सुनकर अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोधकी प्राप्ति हुई और उन्होंने उसी समय गुरु महाराजके समक्ष अनेक प्रकारके व्रत नियमादि ग्रहण किये। प्रेमला भी शुद्ध समकित धारी श्राविका बन गयी। गुरुके अन्यत्र विहार कर जानेपर सब लोग अपने-अपने घर लौट आये। प्रेमला भी उस दिनसे जिन-वन्दन और पूजनादि धर्मकार्योंमें विशेषरूपसे अनुरक्त रहने लगी। वह निरन्तर नवकार महामन्त्रका जप किया करती और धर्म और पुण्यमय जीवन व्यतीत कर अपनेको धन्य समझने लगी।

कई दिनोंके बाद एकदिन नवकार मन्त्रके प्रभावसे शासन देवताने प्रकट होकर प्रेमलालच्छीसे कहा,—"हे बहिन! तुझे तेरे पति अवश्यही मिलेंगे, परन्तु अभी उनके मिलनेमें बहुत देरी है। ब्याहके दिनसे पूरे सोलह वर्ष होजानेपर उनसे अवश्यही भेंट होगी। तब तक तुझे इसी तरह परमात्माकी भक्तिमें अपना समय बिताना चाहिये और किसी प्रकारकी चिन्ता न करनी चाहिये।"

प्रेमलाने यह समाचार अपने पिता-माताको कह

सुनाया, इससे वे भी कुछ निश्चिन्त हुए । नवकार मन्त्रकी यह प्रत्यक्ष महिमा देखकर, प्रेमलाको उसपर विशेष श्रद्धा हुई और वह पहलेकी अपेक्षा और भी अधिक प्रेमसे उसका जप करने लगी । वह दर्शन और पूजनादि द्वारा जिन चैत्यकी निरंतर भक्ति किया करती और यथाशक्ति तपश्चर्या भी करती ।

एकदिन कहींसे एक योगिनी विचरण करती हुई वहाँ आ पहुँची, उसके हाथमें सुन्दर वीणा थी और वह उसके स्वरसे स्वर मिलाकर गा रही थी । प्रेमलाने उसे अपने पास बुलाकर पूछा,—"भगवती ! आपका वासस्थान कहाँ है ?"

योगिनीने कहा,—"अब तो मैं जहाँ पर रहतीहूँ, वहींपर अपना वासस्थान बना लेती हूँ, पर हाँ, किसी समय मैं पूर्व दिशाके एक देशमें रहा करती थी।"

योगिनीका वेश बहुतही सुन्दर था । गेरुए वस्त्र, गौर वर्ण, चेहरे पर वैराग्यकी
मधुरकण्ठ—इन सबोंसे उसे देखनेवाले
और खिंच जाते थे और उसे श्रद्धा
प्रणाम करने लग जाते थे ।
अपनी वीणापर किसी आदर्श
रही थी । बड़े

पूर्ण होने पर उसने पूछा,—"देवि ! आप यह किसका गुण-गान कर रही हैं ?"

योगिनीने कहा—"पूर्वदेशमें चन्द नामक एक राजा राज्य करते थे । वे एक आदर्श नृपति थे। रूप और गुण सभी बातोंमें वे अद्वितीय थे। उन्हींका मैं अन्न खाती थी और उन्हें प्राणसे भी अधिक चाहती थी । इस समय उनकी विमाताने किसी कारणसे उन्हें मुर्गा बना दिया है, इसलिये दुःखित हो, मैं उस देशको छोड़कर चली आयी हूँ, और अब मैं सर्वत्र घूमती फिरती हूँ, परन्तु कहीं भी उनकासा मनुष्य मुझे दिखायी नहीं दे रहा है । रात दिन मैं उन्हींका गुण-गान किया करती हूँ।"

योगिनीकी यह बातें प्रेमलाको बहुत ही मधुर और प्रिय मालूम हुई । अब वह इसप्रकारकी बातें सुनकर समझ गयी कि, मेरे पतिदेवका पूरा पता मिल रहा है, इसलिये वह योगिनीको लिये हुए राजाके पास पहुँची और उसके द्वारा राजा चन्दके सम्बन्धकी सारी बातें कह सुनायीं ।

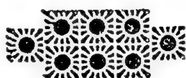
इससे राजा मकरध्वजको बड़ाही आनन्द हुआ। प्रेमलासे कहने लगे,—"प्यारी पुत्री ! निःसन्देह तेरी बातें सच्ची थीं । तेरा पति बड़ाही भाग्यवान मालूम



"देवी ! आप यह किसका गुणगान कर रही हैं ?" (पृष्ठ २००)

होता है, परन्तु उसका देश यहाँसे बहुत दूर है, साथही उसकी माताने उसे मुर्गा बना डाला है, इसलिये अब उससे मिलन होना बहुतही कठिन है। तुझे शोकका त्याग कर, धैर्य धारण करना चाहिये। अच्छा समय आनेपर सब कुछ ठीकही होगा।

पिताका यह उपदेश ध्यानपूर्वक सुननेके बाद प्रेमला उस योगिनीको अपने वासस्थानमें लिवा ले गयी और बड़ेही प्रेमपूर्वक उसे भोजन कराया। इसके बाद यथासमय वह अन्यत्र चली गयी और प्रेमला पूर्ववत् पतिको स्मरण करती हुई धर्माराधनमें अपना समय व्यतीत करने लगी।



चौदहवाँ परिच्छेद



वीरमतीका प्रपंच



राजा चन्दको मुर्गा हुए, एक मास व्यतीत हो गया। प्रजा अब उनके दर्शन विना घबड़ा उठी। गुणावली तो माताके भयसे मुर्गेको छिपाकर ही रखती थी। उसे विश्वास हो गया था कि इसबार वीरमतीको अप्रसन्नताका जरासा भी कारण मिल जायगा, तो वह उसे हरगिज जीता न छोड़ेगी। एकदिन बहुतसे नगरनिवासी एकत्र हो मन्त्रीके पास पहुँचे और कहने लगे कि,—"कृपया आज हमें महाराजके दर्शन कराइये, क्योंकि एक मास हुए हमलोगोंने उन्हें नहीं देखा है, इसलिये हमारा चित्त बहुतही व्याकुल हो रहा है। यदि आप महाराजके दर्शन नहीं करायेंगे, तो हमलोग यहाँसे किसी दूसरे देशमें जाकर रहेंगे। शास्त्रकारोंका भी कथन है कि,—"जिसतरह दया रहित धर्म, उत्तम

कुल रहित मनुष्य जन्म, दांत रहित हाथी, मूर्ति रहित मन्दिर, जल रहित सरोवर और नेत्र रहित मुख शोभा नहीं देता, उसीप्रकार विना राजाके राज्यभी शोभा नहीं देता । प्रजाका सारा सुख राजा परही निर्भर रहा करता है । यदि राजा न हो तो फिर नगरमें रहनेसे क्या प्रयोजन ?—जंगलमें ही क्यों नहीं रहा जाये ?"

यह सुनकर मन्त्री नगर-निवासियोंको सान्त्वना देते हुए कहने लगा कि,—"आपलोग किसीतरह चिन्तित न होवें । नगर छोड़कर कहीं अन्यत्र जानेकी जरूरत नहीं । एक मास हुए मैंने भी महाराजको नहीं देखे हैं, इसलिये आपलोगोंकी तरह मैं भी उनके दर्शनके लिये अत्यन्त लालायित हो रहा हूँ । आज मैं राजमाताके पास जाकर अवश्यहीं उनका पता लगाऊँगा और जो समाचार होगा, वह आपलोगोंको सूचित करूँगा । कृपया तब तक आपलोग धीरज रक्खें ।"

इसप्रकार समझा बुझाकर मन्त्रीने प्रजाको तो विदा कर दिया और स्वयं वीरमतीके पास जाकर लोगोंका हाल कहने लगा,—"माताजी ! सारे नगरमें तरह तरहकी अफवाहें उड़ रही हैं । लोग कहते हैं कि महाराजको उनकी माताने छिपा रक्खा है । इसतरह वे कब तक छिपे रह सकते हैं ? आप

मेरी बातोंसे बुरा मालूम हो तो क्षमा करें, किन्तु यह अच्छी तरह समझ रक्खें, कि यह राज-काजका मामला है, बच्चोंका खेल नहीं। महाराजकी अनुपस्थितिसे घोर असन्तोष फैल रहा है। सम्भव है कि किसीदिन सब लोग कुछ तूफान भी कर बैठें। यदि महाराज अधिक समय तक अनुपस्थित रहेंगे, और इसी तरहकी अफवाहें फैलती जायेंगी, तो हमारे शत्रु भी प्रोत्साहित हो उठेंगे। आप राज-माता हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है। कृपया बतलाइये कि महाराज कहाँ हैं और उनसे कब मुलाकात हो सकेगी? यदि महाराज शीघ्रही प्रकट न होंगे, तो समूचे राज्यमें घोर अशान्ति और उथल-पुथल मच जायगी। आप नादान नहीं हैं, यह सब बातें स्वयं समझ सकती हैं। फिर भी समय रहते हुए मैं आपको सूचना दे रहा हूँ, ताकि भविष्यमें आप मुझे किसी तरह दोषित न समझें।"

राजा चन्दका पता लगानेके लिये मन्त्रीने इस प्रकार तरह-तरहकी बातें वीरमतीसे कहीं, परन्तु वीरमती पर इनका जरा भी प्रभाव न पड़ा। उसने मन्त्रीकी सब बातें सुन लेनेके बाद कहा,—"मन्त्रीजी! महाराज का पता तुम मुझसे पूछने आये हो, पर मुझे यह अच्छी तरह मालूम है कि तुमनेही उन्हें मार डाला है। अब

इस अपराधको छिपानेके लिये ही मेरे सामने ऐसी बातें बना रहे हो, परन्तु मुझसे तुम्हारी यह चालाकी न चलेगी। मैं बहुत दिनोंसे यह हाल जान रही थी; पर मैंने आज तक किसीसे कुछ नहीं कहा है। जब आज मैं देखती हूँ, कि तुमही मुझे उलटा पाठ पढ़ाने आये हो, तब मुझे स्पष्ट कहना पड़ता है कि, मेरे प्यारे पुत्रको तुमनेही मार डाला है और अब मेरे समक्ष सत्य-वादी बनने आये हो! यदि मैं बुरी हूँ, तो तुम कहाँके भले आदमी हो? यदि तुम मेरी बुराई करते फिरोगे, तो मैं भी तुम्हें अछूता क्यों छोड़ूँगी? मेरे साथ बुराई करके तुम भी किसी तरहका लाभ नहीं उठा सकोगे।"

वीरमतीकी यह बातें सुनकर मन्त्री स्तम्भित हो गया। उसने कहा,—"माताजी! आप यह क्या कह रही हैं? आप बूढ़ी हैं, जरा विचार कर मुँहसे कोई बात निकालिये। यह आप किस आधारपर कह रही हैं कि मैंने ही उनकी हत्या की है? ... उन्होंने मेरा क्या बिगाड़ा था सो मैं उन्हें ... ऐसी मिथ्या बातें करनेसे कोई लाभ ... श्वरका भी डर रखिये। मैं तो ... पूछने आया था, परन्तु ... यह कोई हँसी ...

तरह मुझे मूर्ख बना रही हैं। भला, आपही बतलाइये कि मैं महाराजको क्यों और किस प्रकार मार सकता हूँ? आपके पास इसका क्या प्रमाण है?"

वीरमतीने मन्त्रीको फुसलाते हुए कहा,—"देखिये, मन्त्रीजी! आप चतुर होकर भी एक मामूलीसी बात नहीं समझ पाते। अब तो चन्दकी चर्चा करनाही बेकार है। यदि आप उसकी बातें मेरे सामने फिर करेंगे, तो इसका नतीजा बहुतही बुरा होगा। हाँ, यदि आप मुझसे सीधी तरह पूछें तो मैं आपको सच्चा हाल बतला सकती हूँ। किन्तु यह भी खयाल रखियेगा कि अपने घरका भेद आपहीको कह रही हूँ, इसलिये किसीसे ज़ाहिर न करना। सच्ची बाततो यह है, कि राजा चन्द समय विद्याधरकी कोई विद्या सिद्ध कर रहे हैं, इसलिये वे प्रकट नहीं हो सकते। अब आपको उनका नाम भी न लेना चाहिये। उनकी जगह मुझे ही अपना राजा समझिये और मैं जो कहूँ सो करते चलिये। यदि आप इसमें कोई बाधा न देंगे, तो मैं आपहीको मन्त्रीके पदपर रहने दूँगी, नहीं तो किसी दूसरेकोही अपना मन्त्री बनाऊँगी। आप चतुर हैं, इसलिये मुझे आशा है कि आप इतनेहीमें सारी बातें समझ जायेंगे। जब मैं राज्य-भार सम्हालनेको तैयार हूँ, तब किसीको कुछ

कहने सुननेका अधिकार नहीं है। प्रजाको भी इससे सन्तोष हो जायगा और बिना राजाका राज्य न कहलायगा। यदि आप मेरी बात न मानेंगे और मेरे इस काममें बाधा देंगे, तो आपको भी इसका बुरा फल भोगना पड़ेगा। फिर मुझे कोई दोष न देना।"

वीरमतीकी नीच प्रकृतिसे मन्त्री भली भाँति परिचित था, इसलिये उसने देखा कि वीरमतीसे मिलकर चलनेमेंही कल्याण है। इसकी बातोंका विरोध करने पर, सम्भव है कि यह इसीतरहके मिथ्या दोषारोपणकर, मेरा प्राणही ले ले। यह सोचते हुए उसने वीरमतीकी बातें स्वीकार कर लीं। मन्त्रीको इस तरह अपने पक्षमें आया देख, वीरमतीको बड़ाही आनन्द हुआ। वह कहने लगी कि,—"मन्त्रीजी! अब आप नगरमें डुग्गी बजवा दीजिये, कि आजसे चन्द नरेशका राजपाट वीरमतीने ग्रहण कर लिया है, इसलिये सब लोगोंको अब उन्हींकी आज्ञा माननी चाहिये, जो उनकी आज्ञा न मानेगा, वह नगरसे बाहर निकाल दिया जायगा। जिसे आभापुरी भली न मालूम होती हो और यमपुरी पसन्द हो, वही उनकी आज्ञा उल्लंघन करनेका साहस करे।"

मन्त्रीने शीघ्रही वीरमतीकी आज्ञा कार्यरूपमें परिणत क

दी। नगर-निवासी तो यह डुग्गी सुनकर बड़ेही आश्चर्यमें पड़ गये। वे कहने लगे कि,—"संसारमें स्त्रियोंपर पुरुषोंको हुक्मत करते देखा और सुना है, किन्तु पुरुषोंपर स्त्रियोंके हुक्मतकी यह बात विल्कुल नयी है। शायद आभापुरीको छोड़कर और किसी जगह ऐसा न होगा। यह तो 'त्रियाराज्य' हो गया। कोई सुनेगा तो यही कहेगा कि आभापुरीमें कोई पुरुष न होंगे, तभी तो एक स्त्रीने राज्यका शासन-भार ग्रहण किया है।"

चारों ओर इसीकी चर्चा हो रही थी। सब लोग इस व्यवस्थासे वहुत दुःखी थे, परन्तु वीरमतीके भयसे कोई उसका विरोध नहीं कर सकता था। वीरमती विना किसी विघ्न-बाधाके राज्य-शासन करने लगी। इससे उसको बड़ाही गर्व हो गया। राज्यके बड़े-बड़े सरदार भी उसकी आज्ञा मानने लगे। कुछ दिनोंमें तो चन्दका नाम लेना, कालको बुलौवा देना माना जाने लगा। रानीजी साहब मंत्रीपर पूर्णरूपसे प्रसन्न रहा करती थीं, क्योंकि वे उनकी हाँ में हाँ मिलाया करते थे, रानीजी जो राग गातीं, वही मन्त्रीजी वजाते। कुछ दिनोंके पश्चात् उन्होंने भी राजा चन्दका नाम लेना छोड़ दिया।

संसारका यही नियम है कि जिसका खाओ उसीकी कहो। ठकुर-सुहाती सभीको प्रिय मालूम होती

है। मन्त्रीने एकदिन वीरमतीसे कहा,—"महारानी ! आपका शासन करनेका ढंग बहुतही उत्तम है। आपके कार्यमें ऐसी सफलता तो राजा चन्द्रको भी न मिली थी। राज्यमें चोरीका कहीं नाम-निशानभी नहीं है। कोई किसीकी वस्तुको हाथ नहीं लगाता। बाघ और बकरी दोनों एक घाटमें पानी पीती हैं। यदि इस समय आप चमड़ेका सिक्का चलायें तो वह भी चल सकता है। किसीकी शक्ति नहीं जो आपके कार्यका विरोध कर सके। यहाँपर अनेक राजा हो चुके हैं। मैंने भी अनेक राजाओंको देखे हैं और फिर भी देखूँगा परन्तु आपकी तुलनामें कोई नहीं ठहर सकेगा। यह ठीक है कि आप अबला हैं, परन्तु इससे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। पृथ्वी भी तो अबला जातिके ही अन्तर्गत है। वृद्धावस्थामें कमर टेढ़ी हो जानेसे लोग दूसरोंके सामने झुकते हैं, परन्तु आपने तो दूसरोंको ही अपने सामने झुकाया है, इसलिये आपकी वृद्धावस्था भी धन्य है।"

मन्त्रीकी इस खुशामदसे वीरमती मन-ही-मन बड़ीही प्रसन्न हुई, किन्तु वह निगोड़ी अपने मनमें ज़रा भी लज्जित नहीं हुई। बल्कि उसने मन्त्रीकी पीठ ठोकते हुए कहा,—"मन्त्रीजी ! मैं आपकी सेवाओंसे बहुतही प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ। यदि आप किसी समय मेरे

योग्य कोई कार्य वतलायेंगे, तो मैं उसे करनेसे इन्कार नहीं करूँगी।" यह सुनकर मन्त्रीने अपने मनमें सोचा कि—"चलो, यह तो वहुतही अच्छा हुआ कि एक शेरनी अपनी वलाई—चौकिदारी कर रही है!"

इसी समय मन्त्रीकी दृष्टि मुर्गेके पींजड़े पर आ पड़ी। उसने वीरमतीसे पूछा,—"रानीजी! आपने यह क्या किया है? मुर्गेको पींजड़ेमें क्यों बन्द कर रक्खा है? यह कोई देव तो नहीं है, जिसे आपने वशमें कर इस तरह पींजड़ेमें रख छोड़ा हो?"

वीरमतीने कहा,—"नहीं, यह कोई देव नहीं है। बहूका जी बहलानेके लिये इसे मोल लिया गया है। बेचारा वहुत दुःख पा रहा था। मुझे दया आगयी इसलिये ले लिया है। जब तक इसका आवदाना होगा, तब तक यह भी खायगा। इसका खाया-पिया अकारथ नहीं जाता, क्योंकि यह मुझे प्रभु-भजनके लिये प्रातःकालमें जल्दी उठा दिया करता है।"

मन्त्रीने कहा,—"आपका कहना ठीक है, परन्तु मुझे तो यह मोल लिया हुआ नहीं मालूम होता, क्योंकि इसका खर्च दफ्तरमें नहीं लिखा गया है। आपके हिसाब-किताबकी कोई वात मुझसे छिपी तो है नहीं।"

वीरमतीने जरा कर्कश स्वरमें कहा,—"मन्त्रीजी!

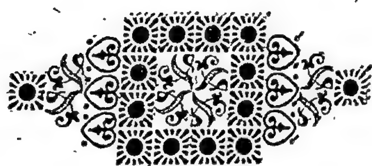
एक छोटीसी बातके लिये आप बारंबार मुझसे प्रश्न क्यों कर रहे हैं ? मैंने तो इसे एक जेवर देकर खरीदा था, इसीलिये इसका खर्च दफ्तरमें नहीं लिखा गया होगा । मुझे ऐसी बातें भली नहीं मालूम होतीं । याद रखिये, यदि अब इसके विषयमें आप एक शब्द भी पूछेंगे, तो आपकी अवस्था भी इसी मुर्गेकीसी हो जायगी ।"

मन्त्री यह सुनकर चुप हो गया । अब उसमें एक शब्द भी बोलनेका साहस न रहा । इसी समय उसने देखा, कि महलके भीतरी भागमें गुणावली बैठे रो रही है । मन्त्रीने उसकी ओर ध्यानसे देखा । गुणावली मुँहसे तो कुछ बोल न सकी । किन्तु उसने अपनी हथेलीपर लिखकर मन्त्रीको बतलाया कि यही राजा चन्द हैं । मन्त्री तुरन्त समझ गया, पर वीरमतीसे इस सम्बन्धमें बिना कुछ कहे सुने, वह उससे विदा ग्रहणकर, चुपचाप अपने घर चला आया ।

धीरे-धीरे यह बात चारों ओर फैल गयी, कि वीरमतीने राज्यके लोभमें पड़कर राजा चन्दको मुर्गा बना दिया है । परन्तु वीरमतीके भयसे किसीको कुछ कहने सुननेका साहस न पड़ता था । उसकी अपूर्व विद्याओंका हाल सुनकर कई राजाओंने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली । सभी इस समय उससे

डरते थे और उसके कृपा-पात्र बननेमेंही अपना कल्याण समझते थे ।

परन्तु भली-बुरी सभी बातोंका अपवाद हुआही करता है । हेमालयके हेमरथ राजासे चन्दकी पुरानी शत्रुता थी । राजा चन्द कई बार उसे पराजित कर चुके थे, अतः वह मन-ही-मन इसके लिये कुढ़ा करता था और आभानरेशसे बदला लेनेकी इच्छा किया करता था। इस मौकेको उसने उपयुक्त समझा । वीरमतीकी विद्याओंका हाल तो उसने सुनही लिया था, पर इन बातोंको वह कपोल-कल्पित मानता था । वही एक ऐसा व्यक्ति था, जो वीरमतीसे भय न रखते हुए भीतर-ही-भीतर आभा-राज्य हड़पने की तैयारी करने लगा ।



पन्द्रहवाँ परिच्छेद



आभापुरीपर आक्रमण



राजा हेमरथने वीरमतीको एक साधारण स्त्री समझकर, आभापुरीका राज्य हड़प करनेका निश्चय किया। युद्धकी सब तैयारियाँ पूर्ण हो जानेपर उसने वीरमती के पास अपने दूत द्वारा एक पत्र भेजा, जिसमें कटु वचनोंका प्रयोग करते हुए युद्धकी सूचना दी गयी थी।

यथा समय दूत वीरमतीकी राजसभामें उपस्थित हुआ और उसने स्वयं अपने हाथसे वीरमतीको वह पत्र दिया। पत्र पढ़तेही क्रोधके कारण उसके वदनमें मानों आगसी लग गयी। उसने गरज कर कहा,—"हे दूत! तेरे स्वामीने मेरा राज्य लेनेके लिये यहाँ आनेको लिखा है, इसलिये उससे कह देना कि वीरमतीने तुझे शीघ्रही बुलाया है। यदि तू अपने को मनुष्य मानता हो, यदि तूने रानीके पेटसे जन्म लिया हो, यदि तूने

माताका दूध पिया हो और यदि तू अपनेको क्षत्रिय-पुत्र कहता हो, तो अब एक क्षणका भी विलम्ब मत करना और यहाँ आकर अपनी बहादुरी दिखाना। जब उसे बुरी तरह हार मानकर यहाँसे भागना पड़ा था, तब उसकी क्या अवस्था हुई थी? इससे मालूम होता है कि वह अपने पिछले दिन भूल गया है, परन्तु मैं अभी उन दिनोंको नहीं भूली हूँ। उसने अभी मुझे नहीं देखा है, इसीलिये उसे आभापुरीका राज्य लेना सहज मालूम हो रहा है, परन्तु जब वह यहाँ आयेगा, तब उसे सारा हाल मालूम हो जायगा। उसे आभानगरी लेनेका हौंसला हुआ है, परन्तु मैं सचमुचही उसका हेमालय छीन लूँगी। चिउँटीको जब मरना होता है, तभी उनके पंख निकलते हैं। मुझे मालूम होता है कि उसका कालही उसे यहाँ आनेके लिये उत्साहित कर रहा है।"

इस प्रकार कटु वचन सुनाते हुए वीरमतीने दूतको विदा दिया। तदनन्तर दूतने सारा हाल राजाके पास जाकर कहा साथही उसने अपनी ओरसे सलाह भी दी कि यह स्त्री योग्य नहीं है, परन्तु अभिमानी हेमरथने उसकी ातोंपर ध्यान न दे आक्रमणकी तैयारी की। शीघ्रही वह हाथी घोड़े और रथोंके साथ एक बहुत बड़ी सेना लेकर आभा नगरीके समीप आ पहुँचा। वह सोचता था कि एक स्त्री

के हाथसे आभा नगरीका राज्य छीन लेना कौनसा मुश्किल काम है ? यह काम तो अभी देखते-ही-देखते हो जायगा, उसमें ऐसी सामर्थ्यताही कहाँ है, जो वह मेरे सामने आकर युद्ध करे। यह सोचकर वह आभानगरी तक तो बड़ी तेजीसे आया, परन्तु वहाँ पहुँचनेपर उसके मनकी बातें मनमेंही रह गयीं और लेनेके देने पड़ गये।

वीरमतीको हेमरथकी गति-विधिका समाचार, उसकी युद्ध-यात्राके समयसे ही मिलने लगा था, परन्तु उसने उसकी परवाह न की थी। जब वह बहुतही नजदीक आ पहुँचा, तब उसने मन्त्रीको बुलाकर कहा कि,—"मन्त्रीजी ! आपने यह सुनाही होगा कि हेमरथ आभा नगरीके समीप आ पहुँचा है। वह एक सामान्य श्रेणिका राजा है, इसलिये उससे युद्ध करनेके लिये, मैं स्वयं युद्ध-क्षेत्रमें जाना पसन्द नहीं करती। इसमें मुझे अपनी अप्रतिष्ठा मालूम होती है। आपही सारे सैन्यको लेकर युद्ध-क्षेत्रमें जाइये और उसे चारों ओरसे घेरकर उसकी धृष्टताके लिये उसे कठोर दण्ड दीजिये। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि विजय-लक्ष्मी आपहीको वरण करेगी। आपका एक बालभी बाँका न होगा। किसी तरहकी चिन्ता न करें।

वीरमतीका यह आदेश सुनकर,

आया और समस्त सरदारोंको एकत्र कर वीरमती की आज्ञा कह सुनायी। साथही उनसे कहा,—"राजा हेमरथ आभानगरीके पास आ पहुँचा है, इसलिये यदि हमलोग उससे युद्ध न करेंगे, तो वह आभा नगरी पर अधिकार कर लेगा और हमलोग संकटमें पड़ जायेंगे। क्या हमलोग इस समय अपनी मातृ-भूमिकी रक्षा न करेंगे? क्या हमलोग इसी तरह हाथपर हाथ रखकर बैठे रहेंगे और क्षत्रियोंके नामको कलंकित करेंगे? नहीं नहीं, ऐसा कदापि न होसकेगा। यदि हमारे जी जी वह आभानगरी पर अधिकार कर लेगा तो फि हमलोग संसारमें कैसे मुँह दिखा सकेंगे? इस विषय हमें वीरमतीकी ओर नहीं, वल्कि अपने कुलकी ओर देखना चाहिये। यदि राजा चन्द मुर्गा वन गये क्या हुआ? उनसे अपनी सेवाएँ छिपी नहीं सकतीं। हमें तो इस समय अपनी मातृ-भूमि आभा नगरीकी ओर देखना है। उसकी रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य है। उठो, वीर वहादुरों! कमर बाँध कर शत्रुओंका मान-मर्दन करनेके लिये तैयार हो जाओ!"

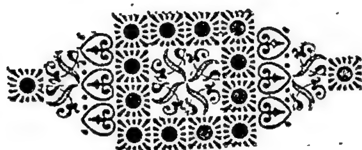
मन्त्रीके यह उत्साहवर्धक वचन सुनकर योद्धाओंकी भुजाएँ फड़क उठीं। वे युद्ध-यात्राके लिये उसी क्षण

तैयार हो गये। सारा सैन्य एकत्र होनेपर मन्त्रीने शीघ्रही रण-भेरियोंके साथ युद्धके लिये प्रस्थान किया।

यथासमय दोनों दलोंकी भेट हुई। भयंकर युद्ध आरंभ हुआ। सिपाहियोंसे सिपाही, घुड़सवारोंसे घुड़सवार, हाथियोंसे हाथी और रथसे रथ भिड़ गये। बिजलीकी तरह तलवारें चमकने लगीं। घण्टों तक खूब जमकर लड़ाई हुई। कायरोंने पीठ दिखाकर प्राण बचाया। वीरोंने अपनी तलवारको शत्रुओंका रक्त पिलाकर अन्तमें वीरगति प्राप्त की। समूची रण-भूमि योद्धा और हाथी घोड़ोंकी लाशोंसे व्याप्त हो गयी। राजा हेमरथको तो पराया राज्य लेनेका हौसला था, परन्तु आभानगरीके वीरोंको अपनी मातृभूमिकी रक्षा करनी थी। उधर प्रलोभन था, इधर प्रतिष्ठाका प्रश्न था। यह एक पुरानी कहावत है कि "यतोधर्मस्ततो जयः"। आभानगरीके वीरोंका उद्देश अच्छा था, इसलिये उनमें उत्साह और जोशकी मात्रा भी अधिक थी। हेमरथकी सेना इन वीरोंकेसामने अधिक समय तक न ठहर सकी। उसके अनेक सैनिक भाग खड़े हुए और अनेक रणमें मारे गये। पहलेकी तरह इस वार भी हेमरथकी घोर पराजय हुई। अन्तमें मन्त्रीके आदेशसे वह जीताही पकड़ कर बन्दी बना लिया गया।

इस प्रकार हेमरथपर विजय प्राप्त कर विजय डंका बजवातेहुए मन्त्रीने अपने शेष सरदारोंके साथ नगर प्रवेश किया। हेमरथ वन्दीके रूपमें अब तक साथही था। शीघ्रही वह वीरमतीके सामने उपस्थित किया गया। उसे देखतेही वीरमतीने फटकारते हुए कहा "हेरण-वीर! तूझे अपने बलका इतना घमंड क्यों हो गया था? तू तो सदासे नीचा देखता आया है। फिर तूने आभानगरीपर आक्रमण करनेकी धृष्टता क्यों की? क्या तूने आभानगरी का मैदान पहले न देखा था, जो यहाँ आनेका दुःसाहस किया है? तू मुझे नारी समझकर, मुझसे लड़ने आया था, परन्तु मुझसे लड़ना तो दूर रहा, मेरे मन्त्री और सरदारोंनेही तुझे पराजित कर डाला। बोल, अब बड़ा तू है या मैं हूँ? तुझे यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि यदि तू हाथी है, तो मैं सिंह हूँ। यदि तू कबूतर है, तो मैं बाज हूँ। अब यदि तू भूलकर भी मेरे राज्यकी सीमामें पैर रक्खेगा, तो मैं कदापि सहन न करूँगी। बारबार अपमानित होने पर भी तुझे यहाँ आनेमें जरा भी लज्जा नहीं मालूम होती? तू अपनी कमरमें तलवार बांधता है या खिलौना? चन्दने कितनीबार तुझे जीवन-दान दिया था। क्या तू उसी उपकारका बदला देनेकेलिये यहाँपर आया है? क्या सच्चे क्षत्रीयका यही कर्त्तव्य है।"

इस प्रकार वीरमतीने हेमरथको बहुत भर्त्सना की। उसकी इच्छा थी कि अब सदाके लिये उसे कैदखानेमें डालकर सड़ाया जाये, परन्तु मन्त्रीने इसे उचित न समझा। उसने वीरमतीको समझाया कि किसीको सदाके लिये शत्रु बनाकर रखनेकी अपेक्षा, उसे मित्र बना लेना अच्छा है। मन्त्रीके आग्रह करनेपर वीरमतीने उसकी बात मान ली। मन्त्रीने उसी समय हेमरथको बन्धन-मुक्त कर, उसे बहुमूल्य वस्त्रादि दे, सम्मानित किया। इससे हेमरथका सारा ईर्षा-द्वेष नष्ट हो गया, और उसने वीरमतीकी अधीनता स्वीकारकर, सदा उसके आदेशानुसार चलनेकी प्रतिज्ञा की। वीरमतीने भी इससे प्रसन्न हो, उसका सारा राज्य लौटा दिया और सम्मानपूर्वक उसे उसके नगर भेज दिया।



सोलहवाँ परिच्छेद



नटी शिवमाला और राजा चन्द



एकदिन शिवकुमार नामक प्रसिद्ध नट आभानगरीमें आया। उसके साथ शिवमाला नामक उसकी पुत्री और पाँच सौ अन्यान्य नट थे। यह सभी एक नम्बरके खिलाड़ी और अपने काममें पूरे उस्ताद थे। शिवकुमारने राज-सभामें उपस्थित हो, रानी वीरमतीको प्रणाम कर, अपने खेल दिखानेकी आज्ञा माँगी। वीरमतीने कहा,

"हे नटराज! तुम्हारा क्या नाम है और तुम हाँसे आ रहे हो?"

शिवकुमारने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा,—"महारानी! मेरा नाम शिवकुमार है। मैं उत्तर दिशासे अनेक राजाओंका मनोरञ्जन कर, विपुल पुरस्कार प्राप्त करता हुआ, यहाँ आया हूँ। आपकी आभानगरी वास्तवमें वैसीही है, जैसी मैंने इसकी प्रशंसा सुनी थी।

अब आप मुझे अपने खेल दिखानेकी आज्ञा प्रदान करें, ताकि मैं आपको और आपके सभा-जनोंको प्रसन्न कर अपने दारिद्रसे मुक्त हो सकूँ ।"

रानी वीरमतीने शिवकुमारको अपने खेल दिखानेकी आज्ञा सहर्ष दे दी । शिवकुमारको इससे अत्यन्त आनन्द हुआ । उसने उसी समय अपने समस्त नटोंको तैयार होनेकी आज्ञा दी । आज्ञा मिलतेही नटोंने तरह-तरहके खेल दिखाने आरम्भ किये । बाजोंकी आवाज सुनकर गुणावली भी गोदमें मुर्गेका पींजड़ा लेकर, झरोखेमें आ बैठी । सब नटोंके खेलनेके बाद नटी शिवमाला भी अपना खेल दिखानेको तैयार हुई । उसने सबसे पहले एक बहुत ऊँचा बाँस जमीनपर खड़ा किया । फिर उसे रस्सियों द्वारा चारों ओर इसतरह बाँध दिया, जिससे वह इधर-उधर हिल न सके । तदनन्तर उसने इस बाँसपर एक सुपाड़ी रक्खी और रानीको प्रणामकर राजा चन्दकी जय मनाती हुई वह बाँसपर चढ़ गयी । ऊपर पहुँचने पर बाँसके अग्रभागपर रक्खी हुई सुपाड़ी पर अपनी नाभी रख, वह पेटके बल चारों ओर गोलाकार घूमने लगी । नीचे अनेक नट ढोल बजा रहे थे और अनेक नट उसकी ओर नजर लगाये सावधानीसे खड़े थे । शिवमाला अपने शरीरको कुम्हारके चाककी तरह घुमाते

घुमाते एकबार कलाबाजी खेलकर, उस सुपाड़ीपर अपने मस्तकके बल खड़ी हो गयी। उसका शिर नीचे और पैर उपरकी ओर थे। ठीक जिस तरह मुनि शिर नीचे रखकर काउसग्ग या ध्यान किया करते हैं। इसके बाद फिर उछल कर वह बायें पैरकी ऐड़ीके बल उस सुपाड़ी पर खड़ी हो गयी और इस एकही पैरके सहारे चारों ओर घूम-घूम कर नाच करने लगी। उसका यह नाच सब लोगोंको बहुत ही पसन्द आया और वे मुक्त कण्ठसे उसकी प्रशंसा करने लगे। अन्तमें शिवमालाने पचरंगे पाँच कपड़े लेकर उस बाँसपर खड़े-ही-खड़े एक दूसरेसे गूंथकर उनका एक पचरंगी पुष्प बनाया। इस समय भी न तो उसका बदनही इधर उधर झुका, न उसने फूल बनानेमेंही कोई भूल की। उसकी यह अद्भुत कला देखकर दर्शक मुग्ध हो गये। अपना यह खेल दिखानेके बाद शिवमाला बाँसकी रस्सियोंके सहारे नागिनकी तरह नीचे उतर पड़ी। नीचे उतरते ही उसके पिता और अन्यान्य नटोंने उसे गलेसे लगा लिया और उसकी कला कुशलताके लिये उसकी पीठ ठोक कर उसे शाबाशी दी।

इसके बाद समस्त नट रानी वीरमतीके सम्मुख उपस्थित हुए और ढोल बजाते हुए राजा चन्दकी जय मनाकर उससे ईनाम मांगने लगे। नटोंके मुँहसे राजा

चन्दका नाम सुनकर वीरमतीको बहुतही बुरा मालूम हुआ। उसे तो अपने सामने और कोई दिखायीही न देता था। दूसरेकी प्रशंसा सुनतेही वह ऐड़ीसे लेकर चोटी तक जल उठती थी। बेचारे नटोंको वीरमतीकी इस मनोवृत्तिका पता कहाँ था ? इनाम न मिलने पर, उन्होंने यह समझ लिया कि रानी अभी पूर्णरूपसे प्रसन्न नहीं हुई है इसलिये वे और भी अनेक खेल दिखाने लगे। तदनन्तर वे फिर चन्द राजाकी जय मनाते हुए वीरमतीसे ईनाम मांगने गये, परन्तु इसबार भी वीरमतीने उनकी ओर आंख उठाकर देखा भी नहीं। अन्यान्य दर्शक नटोंके खेलसे बहुतही सन्तुष्ट हुए थे और वे उन्हें दान देनेके लिये उत्सुकहो रहे थे, परन्तु वीरमतीके पहले किसीको कुछ देनेका साहस न पड़ता था, सभी जानते थे कि इससे वीरमती असन्तुष्ट हो जायगी और दान देने-वालेकी बुरी तरह खबर लेगी।

राजा चन्द यद्यपि मुर्गा हो गये थे, परन्तु उनमें अभी सब बातें समझनेकी शक्ति मौजूद थी। वे अपने मनमें कहने लगे,—"यह नट लोग मेरी जय मना रहे हैं, इसीलिये वीरमती इन्हें ईनाम नहीं दे रही है। परन्तु इससे देश विदेशमें बड़ी बदनामी फैलेगी। नटोंको कुछ दे देनेसे वे सर्वत्र जय मनायेंगे, न देनेसे निन्दा

करेंगे, इसलिये इन्हें कुछ अवश्यही देना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने अपने पींजड़ेमें पड़ी हुई सोनेकी रत्न-जड़ित कटोरी, चोंचसे उठाकर नीचे फेंक दी। उसे देखतेही शिवकुमारने तुरन्त उठा ली और इस दानके लिये राजा चन्दकी जय मनाने लगा। ढोल बजाने-वालोंने भी उसका अनुकरण कर राजा चन्दकी जय मनायी। दर्शकोंको इस बातका पता न लगा कि यह दान किसने दिया, न उन्होंने यह जानने की चेष्टाही की। वे तो केवल यही चाहते थे कि पहले कोई दूसरा दे तो हमभी दें, इसलिये शिवकुमारको यह कटोरी मिलते ही, वे भी जी खोलकर मुक्तहस्तसे ईनाम देने लगे। किसीने रुपये पैसे दिये, किसीने वस्त्र दिये और किसीने गहने दिये। शिवकुमारको इससे बहुतही आनन्द हुआ, परन्तु वीरमती क्रोधसे जल उठी। शिवकुमार राजा चन्दकी जय मनाकर, वीरमतीसे विदा ग्रहण कर सदल-बल अपने डेरेपर चला गया, फिर भी वीरमती मन-ही-मन क्रोधसे जलती ही रही।

नटके चले जानेपर वीरमतीका क्रोध ज्वालामुखीकी भाँति फट पड़ा। उसने लाल लाल आँखे निकालकर कहा,—"कौन ऐसा धनी है, जिसने मेरे पहले दान देनेका दुस्साहस किया है? जरा मैं भी उसे देखती तो

अच्छा होता। परन्तु मालूम होता है कि उसका भाग्य प्रबल है, इसीलिये मैं उसे देख नहीं सकी !"

वीरमती जिस समय यह बातें कह रही थी, उस समय राजा चन्दका पींजड़ा उसके पासही रक्खा हुआ था, परन्तु अब तक वह यह न जान सकी थी कि इस मुर्गेनेही पहले दान दिया है। यदि किसी तरह उसे यह बात मालूम हो जाती, तो वह आज हरगिज राजा चन्दको जीता न छोड़ती।

रानी वीरमतीको बेतरह क्रुद्ध देखकर मन्त्रीने उसे शान्त करनेकी चेष्टा की। उसने कहा,—"हे माता ! आपको क्रोध करनेका कोई कारण नहीं है, क्योंकि सबसे पहले दान देनेवालोंने आपका ही यश बढ़ाया है। जो वीर होते हैं, वह युद्ध-क्षेत्रमें राजाके समक्षही अपनी वीरता दिखाते हैं। दानी भी ऐसेही हुआ करते हैं। अपने यशोगान सुनकर उनसे बिना कुछ दिये नहीं रहा जाता। जिन लोगोंने नटोंको आज दान दिया है, वे सब आपकेही पुत्र हैं—आपके प्रजाजन ही हैं। माताके निकट उनका यह कार्य सर्वथा क्षम्यही गिना जाना चाहिये।"

इस तरह मन्त्रीने वीरमतीको बहुतही समझाया, परन्तु उसके समझानेका कोई फल न हुआ। वीर० क्रोध ज्यों-का-त्यों ही बना रहा। कुछ ...

सभा विसर्जन कर वह राजमहलमें गयी और वहाँ सुख-शैय्या पर लेट गयी, परन्तु उसे लेशमात्र भी निद्रा नहीं आयी। वह तो बस, इसी उधेड़-बुनमें लगी थी कि मेरे पहले दान देनेका साहस किसने किया है? वह उसे खोज निकालनेके लिये तरह-तरहकी युक्तियाँ सोचने लगी। सोचते सोचते सवेरा हो गया। सूर्योदय होनेपर मतिहीन वीरमती राज-सभामें आ बैठी। शीघ्रही उसने शिवकुमार नटको बुलाकर पुनः खेल दिखानेकी आज्ञा दी। इससे नटके आनन्दका वारापार न रहा। इनाम पानेकी आशासे शीघ्रही अपने आदमियोंको तैयार कर वह तरह तरहके खेल और भरतादिक नाटक दिखाने लगा। गुणावली भी गोदमें पींजड़ा रख, झरोखेसे सब खेल देख रही थी। खेल समाप्त होने पर पहले दिनकी भाँती वह नट चन्द राजाकी जय मना मनाकर वीरमतीसे इनाम माँगने लगा, परन्तु वीरमती तो चन्दका नाम सुनतेही जल भुन कर खाक हो गयी, इसलिये उसने न तो नटकी प्रशंसाही की, न उसे इनाम ही दिया। बिना उसके दिये अन्यान्य दर्शक भी कुछ देनेका साहस न कर सके। सबलोग मनमें यही सोच रहे थे कि वीरमती आज ऐसा क्यों कर रही है, परन्तु कोई भी बात उनकी समझमें नहीं आती थी। शिवकुमारने चारों ओर आंख

भरी दृष्टि डाली, परन्तु राजा चन्दके विना उसे सारी राज-सभा अलोने भोजन जैसी, हस्ती रहित सैन्य जैसी और पत्र रहित वल्लरी जैसी प्रतीत हुई।

उधर पींजड़ेके अन्दरसे राजा चन्द नटकी यह अवस्था देख रहे थे और नट बारंबार उनकी जय मना रहा था, इसलिये उनसे न रहा गया और उन्होंने कलकी भाँति आज भी एक रत्नजड़ित कटोरी पींजड़ेके अन्दरसे बाहर सरका दी। शिवकुमारने उसे ऊपर-ही-ऊपर ले लिया। वह कम-से-कम एक लाख रुपयेकी होगी। उसे पाकर शिवकुमार राजा चन्दकी जय मनाने लगा। यह देख, शिघ्रही अन्यान्य दर्शकोंने भी रुपये पैसे और गहने-कपड़ोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी। शिवकुमार अपने परिश्रमका समुचित बदला पाकर अपनेको धन्य समझने लगा।

परन्तु दूसरी ओर, चन्दकी यह धृष्टता देखकर वीरमती अपने क्रोधको न सम्हाल सकी। वह हाथमें खड्ग लिये गुणावलीके पास जा पहुँची और मुर्गेको सम्बोधित कर कहने लगी कि,—"हे दुष्ट! अभी भी तुझे लज्जा नहीं आती? तूने मेरे पहले दान क्यों दिया? मुर्गा हो जाने पर भी तू अपनी शरारतसे बाज आता? अच्छा, ले अब इसका फल चखाती अब मैं तुझे हरगिज जीता न छोड़ूँगी।"

यह कह वीरमतीने मुर्गेको दो टूक करनेके लिये खड्ग उठाया, परन्तु गुणावलीने बीचमें ही पड़कर उसका हाथ पकड़ लिया। वह हाथ जोड़ते हुए कहने लगी,—"माताजी! इस तरह क्रोध न कीजिये। इन्हें दान और पुरस्कार की बातोंका ज्ञान कहाँ है? पक्षी इन बातोंमें क्या समझें? पानी पीते-पीते कटोरी नीचे गिर गयी और नटने उसे उठा ली, अतः इसमें इनका क्या दोष है? पक्षियोंमें तो विवेक और बुद्धिका अभावही होता है। इसके लिये उन पर कोप करना उचित नहीं। यही गनीमत समझिये कि किसी तरह वे बेचारे अपना पेट तो भर लेते हैं।"

इस तरह गुणावली और वीरमतीको परस्पर कोलाहल मचाते देख सुनकर और भी अनेक मनुष्य वहाँ दौड़ आये और उन्होंने बीचमें पड़कर किसी तरह राजा चन्दकी जान बचायी, बकझक करनेसे वीरमतीका क्रोध कुछ शान्त हो गया और वह पुनः राज-सभामें अपने पर आ बैठी। नटोंको भी इससे बड़ाही आनन्द हुआ और वे उसे प्रसन्न करनेके लिये पुनः अपने खेल दिखाने लगे। शिवमाला भी बाँसपर चढ़कर, उस पिञ्जकी ओर दृष्टि रखते हुए अपना खेल दिखाने लगी।

राजा चन्दको यह बात मालूम थी कि नटों

शिवमाला पक्षियोंकी बोली जानती है, इसलिये उन्होंने मुर्गेकी बोलीमें उससे कहा,—"हे शिवमाला ! तू अपनी कलामें अत्यन्त निपुण है। साथही पक्षियोंकी बोली भी जानती है, इसलिये मैं तुझसे अपना गुप्त हाल कहता हूँ। खेल करनेके बाद जब तू बाँसपरसे नीचे उतरेगी तब वीरमती प्रसन्न हो तुझसे दान मांगनेको कहेगी, उस समय कोई और चीज न माँगकर तू मुझेही माँग लेना। रुपये-पैसेके लालचमें मत पड़ना। मैं तुझसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मेरी इतनी बात जरूर मानना। इसमें किसी प्रकारकी भूल न होनी चाहिये। तेरे इस कार्यसे मेरे प्राणोंकी रक्षा होगी। इसके लिये मैं तेरा आजीवन उपकार मानूँगा, धन तो हम दोनों मिलकर जितना चाहेंगे, उतना कमा लेंगे। तेरे पास आनेपर मैं अपना सारा हाल भी तुझसे कहूँगा।"

मुर्गेकी यह सब बातें शिवमाला आसानीसे समझ गयी। खेल खतम होनेपर उसने अपने पिता को एकान्तमें ले जाकर उससे मुर्गेका हाल कह सुनाया। साथही उससे अनुरोध किया कि वीरमतीसे यह मुर्गा किसी तरह अवश्यही मांग लिया जाय। शिवकुमारने अपनी पुत्रीकी यह प्रार्थना सहर्ष स्वीकार कर ली और वीरमतीकी जय पुकारने पर जब

 मांग

कहा, तो उसने वही मुर्गा दे देनेकी प्रार्थना की। वह कहने लगा,—"हे माता! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह मुर्गा देनेकी दया कीजिये। मुझे और कोई चीज नहीं चाहिये। मेरी पुत्री मुर्गेकी गति सीख रही है, इसलिये अच्छे मुर्गेके बिना उसका हौंसला पूरा नहीं होता। कृपया यह मुर्गा मुझे अवश्यही दीजिये। आप अपने लिये कोई दूसरा मुर्गा लेकर पाल लीजियेगा। हे माता! आपकी दयासे मेरे यहाँ रुपये-पैसेकी कोई कमी नहीं है। इस पर भी यदि मुझे धनकी जरूरत होगी, तो मैं अन्यान्य नृपतियोंसे माँग लूँगा; परन्तु आप तो मुझे यह मुर्गा ही दीजिये।"

वीरमतीने कहा,—"शिवकुमार! यह तुम क्या माँग रहे हो। तुम्हें हाथी, घोड़े, धन, धान्य, वस्त्र और आभूषण आदि चीज़ें माँगनी चाहिये, जिन्हें देनेसे हमारे यशमें भी वृद्धि हो। एक मुर्गा देनेसे हमारा नाम [illegible]ीं हो सकता। आजतक किसीको हमने मुर्गेका देते नहीं सुना। फिर यह मुर्गा तो बहूके रञ्जनके लिये हमने पाल रक्खा है, इसे दे देनेसे उसका जी दुःखी होगा, इसलिये तुम कोई दूसरी चीज माँगो, जो तुम्हें सहर्ष दी जा सके और जिसके देनेसे हमारी अपकीर्त्ति भी न हो।"

शिवकुमारने कहा,—"हे माता ! मुझे मुर्गा देनेसे किसी तरह आपकी अपकीर्त्ति नहीं हो सकेगी, क्योंकि मैं जो माँग रहा हूँ, वही आप देरही हैं। मुझे तो मालूम होता है कि यह मुर्गा आपको बहुत प्यारा है, इसीलिये आप इसे देना नहीं चाहती और इस तरहकी बातें बना रही हैं। परन्तु आप जब एक मुर्गा भी नहीं दे सकती हैं, तब मैं और कोई दूसरी चीज माँगता तो वह आप कैसे देतीं ?"

शिवकुमारकी यह बातें सुनकर वीरमती ने उसे बहुतही समझाया, परन्तु वह टस-से-मस न हुआ । अन्तमें उसने शिवकुमारकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मन्त्रीको मुर्गा लानेके लिये गुणावलीके पास भेजा।

मन्त्रीने गुणावलीके पास जाकर उससे सारा हाल कह सुनाया। साथही उसे समझाया कि मुर्गेको यहाँ रखनेकी अपेक्षा उसे नटीको दे देना अधिक अच्छा है; क्योंकि यहाँ जब देखो तब वीरमती उसका प्राण लेनेको तैयार हो जाती है। नटीको दे देनेसे उसके प्राणोंकी पूरी तरह रक्षा होगी। वह उसे अपने प्राणकी तरह रक्खेगी, इसलिये उसे देनेसे इन्कार करना ठीक नहीं है।"

गुणावलीने कहा,—"मन्त्रीजी ! आपका कहना ठीक है, परन्तु मैं इसे किस तरह दे सकती हूँ ? वीरमती

तो इससे पूरी शत्रुता रखती है, इसीलिये वह इसका निरंतर अनिष्ट चिन्तन किया करती है, परन्तु मेरे लिये तो यह मुर्गा ही सर्वस्व है। मैं तो इसीको रखकर जीती हूँ। यही मेरा जीवन-धन, यही मेरा प्राणाधार है, इसलियें आप इसे न देकर, नटको कोई दूसरी चीज माँगनेके लिये समझाइये। फिर, हमें यह भी सोचना चाहिये कि महाराजको हमलोगोंने एकबार तो मुर्गा बना डाला। अब क्या उन्हें नटको देकर घर-घर नचाना सिखायेंगे? यह जब तक मेरी आँखोंके सामने रहते हैं, तब तक मेरा जी आनन्दित रहता है अब मैं इन्हें आँखोंकी ओट न होने दूँगी। इन पर कोई दुःख पड़ेगा तो वीरमतीको क्या? वह तो और भीं हँसेगी, परन्तु मेरा हृदय विदीर्ण हो जायगा। इसलिये दयाकर मुझसे यह मेरा अन्तिम अवलम्ब न छीनिये।"

गुणावलीकी बातें सुनकर और उसका गिड़गिड़ाना देखकर मन्त्री की आँखोंमें भी आँसू भर आये, परन्तु वीरमतीकी आज्ञाके सामने वह लाचार था। उसने पुनः गुणावलीको समझाया। समझाने बुझाने पर गुणावली को भी यह बात जँच गयी कि मुर्गा यहाँकी अपेक्षा नटोंके पास अधिक सुरक्षित रहेगा, इसलिये उसने मन्त्रीकी बात मान ली और उसे वह मुर्गा देनेको तैयार हो गयी।



सतरहवाँ परिच्छेद

चीरमतीसे मुर्गे की मुक्ति



गुणावली मन्त्रीको मुर्गा देनेके लिये तैयार तो हो गयी, परन्तु उसे देते समय मानो उसका हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। उसकी आँखों से अश्रु-धारा वह निकलती थी। वह उसे वारवार गले लगाते हुए कहने लगी कि,—"हे नाथ! आप मुझे त्यागकर दूर देश जा रहे हैं, इसमें आपकी भी सम्मति मालूम होती है। मैं तो स्वामीके होने पर भी अनाथ हो रही हूँ। मेरा अब कोई आधार नहीं रहा। अब मैं अपना दुखड़ा किसके सामने रोऊँगी? अपने दिलकी बात किससे कहूँगी? मैं आपको कदापि न देती, स्वप्नमें भी आपको जाने न देती, परन्तु आपकी प्राण-रक्षाके लिये ही मुझे ना पड़ता है। हे नाथ! आप चाहे जहाँ र मु कदापि न भूलें, मुझपर दया रक्खें, मु

पूरा खयाल रक्खें। यदि मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो उसे भूल जाइयेगा। मैं तो आपको एक क्षणभरके लिये भी न भूलूँगी। सदा अपने मन-मन्दिरमें बैठाकर आपकी पूजा किया करूँगी। आप भी इस दासीको न भूलें। मेरे मनमें अनेक प्रकारकी आशाएँ भरी थीं, परन्तु इस समय तो दैवने उन्हें मिट्टीमें मिला दिया है। मेरी बची खुची आशाएँ भी आज आपके वियोगसे निराशाके रूपमें परिणत हो रही हैं। हे नाथ! अब हमलोगोंका मिलन कब होगा, इसे दैवही जान सकता है। हे स्वामिन्! जरा अपनी इस अभागिनी पत्नीकी ओर देखिये। मेरा हृदय आपकी विरहाग्निसे खाक हुआ जा रहा है। मूशलाधार वृष्टिमें भी इस अग्निको शान्त करने की शक्ति नहीं है। हे प्राणाधार! दैव बड़ा ही निर्दय है। उसने हमलोगों पर दुःखका पहाड़ ढहाया, परन्तु उस अवस्थामें भी मैं आपके दर्शन कर अपनेको धन्य समझती थी। दैवसे अब यह सुख भी न देखा गया। यदि हृदय चीरकर दिखाया जा सकता, तो मैं आपको अपना दुःख दिखाती। ईश्वर करे, किसी दुश्मन पर भी ऐसा दुःख न पड़े। हे नाथ! मुझे आपकी बातें सदा याद आती रहेंगी। आप दयाकर शीघ्रही लौट आयें। आपही मेरे जीवन

हैं। मेरे यह आँसूभरे नेत्र सदा आपकी राह देखते रहेंगे। मुझे इस बातका भी बड़ाही दुःख है कि नट आपको घर-घर घुमाता फिरेगा, परन्तु यहाँ रखनेमें आपके प्राणको पूरा भय है, इसीलिये, हे नाथ! विवश होकर आज मैं आपको अपनेसे अलग कर रही हूँ।"

गुणावलीकी यह बातें सुनकर राजा चन्दकी आँखोंमें आँसू भर आये। उनमें मनुष्यकी तरह बोलनेकी शक्ति न थी और मुर्गेकी बोली गुणावली समझ न सकती थी, इसलिये उन्होंने पंजेसे जमीनपर लिखकर गुणावलीको समझाया कि,—"हे प्यारी! तुम मेरी फिक्र मत करना। यदि मेरा जीवनही न रहा तो दूसरी बात है, वर्ना हमलोग कभी-न-कभी अवश्यही मिलेंगे। मैं तुमसे चाहे जितना दूर रहूँगा, पर तुम मुझे सदा अपने पासही समझना। जब तक तुम्हारे हृदयमें मेरे लिये स्थान रहेगा, तब तक मैं भी तुम्हें न भूलूँगा। देश या विदेश कहीं भी रहनेसे कोई अपनी प्यारी-पत्नीको भूल नहीं जाता। मेरा यह विश्वास है कि यह नट मुझे मुर्गेसे पुनः मनुष्य बनायेगा, इसीलिये मैं इसके जा मैं जा रहा हूँ। यदि मेरी यह आशा शीघ्रही तुम्हें फिर आ मिलूँगा।"

राजा चन्दकी भूमिपर लिखी हुई

गुणावलीका चित्त कुछ शान्त हुआ। उसने पुनः मुर्गेको हृदयसे लगाकर, उसे मन्त्रीके हाथमें दे दिया। इसके बाद मन्त्री उसे वीरमतीके पास ले गया और वीरमतीने भी उसी समय उसे शिवकुमारको दे डाला। नट उसे पाकर बहुतही प्रसन्न हुआ। पश्चात् वह वीरमतीको प्रणामकर अपने डेरेपर लौट आया।

मुर्गेको प्राप्तकर, शिवमालाके आनन्दका वारापार न रहा। वह पहले ही जान चुकी थी कि यह मुर्गा और कोई नहीं है बल्कि राजा चन्द ही है, इसलिये उसने बड़े आदरसे एक उत्तम शैय्यापर उस पींजड़ेको रख, उसने और उसके पिताने हाथ जोड़कर कहा कि,— "हे स्वामिन्! अब तक हमलोग अनाथ थे, परन्तु आपको पाकर अब सनाथ होगये। आजसे हमलोग राजा मानकर आपकी सेवा किया करेंगे। पूर्वजन्मके सुकृतसे ही हमें आपकी प्राप्ति हुई है। आजसे हमलोग विना आपको अभिवादन किये, किसी को भी नाच मुजरा या खेल न दिखायेंगे। आप यहांपर आनन्दसे रहिये और अपनी सेवाके लिये हमें आदेश दीजिये। हम सब आपकेही दीन सेवक हैं।"

यह कह, उन्होंने राजा चन्दके सामने तरह-तरहका मेवा रख, उनसे खानेका अनुरोध किया। कुकुटराज

उनके कहनेसे मेवा चुगने तो लगे, परन्तु उसी समय गुणावलीकी याद आ जानेसे उनका गला भर आया और वह मेवा गलेके नीचे उतर न सका। यह देखकर शिवमालाने कहा कि,—"हे कुकुटराज! आप किसी तरहकी चिन्ता न करें। आनन्द पूर्वक मेवा मिटान्न खाइये। कालान्तरमें सब कुछ ठीक ही होगा।" यह सुन, राजा चन्द कुछ शान्त हुए। अब वे उसीके पास रहकर अपना समय व्यतीत करने लगे।

इधर सभा विसर्जन होनेके बाद मन्त्री गुणावलीके पास आया। गुणावली अब तक बैठी रो रही थी। उसने मन्त्रीको देखतेही कहा कि,—"मन्त्रीजी! रानी या नटको समझा कर आप किसी तरह भी मेरे कुकुट राजको वापस ला दीजिये। मुझे उनका वियोग असह्य हो रहा है। यह नटलोग तो मेरे प्राणनाथको लेकर न जाने कहाँ चले जायेंगे, फिर मैं उन्हें कहाँ पाऊँगी? उस नट-भौंरेको तो जगह-जगह नये मित्र और नयी स्त्रियाँ मिल जायेंगी, परन्तु मेरी के बिना कौनसी गति होगी? यदि वे म मु ही बने रहेंगे, तो उसमें भी मुझे स मैं देखकर जीती तो रहूँगी। इस तो मेरी पूर्व जन्मकी शत्रुता है। प

देनेपर भी उसका क्रोध शान्त न हुआ। संसारमें सब लोगोंको मृत्यु हर लेती है, परन्तु न जाने वह इसे क्यों नहीं हर लेती। यह न जाने कब तक मुझे दुःख देनेके लिये इस तरह बैठी रहेगी ? मेरे नाथका यश सुनकर इसे न जाने क्यों दुःख होता है ? मेरी सासके लिये वे भले ही कण्टक रूप हों, पर मेरे लिये तो वही जीवन सर्वस्व हैं। बिना उनके मेरा जीवन भाररूप हो रहा है, इसलिये मन्त्रीजी! जिस तरह हो सके, आप उन्हें मेरे पास वापस ला दीजिये। आपका यह उपकार मैं कभी न भूलूँगी। आजीवन आपकी ऋणी रहूँगी।"

गुणावलीकी यह व्याकुलता देख, मन्त्रीको बहुत ही दुःख हुआ। उसने कहा,—"हे रानी! तुम्हें इस खेद न करना चाहिये। तुम्हारी सासकी प्रकृति बहुत बुरी है, इसलिये उसे छेड़ना भी ठीक नहीं। वह यद्यपि वृद्धा हो गयी है, तथापि उसकी बातका कोई विश्वास नहीं। अब वह अधिक दिन तो जियेगी ही नहीं। अन्तमें तो इस राज्यके स्वामी तुम्हारे पति और तुम्हीं होगी, इसलिये इस समय तो धैर्यसे ही काम लेना तुम्हारे लिये लाभदायक है।"

मन्त्रीके इस आश्वासनसे गुणावलीका चित्त कुछ शान्त हुआ। उसने मुर्गेको वापस मंगानेका विचार

छोड़ दिया, किन्तु अन्य कई बातें समझाकर तथा अपने पतिके लिये मेवा मिष्टान्न आदि देकर उसने मन्त्रीको शिवमालाके पास भेजा। मन्त्रीने शिवमालाके पास जाकर उसे एकान्तमें बुलाया और उससे कहा कि—"यह तो तुम जानती ही होगी कि यह मुर्गा असली मुर्गा नहीं है, परन्तु राजा चन्द हैं। इनकी विमाताने मन्त्र-बलसे इन्हें मुर्गा बना दिया है, इसलिये तुमलोग इन्हें अच्छी तरह सम्हालकर रखना, और इनकी सेवामें किसी तरह त्रुटि न होने देना। किसी समय तुमने फिरते यहाँ भी चले आना। राजा चन्दको तुम्हारे पास सुरक्षित देखकर हमलोगोंको बड़ाही आनन्द होगा। यदि इस तरफ न आ सको, तो पत्रसे भी इनका कुशल-समाचार सूचित करते रहना। तुम्हारे इस उपकारका उचित बदला अवश्यही दिया जायगा।"

इस प्रकार अनेक सूचनाएँ दे, कुर्कुट राजाको प्रणाम कर मन्त्री अपने वासस्थानको लौट आया। इधर नटोंने भी अपना बोरिया बधना बाँधकर वहाँसे कूच कर दी। जिस समय वे ढोल बजाते हुए राजमार्गसे निकलने लगे तो गुणावली भी अपने महलकी छत परसे उन्हें देखने लगी। उसने देखा कि उसके प्राणनाथका पींजड़ा शिवमाला अपने मस्तक पर लिये हुए है। जब

तक वह दिखायी दिया तब तक गुणावली टक-टकी लगाये उसी ओर देखती रही। जब वह दृष्टि मर्यादासे दूर निकल गया और वृक्षोंके कारण उसका दिखना बन्द हो गया तब गुणावली नीचे उतर आयी। इस समय उसकी ठीक वही दशा थी, जो मणि खो जानेपर सर्पकी या पानीसे बाहर निकाल देनेपर मछलीकी होती है। वह दुःखके इस आवेगको किसी तरह भी न सम्हाल सकी और मूर्च्छित होकर उसी समय जमीन पर गिर पड़ी। उसकी यह अवस्था देखकर सखियाँ दौड़ आयीं और गुलाबजल आदि छिड़क कर किसी तरह उसे होशमें लायीं। इस घटना से चारों ओर हाहाकार मच गया। खबर पाकर मन्त्रीजी आ पहुँचे और उन्होंने अनेक प्रकार से गुणावलीको सान्त्वना दी। इसके बाद वीरमती भी वहाँ आयी, परन्तु उसकी तो डेढ़ चावलकी खिचड़ी ही पकती थी। गुणावलीको सान्त्वना देना और उससे उसका दुःख सुख पूछना तो दूर रहा, उल्टे उसने कहा कि,—"बहू! चन्दके चले जानेसे आज मुझे बड़ाही आनन्द हो रहा है। अब हमलोगोंके स्नेहमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़ेगी, बल्कि मेरी धारणा है कि उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायगी।"

वीरमतीकी यह बातें गुणावलीको बहुतही बुरी मालूम

होती थीं, फिर भी समयका खयाल कर उसे उसकी हाँमें हाँ मिलानीही पड़ती थी। वीरमतीको इससे बहुतही सन्तोष हुआ और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने महलको लौट गयी।

इधर सभी लोगोंके चले जाने पर, गुणावलीके हृदयमें पुनः दुःखका-सागर उमड़ पड़ा। उसके नेत्रोंसे गंगा यमुनाकीसी धारा बहने लगी। ज्यों-ज्यों उसे अपने पतिका स्मरण आता था, त्यों-त्यों उसका दुःख बढ़ता जाता था। वह लम्बी सांसें ले लेकर उसी ओर देखा करती थी, जिस ओर उसके प्राणनाथका पिञ्जर लेकर नटोंका वह दल गया था। उस ओरसे वायुका एक झोंका ऐसा आया जिससे गुणावली सोचने लगी कि, अवश्यही यह मेरे पतिका स्पर्श करके यहाँ आया होगा, इसलिये वह बड़ीही प्रसन्न हुई। वह अपने प्राणनाथका स्मरण कर कहने लगी कि,—"हे प्राण! तुम अब प्राणेशके बिना किस तरह रहोगे? गमन करना तो तुम्हारा धर्मही है। जब वे चले गये, तब तुम्हें भी यहाँ रहना उचित नहीं है।"

थोड़ीसी देरके बाद फिर वह उनका स्मरण करती हुई कहने लगी,—"कहाँ गये वे स्वामी, कहाँ गये वे नये नये रस रंग, और कहाँ गया उनका वह अ स्नेह! जैसे बाजीगर मायाजाल

समेट लेता है, उसी प्रकार यह सब बातें भी वे अपनी मधुर स्मृति-रूप छोड़कर न जाने कहाँ चले गये। हे नाथ! आपके जानेका मुझे बहुतही दुःख है, परन्तु ईश्वरसे अब यही प्रार्थना है कि आप जहाँ रहें वहाँ सुखी रहें, आप दीर्घायु हों और आपकी यश-वृद्धि हो। यही मेरी कामना है। हे नाथ! हे जीवनाधार! साथही इस दासीको भी याद रखियेगा, इसे भूल न जाइयेगा।"

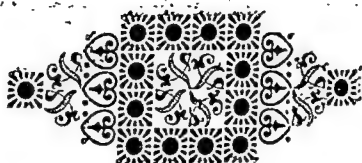
इस प्रकार गुणावली विरहाग्निसे रात दिन जला करती थी। उसे सारा महल श्मशानकी भाँति शून्य मालूम होता था और शृंगार अङ्गारके समान प्रतीत होते थे। उसका शरीर म्लान और कान्ति-हीन होता जा रहा था। वह स्वभावसे ही धर्मनिष्ठ थी, इसलिये अशुभ कर्मोंका उदय मानकर, कर्मनिर्जराके लिये नित्य नये-नये तप किया करती थी और इस भव-समुद्रके तट समान परमात्माके ध्यानमें लीन रहती थी।

परन्तु पाठक यह न समझें कि, गुणावली इतना ही करके शान्त हो गयी थी। वह अपने पतिकी रक्षाके लिये विशेष चिन्तित रहती थी और इसके लिये उसने अपने अधीनस्थ छोटे-छोटे सात राजाओंको

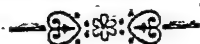
समझा बुझाकर शिवमालाके साथ रहनेको भेज दिया था। यह राजे अपनी सेना सहित सदा शिवमालाके साथ रहते और सब प्रकारसे राजा चन्दकी रक्षा करते थे। उन्होंने राजा चन्दसे स्पष्ट कह दिया था कि,—"हमलोग गुणावलीके आदेशसे आपकी रक्षाके लिये यहाँ आये हैं और अब सदा आपके ही साथ रहेंगे। आप कुकुँट हो गये हैं तो क्या हुआ, हमारे लिये तो आप अब भी वही स्वामी हैं, जो पहले थे।" राजाओंकी यह बातें सुनकर कुकुँट राजने उन्हें अपने साथ रहनेके लिये आज्ञा दे दी।

नटोंका यह दल अब कोई साधारण दल न था। शिवकुमार और शिवमालाके हाथ यह मुर्गा क्या लग गया, मानों उनका भाग्यही पलट गया। सात राजे और उनकी सेना अब उनके साथ चलती थी। जिधरसे यह दल निकलता, उधरही दर्शकोंकी भीड़ लग जाती। इनके चलनेका ढंग भी निराला ही था। कुकुँट राज सदा सोनेके पींजड़ेमें रहते थे। शिवमाला उसे अपने शिरपर लेकर चलती थी। एक उनके शिरपर सुशोभित करता और दोनों ओरसे दो आद

कुर्कुटराजका यह ठाट-बाट देखकर लोग चकित हो जाते थे और उसके भाग्यकी सराहना करते थे। जहाँ यह लोग खेल दिखाते वहाँ अब पहलेसे चौगुने धनकी प्राप्ति होती थी। इससे नटोंकी मण्डली अत्यन्त प्रसन्न रहा करती और दूने उत्साहसे चारों ओर घूम फिरकर लोगोंको अपना खेल दिखाती थी।



अठारहवाँ परिच्छेद



लीलाधर और लीलावती



शिवमाला चन्द राजाका पींजड़ा प्राप्तकर, देश विदेशमें भ्रमण करती हुई, विपुल धन उपार्जन करने लगी। उसे मुर्गा मिल जानेसे एक पंथ दो काजकी कहावत चरितार्थ हो गयी। शिवमाला उसे नित्य मेवा-मिष्टान्न खिलाती और अपने प्राणकी तरह उसे रखती थी।

एकबार नटोंकी यह मण्डली घूमते फिरते बँगालके पृथ्वीभूषण नामक नगरमें जा पहुँची। वहाँ अरिमर्दन नामक राजा राज्य करता था। उसकी चन्दराजाके पितासे बड़ीही मित्रता थी। नटोंने इस नगरमें एक अच्छासा स्थान पसन्द कर उस जगह अपने तम्बू खड़े कर दिये। एक तम्बूमें सिंहासन सजाकर, उसके ऊपर कुकुटराजका पींजड़ा रक्खा गया। कहनेका तात्पर्य

यह है कि नटोंने बड़े ठाट-बाटसे डेरा डाला। देखने-वालोंको यही मालूम हो रहा था, मानो किसी राजाकी छावनी पड़ी हुई है।

राजा अरिमर्दनको नटोंके आगमनका समाचार मालूम होते ही उसने उन्हें खेल दिखानेके लिये अपने दरबारमें बुला भेजा। शिवकुमार आदि पींजड़के साथ दरबारमें उपस्थित हुए और कुकुटको प्रणामकर उसकी आज्ञा ले, एक अपूर्व नाटक कर दिखाया। राजा नाटक देखकर बहुतही प्रसन्न हुआ और उसने काफी इनाम देकर नटोंको सम्मानित किया। नटोंके साथ उस मुर्गेको देखकर राजाको बड़ाही आश्चर्य हुआ और उसने उसके विषयमें पूछ ताछ की। इसपर शिवकुमारने सका सच्चा हाल संक्षेपमें कह सुनाया। सुनकर राजा रिमर्दनको जब यह खयाल हुआ कि राजा चन्द यहीं हैं, तब वह उनके चरणोंपर गिर पड़ा और मणि-काञ्चन तथा हाथी घोड़े आदिकी भेट उनके समक्ष रखकर कहने लगा कि,—"हे वीरशिरोमणि चन्द! मैं आपका दास हूँ। आप मेरे अतिथि हैं। आपके आगमनसे आज यह देश और मैं धन्य हो गया हूँ। आप मेरी यह तुच्छ भेट ग्रहणकर मुझे कृतकृत्य कीजिये।" इस प्रकार राजाके बहुत अनुरोध करनेपर नटोंने भेटकी कुछ

चीजें स्वीकार कर लीं। इसके बाद जब वे लोग चलने लगे तो राजा अरिमर्दन सम्मानपूर्वक उनके साथ गये और अपने राज्यकी सीमातक उन्हें पहुँचाकर लौट आये।

नट लोग यहाँसे विदा होकर घूमते फिरते सिंहल-द्वीपके पास जा पहुँचे। वहाँपर समुद्रके किनारे सिंहल नामक एक बड़ा नगर था। उसके बाहरही नटोंने अपने तम्बू खड़े कर दिये। शीघ्रही नगरवासियोंका ध्यान इनकी ओर आकर्षित हुआ। सब लोग नटोंका खेल देखनेके लिये लालायित हो उठे। जब यह संवाद सिंहल नरेशको दिया गया तो उन्होंने नटोंको बुला भेजा। नट लोग कुकुटराजका पींजड़ा लेकर उनके पास गये और उन्हें नाटक दिखाकर प्रसन्न किया। सिंहल नरेशने पाँच सौ जहाजोंकी चुंगी, जो उसी समय वसूल होकर आयी थी, वह नटोंको पुरस्कारमें दे दी। नट लोग महाराजकी जय मनाते हुए अपने डेरेपर लौट आये और पोतनपुर जानेकी तैयारी करने लगे।

इधर सिंहल नरेशकी रानी सिंहला मुर्गेको देखकर उसपर अनुरक्त हो गयी। उसने राजाको बुलाकर कहा कि,—"प्यारे! मुझे किसी तरहभी वह मुर्गा दीजिये। उसमें बड़ी मोहिनी शक्ति है।

समस्त संसारको अपने वशमें कर रक्खा है । मुझे वह मुर्गा बहुतही भला मालूम होता है । उसके बिना मैं उसी तरह व्याकुल हो रही हूँ, जिस तरह बिना जलके मछलियाँ व्याकुल हो उठती हैं । उसने मेरा चित्त चुरा लिया है, मेरे प्राण उसीमें अटके हुए हैं, इसलिये जिस तरह हो, उसे ला दीजिये ।"

राजाने कहा,—"प्यारी ! एक पक्षी से इतना प्रेम करना ठीक नहीं । उस मुर्गेसे तो नटों की जीविका चलती है, इसलिये उसे मांगनेपर वे कैसे दे सकेंगे ? यदि कोई मुझे मांगे, तो क्या तुम दे दोगी ? इसी तरह नट भी उस मुर्गेको न दे सकेंगे । उसके लिये ऐसी हठ करना उचित नहीं । "

रानीने गिड़गिड़ाते हुए कहा,—"प्यारे ! आपका कहना ठीक है, परन्तु उसके बिना मुझे अपना जीवन भारसा मालूम होरहा है । नटोंको धनका प्रलोभन देनेसे वे उसे अवश्य ही दे देंगे । जैसे भी हो, मुझे वह मुर्गा जरूर ला दीजिये ।"

रानीका अत्यन्त आग्रह देखकर राजाने मुर्गेको लानेके लिये नटके पास अपना एक आदमी भेजा । उसने शिवकुमारके पास जाकर मुर्गा मांगा, शिवकुमारने उसे उत्तर देते हुए कहा कि—"वह मुर्गा नहीं है, पर

हमारा राजा है। यदि वह चाहे तो हमें दे सकता है, परन्तु हम उसे नहीं दे सकते। हमने राजाको नाटक दिखाया इसीलिये उन्होंने मुर्गा माँगनेका दुःस्साहस किया है, परन्तु हम उन्हें बतला देना चाहते हैं कि उन्होंने हमें कोई बहुत बड़ी रकम नहीं दे दी है। ईश्वरकी दयासे हमें अनेक स्थानोंमें इससे भी बड़ी बड़ी रकमें मिल चुकी हैं। इसलिये तुम अपने राजासे जाकर कहा दो, कि उनकी इस बेजा माँगको किसी तरह पूरी नहीं की जा सकती।"

सिंहलनरेशके आदमीने कहा,—"मुर्गेके लिये हमारे महाराज उत्सुक नहीं है, परन्तु हमारी महारानी, उसको प्राप्त करनेके लिये लालायित हो रही हैं। यदि उन्हें यह मुर्गा न मिलेगा तो वे अवश्यही अपना प्राण त्याग देंगी।"

नटोंने कहा,—"महारानी भलेही प्राण त्याग दें, परन्तु हम किसी तरह भी इस मुर्गेको नही दे सकेंगे। जिस प्रकार राजाको अपनी रानी प्यारी है, उसी प्रकार हमें भी यह मुर्गा प्यारा है।"

नटोंका यह उत्तर सुनकर राजाका आदमी अपना सा मुँह लेकर लौट गया। राजाने जब उसके मुँहसे नटोंका यह उत्तर सुना, तो वह मारे क्रोधके आग

बबूला हो गया। वह कहने लगा कि,—"मैं अभी इन्हें जेरबार कर मुर्गेको छीन लाऊँगा।"

तुरन्त फौज तैयार की गयी और नटोंके दल पर धावा बोल दिया गया। नटोंके साथ भी चन्द्राजाकी रक्षाके लिये काफी सेना रहती थी। दोनों दलोंमें भीषण संग्राम होने लगा। पैदलसे पैदल और सवारसे सवार भिड़ गये। बिजलीकी तरह तलवारें चमकने लगीं। कुछ देर तक तो दोनों दल डटे रहे, पर अन्तमें सिंहलनरेशकी सेनाको पीठ दिखाकर भागना पड़ा। इस पराजयसे सिंहलनरेश बहुतही लज्जित हुए। वे मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगे। तदनन्तर नट लोग पींजड़ेको लेकर, डंके पर चोट देते हुए पोतनपुरके लिये रवाना हुए। और चारों ओर कुकु टराजकी जय पुकारने लगे।

नट- मण्डली कुछ दिनोंके बाद पोतनपुर पहुँची। पोतनपुर शहर बहुतही बड़ा और देवपुरीके समान सुशोभित था। उसे देखनेसे ऐसा मालूम होता था मानो यहाँ साक्षात लक्ष्मीका निवास है। उसमें जयसिंह नामक राजा रज्य करता था। उसके सुबुद्धि नामक एक मन्त्री था। उसकी स्त्रीका नाम मन्मथा था। वह बड़ीही रूपवती थी। उसके लीलावती

नामक एक रूपगुण-सम्पन्न पुत्री थी। उसका व्याह उसी नगरके लीलाधर नामक एक वणिक पुत्रके साथ हुआ था। यह दोनों एक दूसरेके लिये परम उपयुक्त थे। लोग कहते थे कि विधाताने मणि-काञ्चनकी तरह इन दोनोंका योग मिलाया है। यह दम्पति विवाह होनेके बादसे दोगंदुक देवोंकी भाँति अथवा कामदेव और रतिकी भाँति सुखभोग करते हुए अपना समय व्यतीत करते थे।

किसी समय एक पुण्यहीन मनुष्य लीलाधरके पास कुछ माँगने आया। लीलाधरने उसका तिरस्कार कर उसे बाहर निकाल दिया। इससे उस भिक्षुकको बड़ाही क्रोध हो आया। उसने लीलाधरको फटकारते हुए कहा,—"सेठजी! आप इस तरह अभिमान मत कीजिये। मैं चाहे जैसा हूँ, पर आपसे तो किसी अंशमें अच्छाही हूँ। मैं अपनी हाथकी कमाई खाता हूँ, किन्तु आप तो अपने पिताकी कमाई पर जीवन बीता रहे हैं। मैं आपकी तरह किसीके उपकारसे दबा हुआ नहीं हूँ। जो अपने हाथोंसे धनोपार्जन नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कार है। पराये ध भरोसे उछल कूद करनी ठीक नहीं। जब तक पिताजी जीवित हैं, तब तक आप निश्चिन्त हैं

उन्होंने उसे समझाते हुए कहा,—"बेटा! तुम्हारी उम्र अभी बहुतही छोटी है। इस समय तुम विदेश जाने योग्य नहीं हुए हो। फिर, अभी हालहीमें तुम्हारा ब्याह हुआ है। अपने घरमें धन-धान्यकी भी कोई कमी नहीं है। ऐसी अवस्थामें तुम्हें विदेश जानेकी कोई आवश्यकता नहीं।"

पिताकी यह बात सुनकर लीलाधरने उन्हें उस भिक्षुककी बातें कह सुनायीं और कहा कि,—"मेरे हृदय पर इन सब बातोंका गहरा प्रभाव पड़ा है, इसलिये मैं कम-से-कम एकबार अवश्यही विदेश जाऊँगा।"

पुत्रके उद्वेगका यह वास्तविक कारण जानकर, सेठजीने उसे बहुतही समझाया और इस बातकी खूब की कि उस भिक्षुककी बातोंका जो प्रभाव उसके पर पड़ा है, वह नष्ट हो जाय, परन्तु इसका कोई फल न हुआ। सेठजीकी तरह लीलाधरकी माता, मन्त्री तथा अन्यान्य स्वजनोंने भी उसे बहुतही समझाया, परन्तु लीलाधर अपने संकल्पसे जराभी विचलित न हुआ। उसे विदेश जानेकी धुन इस तरह सवार थी कि वह इसके लिये पिताकी आज्ञा प्राप्त किये बिना अन्न जल भी ग्रहण न करना चाहता था, परन्तु सेठजीने किसी प्रकार उसे उठाकर भोजन कराया और दूसरे दिन

पर बात टालकर उसे सोनेके लिये शयनागारमें भेज दिया।

शयनागारमें जाकर लीलाधर चुपचाप अपने पलंग पर लेट रहा। लीलावती रोजकी तरह ललित गतिसे चलती हुई उसके पास आयी, परन्तु और दिनकी तरह उससे हसना बोलना तो दूर रहा, बल्कि उसने आज आँख उठाकर भी उसकी ओर देखा नहीं। वह अपने विचारमें ही मस्त था। उसकी यह अवस्था देखकर लीलावतीने कहा,—"प्यारे! मैं सुन चुकी हूँ कि आप विदेश जाना चाहते हैं परन्तु इस तरह सबसे रूठकर जाना ठीक नहीं। मुझसे ऐसा कौनसा अपराध हुआ है, जो आप मेरी ओर आँख उठाकर देखना तक पसन्द नहीं करते। आप दूसरोंसे रूठ कर जा सकते हैं, परन्तु मैं आपको इस तरह कदापि न जाने दूँगी। ऐसे स्नेहमें एकबार वियोग होनेपर फिर न जाने कब संयोग हो। इसलिये जहाँतक हो, विदेश जानेका विचार ही छोड़ दीजिये। किन्तु यदि आप ऐसा न कर सकें तो हँसी खुशीसे सबसे मेल जोल रखकर जाइये, ताकि आपके प्रति कोई किसी प्रकारका दुर्भाव न रक्खे।"

इस तरह लीलावतीने अपने पतिको सारी रात समझा बुझाकर उसके विचार बदल देनेकी बहुत की, परन्तु कोई फल न हुआ। सुबह उसके

फिर उसे समझाया, परन्तु लीलाधर किसी प्रकार अपना विचार बदलनेको राजी न हुआ। यह सब समाचार मन्त्रीने भी सुन लिये। उसने सोचा कि अब लीलाधरको समझाने बुझानेसे कोई लाभ नहीं हो सकेगा, इसलिये उसने एक नयी चाल सोची। वह सेठजीके पास आकर कहने लगा कि,—"जब इन्हें विदेशही जाना है और यह किसी तरह रुकना नही चाहते हैं तो इन्हें रोकना भी ठीक नहीं है। परन्तु विदेशमें अच्छी तरह धनकी प्राप्ति हो इसलिये शुभ मुहूर्तमें यात्रा करनी चाहिये। आपकी राय हो तो अच्छे-अच्छे ज्योतिषियोंको बुलाकर कोई उत्तम मुहूर्त पूछ लिया जाय।"

लीलाधरके पिताने मन्त्रीकी इस बातका समर्थन या। लीलाधरने भी कोई विरोध न किया, इसलिये मन्त्रीने अनेक ज्योतिषियोंको बुलाकर उनसे अच्छा मुहूर्त देख देनेको कहा।

मन्त्रीकी सांकेतिक बातोंसे ज्योतिषी समझ गये कि वे लीलाधरको विदेश जाने देना नहीं चाहते, इसीलिये उन्होंने कई बार पञ्चाङ्गके पन्ने उलट-पुलट कर कहा कि,—"छः महीने तक कोई बढ़िया मुहूर्त नहीं दिखायी देता। परन्तु यह इतने दिन तक

रुकना न चाहें तो किसी दिन भी प्रातःकाल मुर्गा के बोलते ही यात्रा कर सकते हैं। इस प्रकार यात्रा करनेसे भी विदेशमें विपुल धनकी प्राप्ति हो सकेगी।"

ज्योतिषियोंकी यह बात सुनकर मन्त्रीने उन्हें यथोचित दान देकर विदा कर दिया। इसके बाद वह यात्राकी तैयारी करानेके बहाने लीलाधर और लीलावती दोनोंको अपने घर लिवा ले गया। घरमें एक ओर यात्राकी तैयारी होने लगी, दूसरी ओर मन्त्रीने अपने समस्त सेवकोंको बुलाकर उन्हें गुप्त रूपसे आज्ञा दी कि,—"नगरमें जितने मुर्गे हों, उन सबोंको एकत्र कर नगरके बाहर भिजवा दो। नगरमें एक भी मुर्गा न रहने पाये, क्योंकि मुर्गेका शब्द सुनतेही जमाईजी विदेश चले जायेंगे। किन्तु खयाल रखना कि यह काम बहुतही गुप्त रूपसे होना चाहिये। जमाईजीको इसका कोई पता न चले।"

यह आज्ञा पातेही मन्त्रीके सेवकोंने सारा दिन दौड़ धूप मचाकर नगरके समस्त मुर्गोंको नगरके बाहर भिजवा दिया। इधर लीलाधर अपनी तैयारियोंमें व्यस्त था। किसी तरह रात हुई। प्रातःकाल जब मुर्गेके बोलने का समय हुआ, तब लीलाधर कान लगाये बैठा रहा। परन्तु नगरमें कहीं मुर्गा हो तो वह बोले। धीरे-धीरे सवेरा चला, परन्तु मुर्गोंका शब्द कहीं भी सुनायी न

यह देखकर लीलाधर अधीर हो उठा। वह कहने लगा कि,—"यात्राका समय बीता जा रहा है, इसलिये अब मैं जाता हूँ।" परन्तु मन्त्रीने उसे यह कह कर रोक लिया कि,—"ज्योतिषियोंके कथनानुसार मुर्गेका शब्द सुने बिना तुम यात्रा नहीं कर सकते।" लाचार, लीलाधर को रुक जाना पड़ा। उसने सोचा कि कोई हर्ज नहीं, आज नहीं तो कल तो मुर्गेका शब्द अवश्यही सुनायी देगा। एक दिनमें कुछ बनता बिगड़ता नहीं।

परन्तु दूसरे दिनभी वही अवस्था हुई, जो पहले दिन हुई थी। लीलाधरको इस षड्यन्त्रका कोई पता न था, इसलिये अपने हृदयमें विदेश गमन की तीव्र अभिलाषा होनेपर भी वह सुमुहूर्तकी प्रतीक्षामें फिर रुक गया। उधर लीलावती उसे अपने प्रेमजालमें उलझाने की प्रबल चेष्टा कर रही थी। मन्त्री और धनदका समझाना बुझाना भी जारी था। अन्तमें इस उद्योगका यह फल हुआ कि एक एक दिन करके छः महीने व्यतीत हो गये और लीलाधर विदेश न जा सका। मन्त्री आदि समझते थे कि इस तरह उसे रोक रखनेसे, शायद वह सदाके लिये विदेश जानेका विचार छोड़ देगा। परन्तु ऐसा न हो सका। लीलाधर अपनी धुन का बड़ा पक्का था। उसने सोच रक्खा था कि जिस दिन मुर्गेका

शब्द सुनायी देगा, उस दिन मैं अवश्यही विदेशके लिये चल दूंगा।

जिस समय पोतनपुरमें मन्त्रीके घर यह प्रपञ्च हो रहा था, उसी समय उस नगरमें शिवकुमारकी नाट्य-मण्डली आ पहुँची। नटलोग ढोल और शहनाई बजाते हुए राजाके पास गये और उनसे ठहरनेके लिये स्थान मांगा। राजाने मन्त्रीके घरके पासही एक जगह बतला दी, जिससे नटोंने वहीं पर अपने तम्बू खड़े कर दिये। सेनाके लिये वहाँ पर स्थान न था, इसलिये उन्होंने नगरके बाहर एक तालाबके पास अपनी छावनी खड़ी कर दी। तदनन्तर शामके वक्त कुर्कुटराजकी आज्ञा ले, चुने हुए थोड़ेसे नटलोग राजाके दरबारमें गये और उन्हें अपना गाना सुनाकर प्रसन्न करने लगे। राजाने कहा,—"आज आपलोग थके-पके हैं, इसलिये विश्राम कीजिये, कल आपका नाटक देखा जायगा।" यह सुनकर नटलोग अपने डेरेपर लौट आये। इसी समय किसीने उनके पास मुर्गा देखकर कहा,—"तुमलोग यह बात ख़यालमें रखना कि, यहाँ पर यह मुर्गा न बोलने पाये। यदि मुर्गा बोल उठेगा तो उसका शब्द सुनते ही मन्त्रीका जमाई विदेश चला जायगा और उसका सारा दोष तुम्हारे मत्थे मढ़ा जायगा। इसी कारणसे नगर

समस्त मुर्गे नगरके बाहर भेज दिये गये हैं।"

यह बातें कुर्कुटराजने भी सुन ली, इसलिये उन्होंने भी मौन धारण कर लिया। क्रमशः रात्रि हुई। रात्रिके बाद जब सुबहका समय हुआ, तब कुर्कुटराज लोगोंकी बात भूल गये और सदाकी भाँति जोर-जोरसे कुकडूँकूकी मधुर आवाजें लगाने लगे। इससे प्रातः-कालका समय जानकर मन्दिरोंमें घड़ी घण्टे बजने लगे और लोग निद्रासे उठ उठकर नित्य कर्ममें लगनेकी तैयारी करने लगे।

इधर लीलाधर भी मुर्गेका शब्द सुनते ही ईश्वरका नाम लेकर उठ बैठा और घोड़ेपर सवार हो, उसी समय विदेशकी ओर चल पड़ा। लीलावतीने उसे विदेश न जानेको बहुत ही समझाया, परन्तु इतने दिनोंके बाद यह शुभ मुहूर्त मिलनेके कारण उसने एक क्षण भी लम्ब करना उचित नहीं समझा। इस समय मुर्गेका
२० लीलाधरको तो अमृतके समान मालूम हुआ; पर लीलावतीके लिये वह विषके समान प्रतीत होने लगा। वह बेचारी पतिके वियोगसे मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर पड़ी। कुछ समयके बाद जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब वह विलाप करते हुए कहने लगी,—"हा दैव! न जाने किस वैरीने मुर्गा रखकर मेरा इस

प्रकार अहित किया है ! नगरमें ऐसा कौन मनुष्य है, जिसने मेरे पिताकी आज्ञाका उल्लंघन कर मुर्गा रखनेका साहस किया है ? हे विधाता ! तूने मुर्गा न बनाया होता, तो आज इस तरह मेरे पतिका वियोग तो न होता ?"

इसके बाद लीलावतीने तुरन्त अपने पिताको बुलाकर, उन्हें पतिके विदेश-गमनका हाल कह सुनाया। साथही उसने आग्रहपूर्वक कहा कि,—"जिस मुर्गेने मेरे साथ शत्रुकासा व्यवहार किया है, उसे किसी तरह भी खोजकर मुझे ला दीजिये !"

पुत्रीके कहने पर मन्त्रीने मुर्गेकी खोज लगानेके लिये चारों ओर अपने आदमी दौड़ा दिये। वे समूचा शहर देख आये, पर कहीं भी मुर्गेका पता न चला। अन्तमें उन्हें मालूम हुआ कि नटोंके पास एक मुर्गा है, इसलिये उन्होंने मन्त्रीको इसकी खबर दी। मन्त्रीने अपनी पुत्रीसे कहा,—"बेटी ! वह मुर्गा तो उन नटोंके पास है, जो कलही यहाँ पर आये हुए हैं। वे परदेशी हैं, साथही हमारे अतिथि भी हैं, इसलिये उनसे मुर्गा माँगना ठीक नहीं। नटलोग बड़े हठीले होते हैं। शायद माँगने पर भी वे मुर्गा नहीं देंगे। फिर, जो होना था सो तो हो ही चुका, इसलिये अब तुम्हें मुर्गेके लिये आग्रह न करना चाहिये।"

लीलावतीने कहा,—"नहीं, पिताजी ! वह मुर्गा तो मेरा परम शत्रु है। विना उसके प्राण लिये मुझे शान्ति नहीं मिल सकती ? जिस तरह हो, उसे अवश्यही ला दीजिये। जबतक मुझे वह मुर्गा न ला दिया जायगा, तब तक मैं अन्न-जल न ग्रहण करूँगी।"

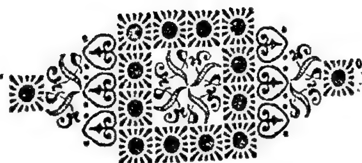
पुत्रीकी यह कठिन प्रतिज्ञा सुनकर मन्त्री चिन्तामें पड़ गया। उसे कोई दूसरा उपाय न सुझायी दिया, इसलिये उसने नटको अपने पास बुलाकर उससे वह मुर्गा दे देनेको कहा। इस पर नटने कहा कि,—"हे मन्त्रीजी ! हमें बड़ाही दुःख है कि वह मुर्गा हम आपको न दे सकेंगे। उससे एक तो हमारी जीविका चलती है। फिर स..., वह हमारा राजा है। आपकी पुत्री उस पर ... हो गयी है, पर जब तक हमारे शरीरमें प्राण है, तब तक कोई उसका बालभी बाँका नहीं कर सकेगा। हमलोग पाँच सौ आदमी तो उसके लिये प्राण देनेको तैयार ही हैं, किन्तु हमारे साथ और भी सात हजार सवार हैं, जो केवल इसकी रक्षाके लियेही हमारे साथ रहते हैं। यहाँ पर उनके ठहरने की जगह न होनेके कारण उन्होंने

नगरके बाहर डेरा डाला है। यदि यह मुर्गा आज्ञा दे तो हमलोग एकबार बड़ेसे बड़े राज्यको भी मिट्टीमें मिला दे सकते हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो जरा सिंहलराजसे पुछवा लीजिये, कि इस मुर्गेके पीछे उनकी कौनसी गति हुई थी। किसकी मजाल है जो उसकी ओर आँख उठाकर देख सके ? हम तो आपसे यही कहेंगे, कि आप इस मुर्गेकी बात छोड़ दीजिये। यह कोई मामूली मुर्गा नहीं है। इसे आप पानेकी आशा न कीजिये।

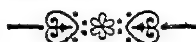
नटराजका यह उत्तर सुनकर, मन्त्री आश्चर्य-चकित हो गया। उसने फिर अपनी पुत्रीको समझाते हुए कहा,—"बेटी ! मैंने नटोंको खूब समझाया पर वे किसी तरह राजी नहीं होते, इसलिये तुम इस जिद्दको छोड़ दो। इसबार लीलावती कुछ समझ गयी, पर उसने मुर्गेको पाये बिना अन्न-जल ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी, इसलिये एकबार उसके पास मुर्गेको लाना जरूरी था। मन्त्रीने नटराजको बुलाकर कहा,—"आप एकबार थोड़ी देरके लिये वह मुर्गा ला दीजिये। मैं उसे ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रूपमें लौटा दूँगा। यदि आपको विश्वास न हो, तो तब तकके लिये मेरे पुत्रको अपने पास

लीजिये । जब मैं आपका मुर्गा लौटा दूँ, तब आप उसे भी लौटा दीजियेगा ।"

मन्त्रीका अत्यन्त आग्रह देखकर नटराजने उसकी बात मान ली और मन्त्री-पुत्रको अपने पास रखकर, कुक्कुटराजका पींजड़ा उसे दे दिया ।



उन्नीसवाँ परिच्छेद



वियोग का अन्त



कुकुटराजका नेत्ररञ्जक रूप देखते ही, लीलावतीका रोष हवा होगया। वह उलटे उसे प्यार करने लगी। वह अपनी गोदमें पींजड़ेको रखकर कुकुटसे कहने लगी कि,—"हे पक्षीराज! तुमने व्यर्थही क्यों मेरे साथ यह शत्रुकासा व्यवहार किया? मालूम होता है कि तुम बाहरसे भले, किन्तु भीतरसे बुरे हो। तुम्हारा शब्द मेरे प्रियतमके वियोगका कारण बना है। तुम इस पापसे किस तरह छूट सकोगे? तुम तो सोनेके पींजड़ेमें बैठ कर निरंतर मौज करते हो, इसलिये तुम्हें पराये दुःखकी क्या खबर? परन्तु हे कुक्कुटराज! पतिका वियोग स्त्रीके लिये बहुतही असह्य होता है। तुम पक्षी हो। पक्षी भी अपनी जीवन-संगिनीके व्याकुल हो उठते हैं। फिर हम तो मनुष्य ठ

एक स्त्री अपने पतिके बिना कैसे रह सकती है ? तुमने पूर्वजन्ममें इस तरह न जाने कितने दम्पतियोंका वियोग कराया होगा, इसीलिये मालूम होता है कि इस जन्ममें तुम पक्षी हुए हो। तुम जरा अपने हृदयमें सोचो पक्षियोंकी जाति ही अविचारिणी होती है। इसप तुम तो और भी निष्ठुर तथा निर्मोही मालूम होते हो यदि तुम जरा भी विचार रखते और आज सुबह आवाः न लगाते, तो मुझे अपने पतिका वियोग न होता हे पक्षीराज ! तुम्हें तो मुझ पर जरा भी दया न आयी पर मुझे तो तुम्हारा रूप देखकर दया आ रही है।"

लीलावतीके यह दुःखपूर्ण और मर्मस्पर्शी वच सुनकर कुकुटराजको अपनी पूर्वावस्थाका स्मरण हो आया। उसी समय उनकी आँखोंसे अश्रु-धारा व निकली और वे मूर्च्छित होकर पींजड़ेमें गिर पड़े उनकी यह अवस्था देखकर लीलावती घबड़ा गयी उसने उन्हें पींजड़ेसे निकालकर अपनी गोदमें बैठाया और विविध उपचार कर उन्हें होशमें लानेका यत्न करने लगी। कुकुटराजको होश आनेपर उसने कहा,—"हे विहंगराज ! मैंने तो सरल स्वभावसे ही सारी बातें कहीं थीं, तुम पर मैंने क्रोध भी न किया था, फिर तुम इस तरह दुःखी क्यों हो गये ? मुझे तो

अपने प्यारेके वियोगका दुःख है, इसीलिये मैंने यह सब बातें कहीं थीं, परन्तु तुम्हें ऐसा कौनसा दुःख है, जिसके कारण तुम मूर्च्छित हो गये ? मुझे तो लेनेके देने पड़ गये। मैं तो समझती थी कि तुम मुझे सान्त्वना दोगे, परन्तु मुझे उल्टी तुम्हें सान्त्वना देनी पड़ती है। हे कुर्कुटराज ! यह सब देखते हुए तो मुझे यही मालूम होता है कि, तुम मुझसे भी अधिक दुःखी हो। तुम्हारे इस दुःखके सामने तो मैं अपने दुःख भूल रही हूँ। क्या तुम अपने दुःखकी बात मुझसे न कहोगे ?"

लीलावतीकी यह बात सुनकर कुर्कुटराजने अपने पँजेसे जमीनपर लिखते हुए कहा,—"मैं आभापुरीका चन्द राजा हूँ। मुझे निष्कारण मेरी विमाताने मुर्गा बना दिया है। मैं अपनी रानी गुणावलीके वियोगसे दुःखी हूँ। फिर, एक इसी दुःखसे मेरे दुःखोंका अन्त नहीं है। मुझे इस तरह दर दर नटोंके साथ भटकना पड़ता है। कहाँ मेरा वह नगर, कहाँ मेरा वह राज्य, कहाँ वह मेरी रानी, कहाँ वह मनुष्य-रूपमें रहना और कहाँ यह पक्षी बन कर दुःख भोगना। यह सब देखते हुए तो मेरे दुःखोंका कोई अन्त नहीं है। तुम्हारे पति विदेश गये हैं, वह तो कभी न कभी वापस आयेंगे परन्तु मेरे वियोगका कभी अन्त होगा या

तो ईश्वरही जानता है। हे वहिन! मेरी तो धारणा है कि तुम मेरे समान दुःखी नहीं हो। मेरे और तुम्हारे दुःखमें राई और पर्वत जितना अन्तर है। मेरी रानीके दुःखोंके सामने तुम्हारा दुःख किसी हिसाबमें नहीं है। जरा विचार करो, कि केवल एक दिनके पति-वियोगसे तुम्हारी यह अवस्था हो रही है, तो मेरी रानीकी क्या अवस्था होती होगी। जिसके दुःखोंका कोई वारापार ही नहीं है, उसकी दुःख-धारामें तो तुम वह ही जाओगी।"

कुक्कुटराजके यह वचन सुनकर लीलवती कुछ प्रसन्न हुई। उसे उनके दुःखोंके सामने अपने दुःख तुच्छ प्रतीत हुए। वह उन्हें आश्वासन देते हुए कहने लगी,—"हे राजन्! आप अपने मनमें अधिक दुःख न करें। ईश्वर चाहेगा तो शीघ्रही आपको अपने राज्य और रानी आदिकी प्राप्ति होगी। यदि अच्छे दिन नहीं रहे, तो यह बुरे दिन भी न रहेंगे। मैं आजसे आपको अपना भाई मानूँगी और अपनेको आपकी वहिन समझूँगी। विधाताने यह सम्बन्ध स्थापित करनेके लिये ही मानो आज आपको यहाँ भेज दिया है। परन्तु हम लोगोंका यह मिलन क्षणिक है। जब आपको मनुष्यत्व प्राप्त हो, तब एक भाईके नाते मुझसे अवश्यही मिलियेगा। इस

समय मैंने जो कुछ भला बुरा कहा हो, वह क्षमा करें। आज आपके मिलनसे मेरा सारा जीवन सार्थक हो गया। आप मुझे भूल न जाइयेगा। ईश्वर करे, आपकी आशाएँ शीघ्रही सफल हों।"

इस प्रकार कुकुटराजसे बात-चीत कर लीलावतीने उन्हें नटराजके पास वापस भेज दिया। उनके आतेही नटोंने भी मन्त्री-पुत्रको उसके घर पहुँचा दिया। नटोंको अब वहाँ पर कोई काम न था, इसलिये वे शीघ्रही वहाँसे चल पड़े। अब वे नित्य नये नगर में जाते और वहाँ के राज-परिवारको अपने खेल दिखा कर विपुल पुरस्कार प्राप्त करने लगे। अनेक स्थानोंमें कुकुटराजके लिये उन्हें युद्ध भी करना पड़ा। परन्तु साधारणतः लोगोंको उनके खेल बहुत पसन्द आते थे, इसलिये वे जहाँ जाते थे, वहीं उन्हें धन और सुयशकी प्राप्ति होती थी।

घूमते फिरते वे लोग विमलापुरीमें पहुँचे और जिस स्थानमें माता वीरमतीने अपना था, उसी स्थानमें उन्होंने कुकुटराजने इस स्थानको दे प्रेमलालच्छीके साथ विवा साथ अपूर्व प्रेमालापका उसका वियोग आदि

दृष्टिके सामने उपस्थित होने लगी। वे अपने मनमें कहने लगे,—"यह वही नगरी है, जहाँ आने के कारण मुझे पक्षी होना पड़ा था। अब मैं घूमता-घूमता फिर यहाँ आ पहुँचा हूँ, इसलिये सम्भव है कि यहीं पर मेरे दुःखोंका अन्त भी आ जाय। कहाँ आभापुरी और कहाँ विमलापुरी! इन दोनोंका मिलन सहज न था, परन्तु जीवनमें असम्भव कुछ भी नहीं है। जिसे हम असम्भव समझते हैं, वही किसी दिन सम्भव बन जाता है। मुझे यहाँ आनेकी बड़ी इच्छा थी, पर मैं आ नहीं सकता था। शायद इसीलिये विधाताने मुझे पक्षी बना कर पंख दिये हैं।"

इधर कुकुटराज यह विचार कर रहे थे, उधर नक प्रेमलालच्छीका बायाँ नेत्र फड़क उठा। वह उस य अपने महलमें अपनी सखियोंके साथ बैठी थी। ने तुरन्त उनसे कहा कि,—"प्यारी बहिनों! आज मेरी बाँयी आँख फड़क रही है। सम्भव है कि अब मेरे प्राणनाथ मुझे आ मिलें और हमलोगोंके दुःखद वियोगका अन्त आये। हमारा ब्याह हुए भी अब सोलह वर्ष हो गये। कुलदेवीने भी कहा था कि सोलह वर्षमें इस वियोगका अन्त आयगा। अब यह अवधि भी पूरी हो गयी। किन्तु मैं नहीं समझ सकती, कि यह किसप्रकार होगा? कहाँ

आभापुरी और कहाँ मेरे प्राणनाथ ? यहाँसे जानेके बाद उन्होंने कभी कोई सन्देश या पत्र भी नहीं भेजा है, इसलिये मैं कैसे मान लूँ कि वे अब मुझे दर्शन देनेकी दया करेंगे ? परन्तु देवीका वचन भी मिथ्या नहीं हो सकता क्योंकि लोग कहते हैं कि देववाणी अमोघ होती है। इसकी भी अब परीक्षा हो जायगी। एकबार, जब मैं सोचती हूँ कि मेरे प्यारे हजारों कोसके अन्तर पर हैं, तब मेरा हृदय निराशासे भर जाता है। दूसरी ओर, जब देवीके वचनोंकी याद आती है और आजके शुभ शकुनोंका विचार करती हूँ, तो मालूम होता है कि अवश्यही कुछ भला होनेवाला है। देखें, अब क्या होता है ?"

प्रेमलालच्छीके यह वचन सुनकर सखियोंने कहा,— "प्यारी बहिन ! ईश्वर करें, तुम्हारी धारणा फलवती हो ! पितृ-गृहमें स्त्रीको चाहे जितना सुख हो, परन्तु उसका वास्तविक शान्तिस्थान पति—गृहही है। फिर, आपको तो चन्द राजाके समान प्राणेश मिले हैं। उन्हें जीवन में एकबार भी जो देख लेगा, वह कभी न भूल सकेगा। आपने जप तप भी बहुत किया है। देवीने आपको जो अवधि दी थी, वह बहुत लम्बी थी, किन्तु वह भी पूरी हो गयी। अब यदि आपके पतिदेव आपको आ मिलें तो कोई आश्चर्य नहीं है। जब समय पाकर गूलर

फलती है, करीरमें भी पत्र पुष्प लगते हैं, और खाली सरोवर भी जलसे भर जाता है, तो आपकी मनोकामना क्यों न पूरी होगी ?"

महलमें जिस समय प्रेमलालच्छी और उसकी सखियोंमें इस तरहकी बात-चीत हो रही थी, उसी समय नटोंकी मण्डली कुक्कुटराजके पींजड़ेको साथमें लिये हुए राज-सभामें पहुँची। राजाकी जय मनानेके बाद नटराजाने कहा,—"हे राजन्! धन्य है, आपके इस सोरठ देशको और धन्य है आपकी विमलापुरीको! हमें बहुत दिनोंसे यह नगर देखनेकी अभिलाषा थी, पर आज वह पूरी हुई। हमलोगोंने बहुत देशाटन किया है, परन्तु हमें दो ही नगर दिखायी दिये। एक आभापुरी और दूसरा विमलापुरी। संसारका ई भी नगर इनकी बराबरी नहीं कर सकता।"

इस प्रकार विमलापुरीके नरेशकी प्रशंसा कर, नटोंने नाटक दिखानेकी तैयारी की। प्रथम उन्होंने एक स्थानको पवित्र कर वहाँ पर पुष्पोंकी ढेरी लगायी और उसपर कुक्कुटराजका पींजड़ा रक्खा। इसके बाद एक लम्बा बाँस खड़ाकर, उसे रस्सियोंसे मजबूत बाँध दिया, ताकि वह इधर उधर हिल न सके। सब सामान ठीक हो जानेपर, शिवमाला गहने कपड़ोंसे

सुसज्जित हो, पुरुषका वेश धारण कर, बाँसके पास आकर खड़ी हो गयी। उसका अद्भुत रूप देखकर समस्त सभा चकित हो गयी। राजा भी मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगे। उन्होंने प्रेमलालच्छीको भी खेल देखनेके लिये बुला भेजा। प्रेमलालच्छी पहले ही सुन चुकी थी, कि आभापुरीके कुछ नटलोग यहाँ पर आये हुए हैं और वे अपना खेल दिखाने वाले हैं, इसलिये वह अपनी कई सखियोंके साथ उसी समय राज-सभामें आ उपस्थित हुई और बड़े चावसे नटोंका खेल देखने लगी।

यथा समय कुक्कुटराजकी आज्ञा ले शिवमालाने अपने आश्चर्यजनक खेल दिखाने आरम्भ किये। उसने बाँस और उसकी रस्सियों पर चढ़कर तरह तरहके आसन, नृत्य और कसरतें कर दिखायीं। लोग उसका अद्भुत कला-कौशल देखकर उसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करने लगे। बाँससे नीचे उतरने पर नटी महाराजको प्रणाम कर एक ओर खड़ी हो गयी। सर्वप्रथम महाराजने उसे पुरस्कार देकर सम्मानित किया। चारों ओरसे रुपये पैसे और बहू मूल्य वस्त्र लगी देखते-ही-देखते उसके सामने का बहुत बड़ा ढेर लग गया।

इसी समय कुक्कुटराजकी द जा

उसे देखतेही वे पहचान गये और सोलह वर्षके बाद अपनी प्यारीको देखकर बहुतही प्रसन्न हुए। जड़ वस्तुओंके पैर नहीं होते, इसलिये एक दूसरेसे दूर होनेपर उनका मिलन नहीं हो पाता, परन्तु मनुष्यके पैर होते हैं, इसलिये हजारों कोसका अन्तर होनेपर भी, इच्छा करने पर कभी-न-कभी उसका मिलन हो ही जाता है।

प्रेमलाको देखकर कुकुटराज अपने मनमें कहने लगे कि,—"अब मैं क्या करूँ ? इस समय मैं पक्षी हो रहा हूँ, नहीं तो जी भरकर आनन्द मनाता। ईश्वर करे, मेरी माता करोड़ वर्ष जिये, जिसने मुझे मुर्गा बनाया, वर्ना मैं यहाँ पर किस तरह आता और अपनी प्रियतमाको किस प्रकार मिलता ? इन नटोंका भी भला हो, जो सर्वत्र मेरी जय पुकारते हुए मुझे यहाँ तक ले आये। आज मैंने अवश्यही किसी पुण्यात्माका मुख देखा है, इसलिये आज इतने समयके बाद मेरी प्रियाके दर्शन हुए। आज वियोगका अन्त आकर संयोगका आरम्भ हुआ। आजका दिन मेरे लिये बड़ाही उत्तम है। अब यदि इस नटसे लेकर, प्रेमला मुझे अपने पास रख ले, तो संभव है कि मुझे पुनः मनुष्यत्वकी प्राप्ति हो सके और मेरे सारे मनोरथ भी सफल हो सकें। किन्तु यह सब तभी हो सकेगा, कि जब

शिवमाला मुझे सहर्ष प्रेमलाको दे दे।"

जिस समय कुक्कुटराज इस तरहके विचार कर रहे थे, उसी समय प्रेमलाकी दृष्टि उनपर जा पड़ी। नट-लोग कुक्कुटको प्रणाम करते थे, यह देखकर प्रेमलाको बड़ाही आश्चर्य हुआ। वह ध्यानपूर्वक कुक्कुटराजकी ओर देखने लगी और कुक्कुटराज भी उसकी ओर देखने लगे। दोनोंकी आँखें मिलतेही वे इस तरह उलझ गये, कि दोनोंको अपने तन मनकी भी सुधि न रही।



बीसवाँ परिच्छेद



कुक्कुट पर प्रेमलाका प्रेम



कुक्कुट और प्रेमलाकी आँखें मिलते ही, दोनोंकी टकटकी बँध गयी और किसीमें भी अपनी दृष्टिको उस ओरसे फेर लेनेका सामर्थ्य न रहा। नटोंने अनेक प्रकारके आख्यान महाराजको गाकर सुनाये। उन्हें सुनकर महाराज बहुतही प्रसन्न हुए। इसी समय उनका ध्यान कुक्कुटकी ओर आकर्षित हुआ। उसे देखते ही उनके हृदयमें उसके प्रति प्रेम-भाव उत्पन्न हुआ। महाराजने पींजड़ेको अपने पास मंगाकर कुक्कुटको उससे बाहर निकाला और अपनी गोदमें बैठाकर उसे प्यार किया। पिताके बाद प्रेमलाने भी उसे अपनी गोदमें बैठाया। प्रेमलाके शरीर स्पर्शसे कुक्कुट बहुतही प्रसन्न हुआ। वह मानो उसके हृदयमें प्रवेश करनेकी चेष्टा कर रहा हो। इस भाँति उसके हृदयपर चञ्चु प्रहार करने लगा।

प्रेमला उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। कुर्कुटराज सोनेके पिञ्जरसे तो वाहर निकले, परन्तु प्रेमलाके हृदय पिञ्जरमें अवरुद्ध हो गये। प्रेमलाभी उन्हें वहुत प्यार करने लगी। उनकी प्रवल इच्छा थी कि अव प्रेमलाके ही पास रहा जाय, किन्तु वाचा न होनेके कारण वे कुछ भी वोल न सकते थे। उन्होंने अनेक प्रकारकी प्रेम-चेष्टाएँ कर, प्रेमलाका चित्त चुरा लिया। फलतः वह तन मनसे उन्हें प्रेम करने लगी। वहुत देरके वाद महाराजने कुर्कुटको पींजड़ेमें वन्दकर, उसे नटोंको वापस दे दिया। साथ ही उन्होंने नटराजसे पूछा,—"आप-लोग यह कुर्कुट कहाँसे लाये हैं?"

नटराजने कहा,—"महाराज! यहाँसे अठारह सौ कोसकी दूरी पर आभापुरी नामक एक नगरी है। वहाँ पर चन्द राजा राज्य करते हैं। परन्तु उनकी विमाताने उन्हें छिपा रक्खा है। हमलोगोंने उन्हें नहीं देखा। हमने तो वीरमतीको ही राज करते ... ।
खेल देखकर प्रसन्न होनेपर, उसने
दिया था। सुना है कि राजा
इसे पाला था और वे इसे वहु
किसी तरह भी इसे देनेको
वीरमती इस कुर्कुटसे नाराज

डालती थी। लोगोंने बीचमें पड़कर इसे बचाया। कुर्कुटने इस दुःखके कारण मेरी पुत्री शिवमालाको समझाया और उसके कहनेसे हमलोगोंने इसे मांग लिया। यह समस्त सेना इसीकी है। सबोंने इसे अपना राजा बनाकर इसका दासत्व स्वीकार किया है। आज नव वर्षमें घूमते फिरते आभानगरी से हम यहाँ आये हैं।"

कुर्कुटका यह वृत्तान्त सुनकर सोरठ पति राजा मकरध्वज प्रसन्न हुए। प्रेमला भी उनका नाम सुनकर बहुत प्रसन्न हुई। उसे वह कुर्कुट बहुत प्यारा मालूम होने लगा। पर राजा चन्द इस समय कुर्कुटके रूपमें थे, इसलिये वह उन्हें अच्छी तरह पहचान न सकी।

जिस समय यह नटमण्डली राजा मकरध्वजके यहाँ पहुँची थी, उस समय वर्षाका आरम्भ हो चुका था। [illegible] इधर उधर भटकना ठीक न समझकर नटराजने [illegible]ा,—"हे राजन्! यदि आप आज्ञा दें तो वर्षाके चार महीने हमलोग यहीं पर व्यतीत करें।" राजाने प्रसन्न होकर कहा,—"आपलोग खुशीसे यहाँ पर रह सकते हैं। मुझे भी बड़ी प्रसन्नता रहेगी, क्योंकि मुझे आप-लोगोंसे और आपके इस कुर्कुटसे अत्यन्त प्रेम हो गया है।"

राजाके यह वचन सुनकर नटलोग वहीं पर रहने लगे और निरंतर राज-सभामें उपस्थित हो, गीतगानके द्वारा

राजाका मनोरञ्जन करने लगे।

कुछ दिनोंके बाद, एकदिन राजा मकरध्वजने प्रेमलासे कहा,—"प्यारी पुत्री! पहले तो मैं तुम्हारी बात न मानता था पर अब मुझे विश्वास हो गया है, कि तुम्हारा कहना अक्षरशः सत्य था। सच बात तो यह है कि कर्म जो करता है, वह कोई नहीं कर सकता। प्राणी मात्रको कर्मके ही कारण सुख-दुःखकी प्राप्ति होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परमात्माने अमुख अपेक्षासे कर्मको ही कर्त्तारूपमें विवक्षित किया है। हे पुत्री! तुम्हारे पति यहाँसे बहुत दूर हैं। उनसे मिलना तो कर्माधीन है, परन्तु यदि तुम कहो, तो नटोंसे यह मुर्गा तुम्हें दिला दूँ। इसके लालन पालनमें तुम लगी रहोगी, तो तुम्हारे दिन आसानीसे कट जायेंगे। इसके सिवा हमलोग और कर ही क्या सकते हैं? दैवके सामने किसीका कोई वस नहीं। कर्मकी गति बहुतही विचित्र है"

प्रेमला तो यह चाहती ही थी, इसलिये उसने पिताके वचन सुनकर उसने आग्रहपूर्वक कहा,—"पिताजी! मैं तो स्वयं आपसे इसके लिये प्रार्थना करना ही चाहती थी। मुझे जिस तरह हो, इस कुकुटको अवश्य दिलवा दीजिये। यह मेरे

घरका पक्षी है, इसलिये मुझे बहुतही प्यारा मालूम होता है। मैं इसे अतिथि समझकर अपने पास रखना चाहती हूँ। कृपया किसी तरह भी नटको समझा बुझाकर, इसे मुझे दिला दीजिये।"

राजाने तुरन्त अपने एक अनुचर द्वारा शिवकुमार नटको बुला भेजा। वह उसी समय उनकी सेवामें आ उपस्थित हुआ। राजाने उससे आदरपूर्वक कहा,—"हे शिवकुमार! तुम्हारे पास जो यह कुकुट है, सो मेरी पुत्रीकी ससुरालका है। यह बात बहुतही गुप्त है, इसलिये अधिक स्पष्टतापूर्वक मैं कोई बात नहीं कर सकता, परन्तु यह बतलानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, कि आज सोलह वर्षमें मैंने तुम्हारे मुँहसे राजा चन्दका हाल सुना है। प्रेमलाको भी यह मुर्गा बहुतही प्रिय ाल्म होता है, क्योंकि यह उसके पतिके घरका है। इसलिये, यदि तुम इसे दे दो तो मैं न केवल तु उपकार ही मानूँगा, बल्कि तुम जो कहोगे वह इसके बदलेमें दूँगा। यद्यपि इस विषयमें मेरा जोर नहीं है, फिर भी तुम एक पुरुषरत्न हो, मुझे विश्वास है कि तुम मेरी इच्छा अवश्य पूरी करो

राजाके यह वचन सुनकर नटने कहा,—"हे रा यह कुकुट तो हमारा तन मन और धन है। उसे

किसी तरह नहीं दे सकते। फिर भी, मैं जाकर उससे प्रार्थना करता हूँ। यदि उसकी यहाँ रहनेकी इच्छा होगी, तो मैं उसे सहर्ष यहाँ छोड़ जाऊँगा।"

यह कह शिवकुमार अपने डेरे पर लौट आया और शिवमालाके सामने कुर्कुटराजसे सारा हाल कह सुनाया। उसे सुनतेही कुर्कुटराज बड़े ही प्रसन्न हुए। वे अपने मनमें कहने लगे,—"यह तो बहुतही अच्छा हुआ। रोगी जो चाहता था, वही वैद्यने भी बतलाया। इस राजा, इस नगर और इस कामिनीके संयोगके बिना सौभाग्यका कब सम्भव था? इसे किसी बड़े पुण्यका ही फल समझना चाहिये। यदि शिवकुमार मुझे यहाँपर छोड़ जाय, तो बहुतही अच्छा हो।"

कुर्कुटराजको अत्यन्त प्रसन्न होते देख, शिवमाला तुरन्त समझ गयी, कि वे यहाँ रहनेको राजी हैं। इससे
ह कुछ दुःखी हो गयी और कुर्कुटराजसे कहने लगी,—
हे स्वामिन्! मुझसे ऐसा कौनसा अपराध हुआ है,
सके कारण आप मुझसे असन्तुष्ट हो गये?
ापकी सेवामें कभी कोई त्रुटि नहीं
नि आपको प्राणकी तरह रक्खा है।
ानमें भी कोई भूल नहीं की।
ाजे-महाराजे हम पर अप्रसन्न हुए।

लेकर चारों ओर घूमती रही हूँ। संसारमें घड़ी भरके लिये भी किसीसे नेह-नाता हो जाता है, तो वह उसका आजीवन निर्वाह करते हैं, फिर हमारा और आपका तो नव वर्षका पुराना सम्बन्ध है। मैं नहीं समझ सकती हूँ कि आज एकायक इस मधुर सम्बन्धका विच्छेद आप क्यों कर रहे हैं? हे पक्षीराज! आपके कहनेसे हमने वीरमतीसे कोई दूसरा इनाम न माँगकर, आपहीको माँगना स्वीकार किया और आपने भी अब तक हमलोगों पर पूरा स्नेह रक्खा, परन्तु आज एकायक आप क्यों अलग होने जा रहे हैं? आप चले जायँगे, तो मेरी सेवाओंका बदला मुझे कौन देगा?' क्या आप किसीकी बातोंमें आ गये हैं? यदि नहीं, तो फिर इतने निर्मोही क्यों हो रहे हैं? यदि आपको ऐसा ही करना था, तो पहिलेसे इतना स्नेह भाव क्यों दिखाया?"

शिवमालाकी यह दुःखपूर्ण बातें सुनकर कुक्कुटराजने अपनी बोलीमें उससे कहा,—"हे शिवमाला! तुम ऐसी बातें क्यों कहती हो? मैं नादान नहीं हूँ। मैं सब कुछ समझ रहा हूँ। सज्जनोंका वियोग प्रतिक्षण शूल की भाँति हृदयमें खटकता है। उनका प्रेम तो कभी छोड़ा ही नहीं जा सकता। फिर, तुम्हारा प्रेम तो उस साधारण प्रेमसे भी बढ़कर है। इस प्रेममें तो

उपकारका भी अंश है, इसलिये इसे तो मैं किसी तरह भूल ही नहीं सकता। तुमने मुझपर जो जो उपकार किये हैं, वे मुझे अच्छी तरह स्मरण हैं। तुम्हें स्वयं अपने मुखसे उनका वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। नव वर्षका स्नेह छोड़ना वहुतही कठिन है। तुम्हारा संग मुझे सौभाग्यसे ही प्राप्त हुआ था। ऐसा संग छोड़ना मूर्खही पसन्द कर सकता है। परन्तु हे नट-पुत्री! यह सब जानते हुए भी, मैं यह कार्य करनेको क्यों तैयार हुआ हूँ, इसका एक खास कारण है। तुम्हें वह वतलानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। सुनो, यहाँकी राजपुत्री प्रेमलाका व्याह मेरेही साथ हुआ था। इसी व्याहके कारण मेरी विमाताने रुष्ट होकर मुझे पक्षी वना दिया था। अब इन वातोंके स्मरण मात्रसेही मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है, परन्तु दैव जो दुःख देता है, उसे सहनही करना पड़ता है। तुमने वीरमतीसे छुड़ाकर मुझे यहाँपर पहुँचाया, इसलिये मैं तुम्हारा उपकार अवश्यही मानता हूँ किन्तु प्रेमला मेरे वियोगसे वड़ीही दुःखी हो रही है। उसे यह भी नहीं मालूम कि इस जन्ममें अव पतिसे भेट होगी या नहीं? इसी लिये मुझे यहाँ रहनेकी इच्छा होती है, पर यह तभी हो सकता है, जव तुम इसके लिये सहर्ष मुझे

दे दो। तुम्हें दुःखी करके, या तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध, मैं यहाँ नहीं रहना चाहता। तुमसे मेरा कोई जोरभी नहीं है। मुझे तो तुम जहाँपर ले जाओगी, वहींपर जाना होगा। बकरीका मालिक उसका कान पकड़कर, जिधर उसे ले जाता है, उधरही उसे जाना पड़ता है।"

कुकुटराजके यह वचन सुनकर शिवमाला बहुत उदास हो गयी। उसके दोनों नेत्रोंसे अश्रु-धारा बह निकली। अन्तमें उसने अपने हृदयको दृढ़ करके कहा,—"हे आभा नरेश! आप प्रेमलाके प्राणाधार हैं, यह बात मुझे पहले न मालूम थी। अब मैं समझ सकती हूँ, कि यहाँपर रहनेमें आपका और उसका दोनोंका कल्याण है। अब मैं आपके इस कार्यका विरोध न करूँगी और आपको सहर्ष यहाँपर छोड़ जाऊँगी। मेरे साथ रहनेके कारण, आप अपनी प्यारी पत्नीसे मिल रहे हैं, यह मेरे लिये कम आनन्दका विषय नहीं है। मैं समझती हूँ कि इससे मेरी समस्त सेवाएँ और मेरा सारा परिश्रम सार्थक हो गया है। अपनी सेवाओंका यह फल देखकर मैं अपने जीवनको भी धन्य समझती हूँ।"

इस प्रकार दोनों जनोंमें बात-चीत हो रही थी, इतनेहीमें पुत्रीके अनुरोधसे राजा मकरध्वज स्वयं वहाँ आ पहुँचे। शिवकुमार नटने उनका बहुतही आदर

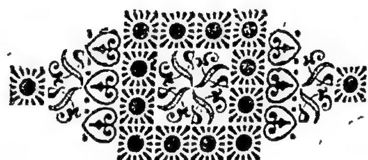
सत्कार किया। तदनन्तर राजाने आसन ग्रहण करनेके बाद नटराजसे कहा,—"मैं उस पक्षीको लेनेके लिये ही आपके पास आया हूँ। यदि आप प्रसन्नता-पूर्वक उसे दे देंगे, तो मैं समझूँगा कि आपने मेरी बात मानकर मेरी पुत्रीको जीवन दान दिया है। इसके लिये मैं आपका चिर-ऋणी रहूँगा। इससे अधिक मैं और क्या कह सकता हूँ?"

नटराजने कहा,—"हे राजन्! आप इस कुक्कुटको साधारण पक्षी न समझें। हमारी समझमें तो यह आभा नरेश ही हैं, इसीलिये इसे देनेकी इच्छा नहीं होती, परन्तु जब आपही स्वयं इसके लिये पधारे हैं, तो मुझे इन्कार करते भी नहीं बनता। मेरी अवस्था तो इस समय साँप-छछूँदर जैसी हो रही है।"

इतनेहीमें शिवमालाने कहा,—"हे राजन्! इस कुक्कुटके कारण न जाने कितने राजे-महाराजे हमलोगोंसे असन्तुष्ट हो गये हैं और न जाने कितने हमसे शत्रुता बाँध बैठे हैं। इसके पीछे हमलोगोंने कष्ट भी बहुत सहन किये हैं, इसलिये इसे देनेकी इच्छा न होना स्वाभाविक है। परन्तु आपकी पुत्री मेरी सखी है इसलिये मैं इसे देनेसे इन्कार नहीं कर सकती। हे राजन् खुशीसे इसे ले जाइये। अपका और इसक

हो। इसकी आप प्राणपणसे रक्षा कीजियेगा और ऐसा समझियेगा मानो यह आभा नरेश ही हैं। इसे साधारण पक्षी समझकर लापरवाही न कीजियेगा। इससे आपकी पुत्रीकी समस्त आशाएँ परिपूर्ण होंगी।"

यह कह, नटी शिवमालाने कुकुटराजको राजा मकरध्वजके हाथोंमें सौंप दिया। राजा उसे पाकर बहुत ही प्रसन्न हुए और नटराजकी इस कृपाके लिये कृतज्ञता प्रकटकर, अपने राज-भवनको लौट आये। इसके बाद राजाने प्रेमलाको अपने पास बुलाकर कहा,—"बेटी! तुम्हारे लिये यह मुर्गा ले आया हूँ। अब तुम इसकी पूरी तरह रक्षा करना।" यह कहते हुए राजाने स्वयं अपने हाथोंसे उसे कुकुटराजका पींजड़ा दे दिया। प्रेमला इस अद्भुत पक्षीको पाकर आनन्दसे खिल उठी वारंवार नटोंको धन्यवाद देने लगी।



इक्कइसवाँ परिच्छेद

सूर्यकुण्डमें मुर्गेका उद्धार।

—=:०:=—

पिताके द्वारा कुक्कुटका पींजड़ा मिलते ही प्रेमलाने उसे उसमेंसे बाहर निकाला और उसे अपने हाथपर बैठाकर उसके सामने अपना हृदय खाली करने लगी। उसने कहा,—"हे कुक्कुट! तू मेरी ससुरालका पक्षी है। आज सोलह वर्षमें वहाँके प्राणीसे मेरी भेट हुई है। तेरे नगरके राजा मेरे स्वामी है, परन्तु जिस प्रकार भिक्षुक रत्नको खो देता है, उसी प्रकार मैंने उन्हें हाथमें आने पर भी खो दिया है।

शरीर सूख गया है, हड्डियाँ निकल
उनसे भेट नहीं हुई। मैंने ऐसा
जिससे उन्होंने मेरी खबर
कर, मुझे एक कोढ़ीके ह
नहीं समझती कि इससे ७

वृद्धि हुई हो। उलटा, इससे मेरा जीवन नष्ट हो गया। उन्हें यह सब किसने सिखाया है? यदि वे गृह-भार उठानेमें असमर्थ थे, तो उन्होंने पाणिग्रहण ही क्यों किया? पाणिग्रहणके बाद तुरन्त ही मुझसे क्यों रूठ गये? हे पक्षीराज! मैंने तो तेरे राजाके समान निर्मोही मनुष्य संसारमें कोई देखाहीं नहीं। व्याहके बाद उन्होंने कभी पत्र द्वारा भी मेरा समाचार न पूछा। कहाँ आभापुरी और कहाँ यह नगरी। दोनोंमें इतना अन्तर है कि वहाँपर मनकी भी गति नहीं हो सकती, तिसपर मेरे नाथने जैसा व्यवहार किया है वैसा तो कोई शत्रु भी न करेगा। न वे यहाँ पर आ सकते हैं, न मैं वहाँपर जा सकती हूँ। ऐसी अवस्थामें मेरे दिन कैसे कटें? फिर, इस संसारमें मुझे कोई ऐसा परमार्थी मनुष्य भी नहीं दिखायी देता, जो मेरे प्यारेके पास उन्हें समझाये और उनका कठोर हृदय द्रवित करे। सोलह वर्ष बीतनेपर भी जिसके हृदयमें स्नेह उत्पन्न न हुआ, उसे कठोर नहीं तो और क्या कहना चाहिये? मेरे पिताने भी उनके पीछे मुझे बहुतही कष्ट दिया, परन्तु इसकी फरियाद मैं किससे और कहाँ करूँ? इस संसारमें प्रेम करना सहज है, परन्तु उसका निर्वाह करना कठिन है। फिर जिसके हृदयमें

प्रेम ही नहीं, उससे प्रेम करना तो जानबूझकर दुःखको निमन्त्रण देना है। तू उनके घरका पक्षी है, तुझे देखकर मेरा हृदय पुलकित हो उठा है, इसीलिये तेरे सामने मैं जी खोलकर अपना दुःखड़ा रो रही हूँ। तुझे देखकर मेरे हृदयको बहुतही शान्ति मिलती है। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है, मानो मैं अपने पतिको ही देख रही हूँ। परन्तु हे पक्षीराज! तू भी उन्हींकी तरह निष्ठुर न हो जाना, जो डूबतेकी तरह यह तिनकेका सहाराभी नष्ट हो जाय!"

प्रेमलाके यह प्रेमपूर्ण वचन सुनकर, कुक्कुटराजके हृदयपर बड़ाही प्रभाव पड़ा, परन्तु पक्षी होनेके कारण वे इनका कोई उत्तर न दे सके। इस प्रकार सौभाग्यवश दम्पतिका मिलन होनेपर भी कर्म जनित महदन्तरके कारण उन दोनोंको उसके लाभसे वञ्चित रहना पड़ा।

जिस समय प्रेमला प्रेमोन्मत्त हो कुक्कुटराजके सामने इस प्रकार अपना दिल खाली कर रही थी, उसी समय वहाँपर शिवमाला आ पहुँची। उसने कुक्कु
गोदमें लेकर खिलाया, उसके शरीर पर सुगं
छिड़के, उसके पास मेवा मिष्टान्न
रिझानेके लिये मधुर स्वरसे कई गा
प्रकार कुक्कुटको प्रसन्न करनेके

कहा,—"आप चार महीने तक इस कुकुटको अपने पास रखिये। चातुर्मास पूर्ण होनेपर जब हमलोग यहाँसे जाने लगेंगे, तब इसे भी लेते जायँगे। तब तक आप प्रेमपूर्वक इसका पालन कीजिये। मैं भी रोज यहाँ आकर इसे देख जाया करूँगी। यदि चार महीनेमें इससे आपका वाञ्छित पूर्ण हो जाय, तो इसे यहाँ छोड़जानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"

इस प्रकार शिवमाला रहस्यपूर्ण वचन कहकर अपने डेरेपर चली गयी, परन्तु भोली-भाली प्रेमला उसकी बातोंका रहस्य न समझ सकी। वह तो कुकुटको गोदमें लेकर, पुनः उसे पूर्ववत् खिलाने और उसका लाड-प्यार करनेमें तन्मय हो गयी।

इसी प्रकार एकके बाद एकदिन व्यतीत होने लगा। प्रेमला सदैव कुकुटराजको अपनी आँखोंके सामने रखती, उनकी भक्ति करती, उनके सामने बैठकर ठंढी सांसे लेती, नेत्रोंसे अश्रुवर्षा करती और वचन द्वारा अपने हृदयका दुःख प्रकट करती। इस समय वर्षा-ऋतुके दिन थे, आकाश बादलोंसे घिरा रहता था, बिजली चमकती थी, और गर्जना होती थी। समस्त संसार इस जल वृष्टिसे शान्त हो जाता था, परन्तु प्रेमलाकी विरहाग्नि इससे शान्त न होकर अधिक प्रदीप्त

हो उठती थी। वह कुकुटराजके निकट तरह तरहके वचनों द्वारा अपना दुःख प्रकट करती थी। शिवमाला की बातोंसे कभी-कभी उसे भ्रम होजाता था, कि यही मेरे नाथ हैं, इसलिये वह आँसूभरे नेत्रोंसे कहने लगती कि,—"प्यारे! यहाँ आ जानेपर भी अब इतना अन्तर किसलिये?"

कुछ दिनोंके बाद चातुर्मास पूर्ण होनेका समय आ पहुँचा। प्रेमलाने इस समय सिद्धाचल की यात्रा करना स्थिर किया। विमलापुरी सिद्धाचलकी तलेटीमें ही अवस्थित थी, इसलिये प्रेमलाने अपनी सभी सखियोंसे भी साथ चलनेको कहा। इसी समय एक ज्योतिषी वहाँ आ पहुँचा। प्रेमलाने उसका बहुत आदर-सत्कार कर उससे पूछा कि,—"हे ज्योतिषी महाराज! क्या आप बतला सकते हैं कि मेरे पतिदेव मुझे कब मिलेंगे? यदि आप कोई शुभ संवाद सुनायेंगे, तो मैं अवश्यही आपको प्रसन्न करूँगी।"

ज्योतिषीने नम्रतापूर्वक कहा,—"हे
मैं आपहीके लिये ज्यौतिषशास्त्रका अ
टक गया था। वहाँसे अनेक शास्त्रोंक
आजही घर वापस आया हूँ। मैं आप
ही आपसे यह कहने आया हूँ ।

आपको आज या कलमें अवश्यही मिलेंगे, यदि मेरा यह वचन सत्य प्रमाणित हो, तो मुझे धन्यवाद दीजियेगा और मेरी विद्याकी प्रशंसा कीजियेगा। मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ, कि मेरा यह वचन हरगिज झूठा नहीं पड़ सकता। आप इस विषयमें जरा भी सन्देह न करें।"

ज्योतिषीके यह वचन सुनकर प्रेमला बहुतही प्रसन्न हुई। उसने यथोचित दानादि देकर उसे विदा किया और पिताकी आज्ञा ले, सखियोंके साथ सिद्ध गिरिकी यात्राके लिये प्रस्थान किया। कुक्कुटराजको भी उसने अपने साथ ले लिया। पर्वतपर चढ़ते समय उसने उन्हें पींजड़ेसे निकाल कर अपने हाथ पर बैठा लिया। कुक्कुटराज पर्वतको देखकर बहुतही प्रसन्न हुए और अपने जीवनको सार्थक समझने लगे। ऊपर पहुँचने पर शिवपदके शिखर समान श्रीऋषभदेव का मन्दिर दिखायी दिया। प्रेमलाने उसमें प्रवेशकर युगादिदेवके दर्शन कर उनकी अष्ट प्रकारी पूजा की। ऋषभदेव भगवानके दर्शन पाकर कुक्कुटराज भी अपनेको धन्य समझने लगे। मूल नायक भगवानकी भक्तिकर मुख्य मन्दिरसे बाहर निकलनेके बाद प्रेमलाने कुक्कुटको साथ लेकर अन्यान्य चैत्योंमें भी जा जाकर दर्शन किये। अन्तमें घूमती फिरती वह रायण वृक्षके पास आ पहुँची।

वहाँपर जमीनपर पड़े हुए पत्तोंको कुकुटराजने अपनी चोंचसे उठालिये, इससे वह मन-ही-मन प्रसन्न होने लगे। क्रमशः पूजनकी समस्त विधि पूर्णकर, प्रेमलाने अपनी सखियोंके साथ सूर्यकुण्ड देखनेके लिये प्रस्थान किया। निर्मल जलसे पूरित और कमलोंसे सुशोभित सूर्यकुण्ड ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह समता रसका कुण्ड हो! उसके जलको स्पर्शकर शीतल और सुगन्धित वायु प्रवाहित हो रहा था। प्रेमला कुकुटराजको अपने हाथपर बैठाकर, उस कुण्डके तटपर बैठ गयी और उस स्वर्गीय वायुका रसास्वादन करने लगी।

सूर्यकुण्डको देखकर कुकुटराज पहले तो बहुतही प्रसन्न हुए, परन्तु बादको अतीत और वर्तमानकी घटनाओंके स्मरण हो आनेसे उनका चित्त बहुतही खिन्न हो गया। वे अपने मनमें कहने लगे,—"अहो! इस प्रकार तिर्यञ्च अवस्थामें मुझे सोलह वर्ष बीत गये! कहाँ स्त्री! कहाँ घरद्वार! कहाँ आत्मीय स्वजन और कहाँ वह मेरा राज्य! इस समय मेरे लिये इन होना न होना बराबर है। मेरी माता वास्त रे, है, क्योंकि उसीने मेरी यह अवस्था की संसार बहुतही स्वार्थपूर्ण है। इसमें नहीं। फिर, नटोंने मुझे अनेक २

मेरे दुष्कर्मोंका अन्त न आया। मैं मनुष्य मिटकर कूड़ा खोदनेवाला मुर्गा हो गया! अब इतने दिनोंके बाद पुनः मनुष्यत्व-प्राप्ति की आशा रखना व्यर्थ है। ऐसी आशा रक्खी ही कैसे जा सकती है? स्त्रीके पास पक्षी होकर रहना तो और भी बुरा है। देखना और जी जलाना कैसे सहन हो सकता है? मेरा समस्त यौवन व्यर्थ ही चला गया। मेरे दुःखोंका स्मरण भी हृदयको टूक टूक कर देता है। ऐसी अवस्थामें जिना भी व्यर्थ है। झूठी आशामें कब तक मैं दिन बिताऊँगा? इस तरह पक्षी होकर रहनेकी अपेक्षा मृत्युको भेटना हजार बार अच्छा है। मैं क्यों न इसी कुण्डमें कूद पड़ूँ, ताकि इन समस्त दुःखोंका अन्त आकर मेरा कल्याण हो जाय। इस संसारमें कौन किसका है? किसकी माता, किसका पिता, किसकी स्त्री किसकी नगरी—कोई किसीका नहीं है। इन पर मोह करना व्यर्थ है। इनमेंसे कोई मेरा न हुआ। फिर मैं ही कब तक इनकी आशा पर जीता रहूँ। इस असार संसारमें तो सब स्वार्थके ही सगे हैं!"

इस प्रकारकी बातें सोचते हुए कुकुटराजको वैराग्य आ गया। वे मन-ही-मन संसारकी असारतापर विचार करने लगे। अन्तमें उन्होंने स्थिर किया कि यदि इसी

सूर्यकुण्डमें कूद पड़ूँ तो बहुतही उत्तम हो। यह सोचते हुए वे उसी समय कुण्डमें जा गिरे। यह देख-कर प्रेमला घबड़ा उठी। उसने कहा,—"हे विहंग-राज! तुमने यह क्या कर डाला? अब मैं जाकर शिवमाला और अपने माता पिताको क्या उत्तर दूँगी? मैंने तो तुझे कोई दुःख भी न दिया था! मुझे मालूम होता है कि शायद तूने मेरी परीक्षा लेनेके लिये ही ऐसा किया है। यदि यही बात है, तो मैं भी तुझसे पीछे नहीं रह सकती। जो गति तेरी होनी होगी, वही मेरी भी होगी।"

यह कहती हुई प्रेमला भी बिना किसीसे कुछ कहे सुने, कुकुटराजके पीछे ही उस कुण्डमें कूद पड़ी। सखियाँ उसे कूदते देख, तुरन्त वहाँपर दौड़ आयी और वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गयीं। चारों ओर इस घट-नासे हाहाकार मच गया।

कुण्डमें कूदनेके बाद प्रेमला कुकुटर
चेष्टा करने लगी। इसी चेष्टामें
मन्त्रित कर वीरमतीने कुकुटराजके पै
प्रेमलाके हाथमें पड़ जानेसे टूट ग
राजा चन्द मुर्गेसे मनुष्य बन
सबको बड़ाही आश्चर्य हुआ।

तुरन्त दोनोंको कुण्डसे बाहर निकाला और उन्हें आशीर्वाद दिया। बाहर निकालने पर प्रेमलाने राजा चन्दको पहचान लिया। इससे उसके आनन्दका वारापार न रहा। उसकी सभी आशाएँ एक साथही पूर्ण हो गयी, देखते-ही-देखते यह समाचार बिजलीकी तरह समूचे नगरमें फैल गया। इससे चारों ओर आनन्दकी हिलोरें उठने लगीं। तीर्थ-निवासी सम्यक्-दृष्टि देवोंने उनपर पुष्प-वृष्टि की। सर्वत्र इस तीर्थकी महिमा फैल गयी। सूर्यकुण्डका जल पापरूपी मलको दूर करनेवाला कहलाने लगा। सब लोग यही समझने लगे, कि इसीके प्रभावसे राजा चन्दको मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है।

प्रेमलाने जब राजा चन्दको पहचाना, तब वह स्वाभाविक लज्जाके मारे सकुचा गयी। फिर भी उसने हाथ जोड़कर नम्रता पूर्वक उनसे कहा,—"हे स्वामिन्! अब इस सूर्यकुण्डके जलसे स्नानकर ऋषभदेव भगवानकी पूजा और भक्ति कीजिये। इस गिरिराजके प्रतापसे हमारे समस्त कार्य सिद्ध हुए हैं, इसलिये इसकी भी सेवा कीजिये। साथही सम्यक्त्व रूपी वृक्षको भक्ति रससे सींचिये, जिससे वह पल्लवित और कुसुमित हो और उसमें विरक्ति रूप फल आयें।



इस समय शासन देवीने तुर[illegible]। (पृष्ठ २६०-२
निकाला और उन्हें आशीर्वाद दि[illegible]

राजा चन्दने प्रेमलाकी बात मान ली। पति-पत्नी दोनोंने स्नानकर उत्तम द्रव्योंसे श्रीऋषभदेव परमात्माकी द्रव्य पूजा की। इसके बाद भावपूजा भी की, जिसका वर्णन अगले परिच्छेदोंमें विस्तार-पूर्वक किया जायगा।



बाइसवाँ परिच्छेद



आनन्दोत्सव ।



अब राजा चन्द श्रीऋषभदेव भगवानकी स्तुति करते हुए कहने लगे,—"हे त्रिभुवनके प्रतिपालक शान्ति-सुधा-रसके चन्द ! भव्य जीवोंके आशा स्थान अपूर्व सुरतरु ! आपके चरण-कमलमें समस्त पुरन्दर मधुकरकी भाँति लीन रहते हैं। आपके गुण अनन्तानन्त हैं। समस्त जगतमें आपकी आज्ञा प्रवर्त्तमान है आपका नामग्रह रूपी वज्र प्राणियोंके कर्मरूप महीधरको विदीर्ण कर देता है। आप अनुभव रसके सिन्धु हैं अन्यान्य देव आपके निकट किसी हिसाबमें नहीं। आप केवलज्ञानसे जगत्-चक्षु—सूर्यके समान हैं। अन्यान्य देव हरि, हर ब्रह्मा प्रभृति आपके समक्ष खद्योतके समान हैं। यदि समुद्रके समस्त जलकी स्याही बनायी जाय, तब भी आपके गुण लिखे नहीं जा

सकते, क्योंकि वे अनन्त हैं। आप शिवगिरिकी गुफामें रहनेवाले पञ्चानन हैं। आपकी सभामें अच्युतेन्द्रादिक भी सेवक बनकर रहते हैं। अन्यान्य देव तो साधारण हस्तीके समान हैं, पर आप गन्ध हस्तीके समान हैं। जिस प्रकार गन्ध हस्तीके मदकी सुगन्धसे अन्यान्य हस्तियोंका मद गलित हो जाता है, उसी प्रकार आपके गुणानुवादके निकट अन्य देवोंका भी मद गलित हो जाता है। आप अपूर्व गरुड़ हैं, क्योंकि कर्मरूप विषधर आपसे भय खाकर दूर भाग जाते हैं। जो भव्य जीव आपको नमस्कार कर लेते हैं, उन्हें फिर दूसरेके सामने शिर नहीं झुकाना पड़ता, क्योंकि कल्पवृक्षकी छाया त्यागकर कँटीले पौधोंका आश्रय कोई कैसे पसन्द कर सकता है? आपके आराधन रूप जलधरसे भव रूपी दावानलका ताप शान्त हो जाता है। आप गुणरूप मणिके रोहणाचल हैं और परिसह-उपसर्गादि सहन करनेमें सर्वसहा—वसुन्धराके समान हैं। आप कर्मरूप सिंहको परास्त करनेमें अपूर्व अष्टापदके समान हैं। आपकी शक्ति अपरम्पार है। हे भगवन्! मेरी स केवल यही बीनती है, कि मुझे ज अपनी सेवा-भक्ति देते रहियेगा।"

इस प्रकार परमात्माकी स्तुति

चन्द अपने मनमें कहने लगे,—"अहो! कहाँ मैं और यह कहाँ गिरिराज। मेरे पूर्व पुण्योंके उदयसे ही इस महान् यात्राका लाभ हुआ है।" इस प्रकार सोचते हुए पति-पत्नी दोनोंजन जिन-मन्दिरके बाहर आये। वहाँपर चारणश्रमण मुनिको देखकर वे दोनों उनकी वन्दना करने लगे और उनके निकट धर्मोपदेश श्रवण करने लगे। तदनन्तर गिरिराजकी प्रदक्षिणा कर, वे अपने मानव जीवनको सार्थक समझने लगे।

इधर विमलापुरीमें, एक दासी दौड़ती हुई राजा मकरध्वजके पास पहुँची और उन्हें यह खुश खबर सुनाते हुए कहा,—"महाराज! सूर्यकुण्डके प्रभावसे राजा चन्दको कुकुट योनिसे पुनः मनुष्यत्वकी प्राप्ति हुई है।" यह सुनकर राजा बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने दासीसे इस घटनाका विस्तृत समाचार पूछा और उसे इनाम-इकरार देकर सन्तुष्ट किया। नगरमें चारों घर घर यह बात फैल गयी। नगरवासियोंको भी इससे बहुत आनन्द हुआ। सर्वत्र आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा। लोग राजा चन्दको देखनेके लिये बहुतही उत्सुक हो उठे और परस्पर बात-चित करने लगे, कि परमात्माने आज यह पूरी कृपा की है।

इस खुशीके उपलक्षमें राजा मकरध्वज और उनकी रानीने बड़ी सजधजसे एक दरबार का आयोजन कराया। इसमें सभी मन्त्री और अधीनस्थ राजे निमन्त्रित किये गये। वे भी यह समाचार सुनकर कदम्ब-पुष्पकी भाँति विकसित हो उठे। महाराजने शिवकुमार नट और शिवमालाको भी निमन्त्रित किया और सबके सामने उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कहा कि,— "आपहीके कारण हमें यह परम लाभ हुआ है, इसके लिये आपका जितना उपकार माना जाय उतनाही कम है।" महाराजके इन वचनों और राजा चन्दकी मनुष्यत्वकी प्राप्तिसे नटराज और शिवमालाको भी असीम आनन्द हुआ। इसके बाद महाराजने उन सैनिकोंको, जो राजा चन्दकी रक्षाके लिये सदैव उनके साथ रहते थे, बुलाकर यह हाल कहा। वे भी यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उसके बाद राजा मकरध्वज इन सब लोगोंको साथ ले विमलागिरिकी ओर गये। वहाँपर राजा चन्दसे भेट की। इस समयका दृश्य बहुतही मनोरम था। दोनों ओरसे मानो प्रेम और आनन्दका मिलन हो रहा था। दर्शक भी आनन्द लगा रहे थे। इस प्रेम मिलनके बाद अपने ससुर तथा समस्त समुदायके स

मन्दिरमें गये और परमात्माके दर्शनका अनुपम लाभ प्राप्त करने लगे।

इसके बाद प्रेमलाने माता-पिताको प्रणाम करते हुए कहा,—"आपके आशीर्वाद और पुण्य-प्रतापसेही आज मैं अपने स्वामीको प्राप्त कर सकी हूँ। यह आभापुरीके राजा हैं। इनके पिताका नाम वीरसेन है। सूर्यकुण्डके जलके प्रभावसे इन्हें कुक्कुट योनिसे पुनः मनुष्यत्वकी प्राप्ति हुई है। अब आप अपने दामादको देखिये और इन्हें अच्छी तरह पहचान लीजिये। इस संसारमें अनेक बार समान रूप-रंगके मनुष्य भी दिखायी देते हैं, परन्तु आपके दामाद जैसा मनुष्य कहीं मिलना कठिन है। ईश्वरने आज मेरा कलंक दूर कर, मुझे चन्द्रसे भी अधिक उज्ज्वल बना दिया है। मैं समझती हूँ कि गिरिराजकी सेवासे ही मेरी और इनकी आशा सफल हुई है।"

पुत्रीके यह वचन सुनकर सौराष्ट्रपति राजा मकरध्वजको बहुतही आनन्द हुआ और वे स्नेहपूर्ण दृष्टिसे राजा चन्दको देखने लगे। सासने मोतियोंकी वर्षाकर दामादका स्वागत किया और श्वसुरने उन्हें गलेसे लगा लिया। राजा चन्दके अधीनस्थ राजाओंने भी आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। नट मण्डलीने तो

चरण स्पर्शकर उनका खूब गुणगान किया। उपस्थित जनताने भी बारंबार हर्षनाद कर राजा चन्दका स्वागत करने में किसी प्रकारकी कोर कसर न रक्खी।

इसके बाद सुन्दर बाजोंके साथ राजा चन्द और मकरध्वज प्रथम दो देवलोकके इन्द्रकी भाँति शोभते हुए अपने परिवारके साथ पर्वतपरसे नीचे उतरने लगे। प्रभुका गुणगान और स्तवन करते हुए जब वे नीचे पहुँचे, तब नगर प्रवेशकी तैयारी होने लगी। राजा मकरध्वजने एक बहुत बड़े जुलूसका आयोजन किया। राजा चन्द एक बड़े हाथीपर सवार होकर सबसे आगे चलते थे। उनके शिरपर छत्र और दोनों ओर चमर शोभा दे रहे थे। राजा मकरध्वज भी एक हाथी पर बैठे थे। प्रेमलालच्छी रथ पर बैठकर चलती थी। अन्यान्य लोग भी अपने अपने योग्य वाहन पर आरूढ़ थे। इस प्रकार बड़ी सज-धजसे यह जुलूस आगे बढ़ा। उस समय जुलूसके साथ बाजे बजने लगे, बन्दीजन विरदावली गाने लगे, याचकोंको दान दिया जाने लगा, चारों ओर ध्वजा-पताकाएँ फरकने लगीं और नट तथा वाराङ्गनाए नृत्य करने लगीं। इस प्रकार . . . आनन्दित करते हुए बड़ी धूमके साथ राजा विमलापुरीमें प्रवेश किया। नगरके स्त्री पुरुष

बरामदें और छतों पर चढ़कर राजा चन्दको देखने और प्रेमलाको आशीश देने लगे।

जुलूस जब राजमहलके समीप आ पहुँचा, तब राजा चन्द और विमलेश हाथीपरसे नीचे उतर पड़े। उस समय राजा मकरध्वजने याचकोंको दान देकर इस प्रकार सन्तुष्ट किया कि, घर पहुँचने पर उनकी स्त्रियाँ उन्हें पहचान भी न सकीं। तदनन्तर शिवकुमार नटको राजा चन्दने अपने पास बुलाकर उसे लाखों रुपये इनाममें दिये जिससे उसकी हैसियत एक छोटे मोटे राजाके समान हो गयी। उन राजओंको भी भेट देकर सम्मानित करना वे न भूले, जो उनकी रक्षाके लिये अपनी सेनाके साथ सदा उनके संग रहते थे। राजा चन्दने उन्हें अपना मित्र बनाकर, अपनी बराबरीका स्थान प्रदान किया। कई दिनों तक सब लोग आनन्दोत्सव मनाते रहे। नगरमें भी बड़ी चहल-पहल और धूम मची रही।

राजा चन्दसे बिदाग्रहण कर, सब लोग अपने अपने वासस्थानको चले गये। चारों ओर आनन्दका अखण्ड साम्राज्य स्थापित हो गया।

इधर प्रेमला आनन्दसे इसतरह प्रफुल्लित हो उठी, कि उसका बदन कंचुकीमें न समा सकता था। अब उसे किसी प्रकारका दुःख न था। वह पिछले

दुःखोंको भी धीरे धीरे भूल रही थी। परन्तु राजा मकरध्वजको अपने पूर्व कृत्योंके लिये बड़ाही पश्चात्ताप हो रहा था। वे एकदिन अपनी पुत्रीके पास आये और आँसूभरे नेत्रोंसे कहने लगे कि,—"प्यारी पुत्री! मैं तुझसे क्षमा मांगने आया हूँ। मुझे अपने अविचार पूर्ण कार्यके लिये बड़ाही पश्चात्ताप हो रहा है। सोलह वर्ष तक मैंने तुझे स्नेहकी दृष्टिसे भी नहीं देखा। पिता होकर भी मैंने पिताका कर्त्तव्य पालन नहीं किया। कोढ़ीके कथनानुसार तुझे विषकन्या मान कर मैं तुझे मृत्यु-दण्ड तक दे बैठा। उस समय यदि मैंने मन्त्रीकी बात न मान ली होती, तो उसका परिणाम कैसा बुरा आता? तेरी रक्षा तेरे भाग्यसे ही हुई है, वर्ना मैंने तो तुझे दुःख देनेमें कोई कसर नहीं रक्खी थी। तू तो पहले ही से कहती थी मेरा व्याह आभा नरेशके साथ हुआ है, परन्तु मैं उन धूर्तोंकी बातोंके फेरमें पड़ गया। मेरी मतिही भ्रष्ट हो गयी थी, इसीलिये मैं तेरे वास्तविक पतिको न पहचान सका। कहाँ यह चन्द राजा और कहाँ वह कोढ़ी? दो और पर्वत जितना अन्तर है। प्या तेरा भाग्यही प्रबल है, जिसके कारण मामला भी अन्तमें ठीक हो गया।

कार्योंके लिये बहुतही पश्चात्ताप हो रहा है। अब तू मुझे अवश्यही क्षमा करेगी और उन सब बातोंको सदाके लिये भूल जायगी।"

प्रेमलाने कहा,—"पूज्य पिताजी! इसमें आपका जरा भी दोष नहीं है। सारा दोष मेरे कर्मका ही है। प्राणीमात्रको जो सुख दुःख मिलते हैं, वे अपने कर्मसे हीं मिलते हैं। अन्य सब बातें तो केवल निमित्त मात्रही हैं। ऐसा उत्तम पति मुझे आपके ही प्रतापसे मिला है। मैं तो गुणहीन हूँ। आपको पिछली बातें याद हीं न करनी चाहिये; क्योंकि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, पर पिता कुपिता नहीं हो सकता। जिन दुर्जनोंने आपको भ्रममें डाला, उनका भी कल्याण हो। यदि वे न होते तो मैं संसारमें कैसे विख्यात होती? मुझे आपके पूर्वकृत्योंके लिये भी रोष नहीं है, क्योंकि उसे मैं अपने ही यका फेर मानती हूँ परन्तु आपसे अब मेरी यही र्थना है कि आप मुझ पर पूरा प्रेम रक्खें और पतिदेव पर भी सुदृष्टि रक्खें, क्योंकि यह नौका अभी इसी किनारे खड़ी है।"

राजा मकरध्वजने कहा,—"प्यारी पुत्री! इन सब विषयोंकी तुझे जरा भी चिन्ता न करनी चाहिये।

इस विमलापुरी और आभापुरीके बीचमें जितना प्रदेश है, वह सब मैंने राजा चन्दको देकर, उन्हें उसका स्वतन्त्र स्वामी बना दिया है। तूने मेरे कुलमें जन्म लेकर मेरा मुख उज्ज्वल कर दिया है। तेरे भाग्यसे ही मुझे ऐसा उत्तम जमाता प्राप्त हुआ है। तेरा चरित्र तो कविलोग गायेंगे और शास्त्रोंमें लिखा जायगा। मैं तो ईश्वरसे यही प्रार्थना करता हूँ, कि वह तुम दोनोंको प्रसन्न रक्खे और तुम्हारे ऐश्वर्य तथा सुखमें दिनोंदिन वृद्धि करे।"

यह कहते हुए राजा मकरध्वज वहाँसे चले गये। उन्होंने चन्द राजाके लिये एक पृथक् राज-भवनका प्रबन्ध कर दिया था। उसी भवनमें राजा चन्द प्रेमलाके साथ रहते और दोगन्दुक देवकी भाँति अनिर्वचनीय सुखोंका उपभोग करते थे।

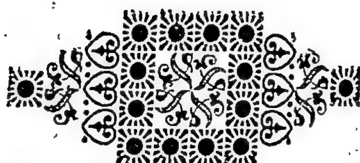
एकदिन विमलेशने राजा चन्दको एकान्तमें बुलाकर पूछा,—"हे चन्द नरेश! आपको किसने मुर्गा बना दिया था? आप यहाँपर किस प्रकार आये थे और प्रेमलासे किस प्रकार ब्याह किया था? ब्याह बाद आप एकायक क्यों और किसतरह गये? यह सब बातें जाननेकी मुझे यदि कोई आपत्ति न हो तो मुझे कह

राजा चन्दने कहा,—"हे राजन् ! मेरे वीरमती नामक एक विमाता और गुणावली नामक एक रानी है। विमाताने गुणावलीको बहकाया। वह उसकी बातोंमें आ गयी। उन दोनोंने एक आम्रवृक्ष पर बैठकर यहाँ आनेकी तैयारी की। यह बात मुझे मालूम हो गयी, इसलिये मैं भी उसी आम्रवृक्षके एक कोटरमें छिप रहा। वीरमतीने नगरके बाहर एक उद्यानमें आम्रवृक्षको खड़ा किया और उससे उतरकर वे दोनों ब्याहका उत्सव देखने आयीं। मैंने भी चुप-चाप कोटरसे निकलकर उनका अनुसरण किया। मार्गमें हिंसक मन्त्रीके आदमियोंने मुझे पकड़ लिया। वे मुझे सिंहल नरेशके पास ले गये। सिंहल नरेश और उनके हिंसक मन्त्रीने मुझे समझा बुझाकर प्रेमलाके साथ ब्याह करनेके लिये मजबूर किया, क्योंकि जिस राज-कुमारके साथ प्रेमलाकी सगाई हुई थी, वह जन्मसे ही कोढ़ी था। ब्याह करनेके बाद मुझसे रंवार चले जानेको कहा गया। मुझे भी शीघ्र पस जाना था, इसलिये किसी तरह मैं यहाँसे भाग निकला और पूर्ववत् उसी कोटरमें जा छिपा। मेरे पीछे मेरी माता और गुणावली भी आपहुँची। इसके बाद हमलोग पूर्ववत् उसी वृक्षपर बैठकर सकुशल आभापुरी पहुँच गये। दूसरे दिन मेरी माताको इस बातका

हाल मालूम हो गया, इसलिये उसने क्रुद्ध होकर मुझे मुर्गा बना दिया। पश्चात् मैं इन नटोंके हाथ पड़ गया और घूमता फिरता यहाँ आ पहुँचा। यहाँपर सिद्धगिरिके प्रतापसे किस प्रकार मेरा उद्धार हुआ और किस प्रकार मुझे मनुष्यत्वकी प्राप्ति हुई, सो सब आप जानते ही हैं।"

राजा चन्दके मुखसे यह वृत्तान्त सुनकर राजा मकरध्वजको बड़ाही पश्चात्ताप हुआ। वे अपने मनमें कहने लगे,—" अहो! मैं इतना चतुर होनेपर भी कोढ़ीकी बातोंमें आ गया। भला हो इस मन्त्रीका, जिसने राजकुमारीको बचा लिया, वर्ना यह दुःख आजीवन शूलकी तरह खटका करता। मुझे इस पापसे छुटकारा मिलना भी असम्भव ही था। वह कोढ़ी भी कितना दुष्ट था, कि उसने अपने कोढ़को छिपानेके लिये मेरी पुत्रीको विषकन्या बतलाया। आज इस कपटका भण्डा फोड़ हुआ है और सत्य बातें प्रकट हो रही हैं। पापका घड़ा वास्तवमें फूटे बिना नहीं रहता। अब इसमें कोई सन्देह न रहा कि उन दुष्टोंने एक साथ मिलकर षड्यन्त्रकी रचना की थी। उन्हें अब कुकृत्यके लिये समुचित दण्ड देना चाहिये।"

यह सोचकर राजा मकरध्वजने अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दी कि,---"जो लोग कारागारमें गिरफ्तार किये गये हैं, उन सभीको मेरे समक्ष उपस्थित करो।" तुरन्त यह आज्ञा कार्यरूपमें परिणत की गयी और पाँचोंजन विचारार्थ राजसभामें उपस्थित किये गये।



तेइसवाँ परिच्छेद



गुणावलीसे पत्र-व्यवहार।



सिंहल नरेश और उनके मन्त्री आदि राज-सभामें उपस्थित किये गये। उन्हें देखतेही राजा मकरध्वजने क्रुद्ध होकर कहा,—"हे दुष्टो! तुमने यह क्या किया? हे सिंहल नरेश! राजपुत्र होकर तुमने मुझसे यह वैर क्यों बांधा? तुमने सोते हुए सिंहको अपने विनाशके लिये क्यों जगाया? तुम्हारे लिये तो यह खासी दिल्लगी रही, पर मेरी पुत्रीके तो प्राणोंपर आ बनी। तुमने पहले मुझे धोखा ... क ... मेरी पुत्रीको कलंक लगाया। ... भी कोई हद है? मैं समझता हूँ ... तुम्हारी आयु घट गयी है। अब ... स तक जी नहीं सकते। फिर, ... मुँह देखना भी महा पाप है।"

इस प्रकार राजा मकरध्वजने सिंहल नरेश आदिका बहुत तिरस्कार किया और वधिकोंको बुलाकर उनका वध करनेकी आज्ञा दे दी। उन लोगोंने अपनी रक्षाके लिया मुँहसे एक शब्द भी न निकाला। शायद ऐसा करनेका उनमें साहस ही न था, क्योंकि उन्होंने बहुत ही भयंकर अपराध किया था। वे मरनेके लिये तुरन्त तैयार हो गये। परन्तु परम उपकारी राजा चन्दसे यह देखा न गया। उन्होंने तुरन्त खड़े होकर कहा,—"राजन्! यह पाँचों जन आपके शरणागत हैं, इसलिये इनका प्राण लेना ठीक नहीं। यदि बुराई करनेवालेके साथ बुराईही की जाय, तो फिर बुरे और भलेमें क्या अन्तर रहा? फिर, इनलोगोंने तो प्रकारान्तर से हमलोगों पर उपकार ही किया है। यदि इन्होंने यह षड्यन्त्र न किया होता, तो हमारा और आपका यह सम्बन्ध कैसे जुड़ता? संसारमें भलाईके बदले भलाई तो बहुत लोग करते हैं, परन्तु जो बुराईके में भलाई करे उसीको प्रकृत सज्जन समझना चाहिये। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है, कि इन्हें छोड़ देनेसे आपका यश बढ़ेगा, लोग आपकी प्रशंसा करेंगे। यदि आप यह सोचते हों कि अपराधियोंको ऐसा दण्ड अवश्यही देना चाहिये, जिससे उन्हें अपनी करनीपर

पश्चात्ताप हो। किन्तु मैं आपसे कहता हूँ कि यह लोग अपने अपराधका काफी दण्ड भोग चुके हैं। इनपर जो बीत चुकी है, वही इन्हें शिक्षा देनेके लिये यथेष्ट है। यह लोग अब ऐसा कुकार्य कदापि न करेंगे। फिर यदि इन सब कार्योंमें आप अपनी पुत्रीके ही कर्मोंका दोष मानते हैं, तो आपको यह भी मानना होगा, कि यह लोग तो केवल निमित्त मात्र थे। यह लोग और करही क्या सकते थे? सिंहल नरेशका पुत्र भी कुष्ट रोगसे ग्रसित है, इसलिये इन्होंने जो कुछ किया है, उसीके वात्सल्यसे प्रेरित होकर किया है। अब इन लोगोंके प्रति दयापूर्ण व्यवहारही करना उचित है।"

राजा मकरध्वजके हृदयपर राजा चन्दकी इन बातोंका बहुत प्रभाव पड़ा, वे उनका वचन अमान्य न कर
उन्होंने उसी समय उनकी २
वन्धन-मुक्त कर दिया।

इस समय प्रेमलाने सोचा
देवका कुछ प्रताप दिखाना
तुरन्त राजसभामें उपस्थित ह
धोकर, वही चरणोदक रा
पर छिड़क । १
सारा

राजा चन्दकी जय पुकार कर आकाशसे पुष्प-वृष्टि की
कुमार कनकध्वज, राजा चन्दके पैरोंपर गिर पड़ा
समस्त सभाजन यह अलौकिक चमत्कार देखकर चकि
हो उठे। इस घटनासे राजा चन्दके सुयशकी भं
यथेष्ट वृद्धि हुई। राजा मकरध्वजने सिंहल नरेशक
कई दिन तक अपना अतिथि बनाकर रक्खा। इसके
बाद सम्मानपूर्वक उन्हें अपने देशके लिये विदा किया।

इस घटनाके कुछ दिन बाद, एक दिन मध्यरात्रिके
समय राजा चन्दकी नींद खुल गयी। वे इध
उधरकी बातें सोचने लगे। एकायक उन्हें रानी
गुणावलीका स्मरण हो आया। वे अपने मनमें कहने
लगे,—"अहो! मैं तो यहाँ आनन्दमें दिन व्यतीत
करता हूँ, परन्तु गुणावलीके दिन न जाने किस तरह
कटते होंगे! उससे बिदा ग्रहण करते समय
मैंने उसे वचन दिया था कि मनुष्यत्व प्राप्त होनेपर
शीघ्रही मैं तुझसे आ मिलूँगा, परन्तु यहाँ प्रेमलाके
प्रेमजालमें उलझ जानेके कारण, मैं उस बातको बिल्कुल
ही भूल गया। परन्तु अब मुझे अपने वचनानुसार
शीघ्रही जाकर उससे मिलना चाहिये। संसारका भी
यही नियम है कि जो हृदयसे प्रेम करता हो, उसको
उसी तरह हृदयसे प्रेम करना चाहिये। गुणावली

विमाताकी बातोंमें अवश्य आ गयी थी, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि वह मुझे बहुतही प्रेम करती है। मुझे भी, जबतक तनमें प्राण है, उसे भूलना उचित नहीं।"

इसी तरहकी बातें सोचते सोचते सवेरा हो गया। राजा चन्दने नित्यकर्मसे निवृत्त हो, गुणावलीको एक पत्र लिखा और उसे एक सेवकको देकर कहा,—"यह पत्र आभापुरी ले जाओ। इसे मन्त्रीको एकान्तमें देना होगा। वह इसे रानी गुणावलीके पास पहुँचा देगा। वहाँपर तुम्हारे आगमनका समाचार किसीको मालूम न होना चाहिये। क्योंकि मेरी विमाताका स्वभाव बहुतही बुरा है। वह तुम्हारा अकल्याण कर सकती है। गुणावलीसे एकान्तमें भेट होनेपर, तुम मेरी ओरसे उसका कुशल समाचार पूछना और उससे कहना, कि किसी प्रकारकी चिन्ता न करे। उससे यह भी कहना कि,— "महाराजने कहा है कि मैं शीघ्रही तुमसे आ मिलूँगा। हमलोग फिर पूर्ववत् आभापुरीमें राज करेंगे और दुर्जन लोग हाथ मलते रह जायेंगे। यहाँ सूर्यकुण्डके प्रतापसे मुझे मनुष्यत्वकी प्राप्ति हुई है। मैं यहाँ
और नित्य तुम्हारा स्मरण करता हूँ। तुम
बातोंमें आकर मुझे भूल मत जाना। विदे

अपेक्षा स्वदेशका काँटा अधिक प्रिय मालूम होता है। मुझे अब वहाँ आनेमें कोई आपत्ति नहीं है, यद्यपि मुझे यहाँ भी कोई कष्ट नहीं है, तथापि वहाँ आकर तुम्हारे अमृतमय वचन सुननेकी तीव्र इच्छा हो रही है। यहाँपर मुझे इस लाभसे अवश्यही वञ्चित रहना पड़ता है। अब ईश्वरसे यही प्रर्थना है कि वह शीघ्रही हम दोनोंको एक दूसरेसे मिलाये। जिस दिन और जिस घड़ीमें हमलोगोंका मिलन होगा, वह दिन ओर वह घड़ी धन्य होगी। तुमसे मिलने पर सब बातें विस्तारपूर्वक कहूँगा। पत्रमें अधिक लिखना सम्भव नहीं। सेवक द्वारा भी सब बातें नहीं कहलायी जा सकतीं, इसलिये इस समय इतनेही समाचारोंसे सन्तोष मानना।"

इस प्रकार सेवकको समझा बुझाकर राजा चन्दनें उसे आभापुरीके लिये रवाना किया। यथा समय वह सेवक आभापुरी पहुँचा और वहाँपर गुप्त रूपसे मन्त्रीको मिला। राजा चन्दने मन्त्रीके नामका भी एक पत्र दिया था। मन्त्री उसे पढ़कर बहुतही प्रसन्न हुआ। सेवकके निवेदन करनेपर वह उसे चुपचाप गुणावलीके पास लिवा ले गया। वहाँपर उसने स्वयं अपने हाथसे गुणावलीको पत्र दिया। पत्र पढ़कर गुणावलीके नेत्रोंसे आनन्दाश्र वह चले। उसने अपने

हृदयसे लगा लगाकर उस पत्रको कई वार पढ़ा ।
वह पत्र इस प्रकार था—

प्यारी गुणावली !

मैं भगवानकी कृपासे यहाँ विमलापुरीमें प्रसन्न हूँ । तुम्हारे कुशल समाचार जाननेके लिये बहुत उत्सुक हो रहा हूँ । मनमें यही इच्छा होती है, कि तुमसे इसी क्षण आ मिलूँ, परन्तु तुम जानती हो कि विमलापुरी और आभापुरीमें बहुत अन्तर है । इसीलिये यह पत्र भेज रहा हूँ । देशान्तरके प्रेमियोंका मिलन पत्रोंद्वारा ही हुआ करता है ।

यहाँका समाचार यह है, कि सूर्यकुण्डके प्रतापसे मुझे पुनः मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है । निःसन्देह इस तीर्थकी बड़ी महिमा है । इसकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही कम है ।

मेरे उद्धारका यह समाचार जानकर निःसन्देह तुम्हें आनन्द होगा । इस पत्रसे शायद तुम्हारा आनन्द और भी बढ़ जायगा । ऐसा होना स्वाभाविक ही है । मुझे भी नित्य तुम्हारी याद आती है, किन्तु साथही तुम्हारी वह कणेरकी छड़ी भी नहीं
मेरे प्रेमका खयाल न किया । सासकी
मेरी उपेक्षा की । मुझे जब इन प

है, तब मेरा जी बहुतही दुःखी हो जाता है।

परन्तु इसमें तुम्हारा क्या दोष ? इसके लिये मैं तुम्हें दोषी नहीं मानता। समस्त संसार यही कहता है, कि स्त्री किसीकी नहीं होती। स्त्री एक ओर, अपने पतिको बेच सकती है, व्याघ्र और सिंहको मार सकती है, चोर और डाकुओंका मुकाबला कर सकती है, दूसरी ओर बिल्लीकी भी आँख देखकर भयसे थरथर काँपने लगती है, इसलिये पण्डितोंका कहना है, कि स्त्रियोंका कोई विश्वास नहीं। वे मनमें कुछ और सोचती हैं और बाहरसे कुछ और कहती हैं। किसीको आँखके इशारेसे समझाती हैं, तो किसीको हाथके इशारेसे। स्त्रियोंका यह सब चरित्र ईश्वरके सिवा और कोई नहीं जान सकता। मनुष्य आकाशके तारे गिन सकता है, समुद्रका पानी तौल सकता है, परन्तु स्त्री-चरित्रका पता नहीं पा सकता। स्त्रियोंने इन्द्र और चन्द्र जैसोंको भी अपने जालमें फसाया है, तो साधारण मनुष्यकी कौन न्कीकत है ? नारी वैसे तो अनाथ और अबला है, परन्तु अनेकबार विषय-वासना के फेरमें अपने हाथोंके बल, वर्षाकी भरी हुई नदी तक र जाती है। अनेक बार अपने पति तकको मार डालती है। नगरमें वह कुत्ते को भी देखकर डरती है,

परन्तु जंगलमें बाघके भी कान पकड़ लेती है। वैसे तो वह रस्सी देखकर भी भागती है, परन्तु काम पड़ने पर साँपको भी हाथसे पकड़ लेती है।

प्यारी! अधिक क्या लिखूँ, राजा भर्तृहरि और विक्रम जैसे प्रतापी पुरुष भी स्त्रीसे पार नहीं पा सके, इसलिये मैं तुम्हें क्या कहूँ? यह तो संसारकी रीति ही है। परन्तु कम-से-कम, मैं तुम्हारी ओरसे ऐसे दुर्व्यवहार की आशा न रखता था। तुम्हें मुझसे अन्तर न रखना चाहिये था। मैं तो तुम्हें सच्चे हृदय से—तन-मनसे प्रेम करता था। ऐसी अवस्थामें तुम्हारा यह दुर्व्यवहार देखकर मुझे दुःख क्यों न होता?

तुमने मुझसे छिपाकर अपनी माससे, नाता जोड़ा, सैर करनेकी ठानी और मुझसे सलाह लेना या पूछना भी उचित न समझा। इसका परिणाम जो होना था, वही हुआ। जहाँ कुमति होती है, वहाँ दुःखका ही निवास होता है। तुम्हें मैं प्यारा न था, सास प्यारी थी। इच्छा होती है कि तुमसे कह दूँ, कि अब उसी सासके साथ मौज़ करो। परन्तु पुनः सोचता हूँ, तो इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। जो भाग्यमें लिखा था, वही हुअ भावीको कोई किसी तरह मेट नहीं
दुर्व्यवहारके स्मरणसे अवश्यही कुछ

किन्तु जब तुम्हारे प्रेम का स्मरण आ जाता है, तब मेरा हृदय सन्तोषसे भर जाता है।

अस्तु ! अब अधिक क्या लिखूँ ? बीती बातोंको बिसार देना ही श्रेयस्कर हुआ करता है, जो प्रेमपात्र है, उसका अपराध सदा क्षम्य ही गिना जाना चाहिये। फिर, मैं यह भी समझता हूँ कि तुमने अपनी इस भूल या इस अपराधके लिये काफी पश्चात्ताप किया है। अतएव यही दण्ड तुम्हारे लिये पर्याप्त समझकर मैं तुम्हें क्षमा प्रदान करता हूँ।

मेरे नेत्र तुम्हारे दर्शनके लिये लालायित हो रहे हैं। मेरा शरीर यहाँ और प्राण वहाँ है। इच्छा होती है, कि इसी क्षण तुमसे आ मिलूँ। एक एक दिन बड़ी कठिनाईसे बीतता है। देखें, ईश्वर अब हमलोगोंको कब मिलाता है।

पत्रका उत्तर शीघ्रही लिखना। अपनी साससे इस विषयमें भूलकर भी कोई बात न कहना। अन्यान्य बातें पत्र--वाहकसे पूछ सकती हो।

तुम्हारा शुभचिन्तक
चन्द्रकुमार

गुणावलीने यह पत्र पढ़नेके बाद पत्र-वाहक से भी समाचार पूछा और उसने भी राजा चन्दकी बतलायी

हुई सब बातें उसे कह सुनायी। यद्यपि पत्रमें राजा चन्दने गुणावली को कुछ खरी खोटी भी लिखी थी। तथापि उसे पत्र पढ़कर आनन्द ही हुआ। उसने उसी समय उसका उत्तर लिखकर पत्र-वाहकके हाथमें रक्खा और उसे सम्मानपूर्वक चुपचाप बिदा कर दिया। परन्तु जिसप्रकार पुष्प खिलनेपर उसकी सुगन्ध प्रकट हुए बिना नहीं रहती, इसी प्रकार यह समाचार भी छिपा न रह सका। आभापुरीमें शीघ्रही चारों ओर यह बात फैल गयी, कि राजा चन्द मुर्गेसे पुनः मनुष्य हो गये हैं। जिधर देखो उधर यही चर्चा हो रही थी, सब लोग यही चाहने लगे, कि कब वें आयें और कब उन्हें देखकर अपने नेत्रोंको तृप्त करें। समूचे नगरमें केवल वीरमती ही एक ऐसी थी, जिसे यह समाचार सुनकर बड़ाही दुःख हुआ।

अस्तु। रानी गुणावलीका पत्र लेकर वह पत्रवाहक राजा चन्दके पास पहुँचा और उन्हें सब हाल सुनाकर, गुणावलीका पत्र दिया। राजा चन्दने उस पत्रको हृदयसे लगा लिया। फिर वे बड़े प्रेमसे उसे पढ़ने लगे। रानी गुणावलीका पत्र इस प्रकार थाः—

प्यारे प्राणनाथ!

आपका कृपा पत्र मिला। पढ़कर अ

हुआ। आपने पत्रमें जो उलाहने लिखे हैं, वे मेरे अवगुण देखते हुए बहुतही कम हैं। आप लिखने योग्य हैं और मैं सुनने योग्य हूँ। मैं वास्तवमें अवगुणोंकी पिटारी हूँ। किसी तरह भी दया दिखाने योग्य नहीं हूँ। परन्तु आप सागरकी भाँति गम्भीर हैं। आप स्वभावसे ही दूसरोंका भला करते हैं। मेघ जलकी वृष्टि कर सरोवरको भर देता है, किन्तु वह उसका बदला नहीं चाहता। आम्रवृक्ष पत्थर मारनेवालेको भी फल देता है। चन्दन काटनेवालेको भी सुगन्धही देता है। उसी तरह आपने भी मेरे अवगुणोंको हृदयमें न रखकर, अपने सौजन्यका पूरा परिचय दिया है।

वास्तवमें मेरा अपराध बड़ाही अनुचित था। मैंने सासकी बातें मानकर आपको धोखा दिया था। उस समय मैं न जानती थी, कि यह ऐसी है। मैंने वास्तवमें पेट कूटकर पीड़ा बुलायी थी। इसके लिये मुझे बड़ाही पश्चात्ताप हो रहा है। कभी कभी पुण्यकी कमीसे या कर्म-दोषसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मेरे विषयमें भी ऐसा ही हुआ था। सासकी बातोंमें आकर मैं कौतुक देखने गयी थी, पर वहाँपर हँसीसे खसी होगयी। मुझे इसके लिये अब तक पश्चात्ताप

करना पड़ रहा है। यदि मैंने सासुजीसे आपके व्याहकी बात न कही होती, तो ऐसा अनर्थ कदापि न होता। मुझे अपनी करनीका फल भोगना पड़ा। परन्तु मैं अपना यह दुःख किससे कहूँ ? अपनी मूर्खताकी बात किसीसे कहते भी नहीं बनती। पश्चात्ताप करनेसे भी बिगड़ी बात नहीं बन सकती। पानी पीनेके बाद जाति पूछनेसे क्या लाभ ? जो भाग्यमें बदा था, सो भोगना पड़ा। भाग्यके सामने किसीका कोई चारा नहीं।

प्यारे ! आपका वियोग हुए सोलह वर्ष हो चुके। इतने दिनोंमें मेरे ऊपर क्या-क्या बीती है, मुझे कैसे कैसे शारीरिक और मानसिक कष्ट भोगने पड़े हैं, सो मैं ही जानती हूँ। परन्तु आपका पत्र पाकर और यह जानकर कि आप मुझे शीघ्रही आ मिलेंगे, मैं उन सब बातोंको भूल गयी। आज तो मैं आपके मिलनकी कल्पना कर आनन्द-मग्न हो
प्रकारकी आनन्दमय स्वप्न सृष्टिमें विचरण

हे जीवनधन ! आपको पुनः
यह जानकर मैं फूली नहीं समाती
बढ़कर सुख-संवाद दूसरा हो ही
यह बात सासुजीके कानोंमें पड़ेगी
बिना न रहेगी, इसलिये अभी

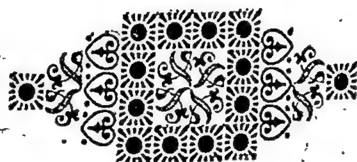
रखियेगा। कुछ दिनोंके बाद उन्हें पत्र भेजकर यहाँपर आनेकी इच्छा प्रकट कीजियेगा, फिर जैसा मौका देखियेगा, वैसा कीजियेगा।

अधिक क्या लिखू ? आप मेरे अपराध क्षमा करें। मेरे अवगुणोंको भूल जायें और मुझे अपनी दासी समझकर शीघ्रही दर्शन देनेकी कृपा करें।

आपकी दासी

गुणावली

राजा चन्दके हृदय पर इस पत्रका बड़ाही गहरा प्रभाव पड़ा। वे अपने मनमें कहने लगे,—"गुणावली वास्तवमें गुणावली ही है। उसका प्रेम और उसके विचार सराहनीय हैं। ईश्वर वह दिन शीघ्र दिखायें, जब मैं उससे जा मिलूँ और हम दोनोंके इस वियोगका अन्त आये।"



चौबीसवाँ परिच्छेद



वीरमतीका अन्त।



राजा चन्दकी मनुष्यत्व प्राप्तिका समाचार मालूम होते ही वीरमती क्रुद्ध हो उठी। वह कहने लगी,—"संसारमें ऐसा कौन शक्तिमान है, जिसने उसे पुनः मनुष्य बना दिया? सुना है कि वह यहाँ आना भी चाहता है। पर यह सब मेरी ही भूल है, जो मैंने उसे जीता रक्खा। मेरे सामने अभी वह छोटा बच्चा है, फिर भी वह मेरा मुक़ाबला करना चाहता है, परन्तु यह सहज नहीं है। मैं उसे यहाँपर आने ही न दूँगी। मैं स्वयं विमलापुरी जाकर उसका मान-मर्दन करूँगी। ऐसा करनेपर लोग मेरी प्रशंसा भी करेंगे। अब इस घटनासे मुझे भी यह शिक्षा मिली, कि शत्रुको जीता छोड़ देना मूर्खता है।

इसप्रकार विचार कर वीरमतीने

अपने पास बुलाकर उससे कहा,—"गुणावली! मैंने सुना है कि तुम्हारे पतिको विमलापुरीमें मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है और वह यहाँपर आना चाहता है। वह शायद मुझे फिर छेड़ना चाहता है परन्तु यह उसकी भयंकर भूल है। वह मुझसे किसी तरह जीत नहीं सकता। तुम्हें भी यह समाचार मालूम हुआ होगा, परन्तु तुम मुझसे छिपाती हो। यदि तुम्हारी इच्छा हो कि पुनः कोई उत्पात न हो, तो तुम्हें एक पत्र लिखकर उससे कह देना चाहिये कि वह यहाँ आकर राज करनेकी आशा छोड़ दे। साथ ही यह सब बातें बिल्कुल गुप्त रखनी होंगी। किसीसे कोई बात कहनेकी आवश्यकता नहीं। यदि तुम मेरी इस सूचना पर ध्यान न दोगी और मुझे धोखा देनेकी चेष्टा करोगी, तो समझ लेना, कि संसारमें मुझसे बढ़कर बुरा कोई नहीं। मैं उसे समझानेके लिये जरा विमलापुरी जाना चाहती हूँ। तब तक तुम यहाँ आनन्दसे रहो। मैं सम्भव शीघ्रही लौट आऊँगी।"

गुणावलीने कहा,—"पूज्य सासुजी! आप ऐसी बातें क्यों कहती हैं? क्या अब उनका पक्षीसे मनुष्य होना कभी सम्भव है? मुझे तो इस बातपर विश्वास ही नहीं होता। मैंनेतो आपके समान शक्ति-



उन्होंने थोड़ी देर सोचकर कहा,—"हे रानी ! यह कार्य हमसे नहीं हो सकेगा । (पृष्ठ ३२७)

सम्पन्न मनुष्य कहीं नहीं देखा। किसमें ऐसी शक्ति है जो आपका किया मेट सके? मुझे तो यह चण्डू खानेकी गप मालूम होती है। नटोंका इतनी दूर जाना और वहाँपर उनका मनुष्य होना मुझे तो असम्भव ही मालूम होता है। हाँ, आप ऐसा जरूर कर सकती थीं। आपकी इच्छा मात्रसे ऐसा हो सकता था, क्योंकि आपमें दैवी शक्ति है। किसी दूसरेमें ऐसी शक्ति कहाँ? आप विमलापुरी जाना चाहती हों, तो सहर्ष जाइये, मैं मना नहीं करती, परन्तु मेरी समझमें वहाँ जानेसे कोई लाभ नहीं। अच्छी तरह सोच समझ लीजिये, फिर आपको जो अच्छा लगे सो कीजिये।"

यह कह गुणावली वहाँसे चली आयी, परन्तु उसे इस बातकी चिन्ता होने लगी, कि वीरमती कोई नया तूफ़ान न खड़ा कर दे। इधर वीरमती भी निश्चिन्त न बैठी थी। वह जितने मन्त्र-तन्त्र जानती थी, सबोंकी आराधना कर उसने एकत्र किया और उनसे चन्द कहा। वीरमतीकी यह बात पड़ गये। उन्होंने थोड़ी रानी! यह कार्य हमसे

चन्दने सूर्यकुण्डमें स्नान कर मनुष्यत्व प्राप्त किया है। अब उसके विपरीत कार्य करना हमारी शक्तिके बाहर है। इसमें हमारा कोई जोर नहीं चल सकता, क्योंकि उनके रक्षक हमसे अधिक बलवान हैं। इसलिये आप कोई दूसरा कार्य बतलायें, तो उसे हम सहर्ष कर सकते हैं, पर यह कार्य हमसे नहीं हो सकेगा। यदि हमारी सलाह मानें तो आप भी अपने पुत्रपर इतना दुर्भाव न रक्खें और उसे आभानगरीका राज्य सौंपकर उससे हिल-मिल कर रहें। इसके विपरीत आचरण करनेपर आपका भी अकल्याण हो सकता है।"

देवताओंकी यह सलाह वीरमतीके लिये बहुत ही लाभदायक थी, परन्तु "विनाश काले विपरीत बुद्धिः।" इसलिये यह सलाह सुनकर वह और अधिक कुपित हो उठी। देवताओंने फिर भी उसे समझाया परन्तु उसने अपना दुराग्रह न छोड़ा, इसलिये वे अपने अपने स्थान पर चले गये। उनके चले जानेपर वीरमतीने मन्त्रीको बुलाकर, उससे सारा हाल कह सुनाया और विमलापुरी जानेका अपना इरादा भी प्रकट किया। मन्त्रीने कहा,—"आप खुशीसे जाइये, आपको मना नहीं करता। जब तक आप लौटकर आयेंगी, तब तक राज्यका सारा काम मैं सम्हा

रहूँगा। आप इस ओरसे बिलकुल निश्चिन्त रहें।"

मन्त्रीके यह वचन सुनकर वीरमती बहुतही प्रसन्न हुई और मन-ही-मन उसकी प्रशंसा करने लगी। उसने पुनः मन्त्र शक्ति द्वारा समस्त देवताओंको एकत्र किया और उन्हें अपने साथ ले, हाथमें तलवार लिये आकाश मार्ग द्वारा विमलापुरीकी ओर प्रस्थान किया। अभिमानी मनुष्य वास्तवमें किसीकी शिक्षा नहीं मानते। उन्हें समझाने बुझानेसे भी कोई लाभ नहीं होता। वे अपनी सारी शक्ति आजमानेके बाद जब हताश हो जाते हैं, तभी उन्हें अपनी भूल सुझायी देती है। वीरमती सोचती थी कि मैं विमलापुरी पहुँचते ही राजा चन्दको पराजित कर, उसे मार डालूँगी, परन्तु उसे मालूम न था, कि वहाँपर इससे उलटा ही होनेवाला है। यदि वह जानती, कि राजा चन्दका अनिष्ट-चिन्तन करनेसे मेरा ही अनिष्ट होगा और विमलापुरीमें लेनेके देने पड़ जायेंगे, तो वह कदापि इस कार्यके लिये कटिबद्ध न होती। परन्तु भावीके सामने किसीकी एक नहीं चलती। मनुष्यकी बुद्धि भी होनहारके अनुसार ही हुआ करती है।

वीरमतीने देवताओंकी बात न मानकर स्वेच्छ आभापुरीके लिये प्रस्थान किया, इस समय एक-

राजा चन्दके पास जाकर कहा,—"महाराज! हमा
शिक्षा न मानकर, वीरमती आपका विनाश करनेके लि
यहाँपर आ रही है, इसलिये आपको सावधान हो जा
चाहिये। मैं आपको गुप्त रूपसे यह समाचार दे
आया हूँ। यद्यपि आपका पुण्य बड़ाही प्रबल
और वह आपका कुछ भी बिगाड़ न सकेगी, फिर भ
मैंने आपको यह सूचना दे देना उचित समझा, तावि
आप भी उसका मुकाबला करनेके लिये तैयार रहें।"

देवताके यह वचन सुनकर, राजा चन्द बड़ेही प्रसन्न
हुए। उन्होंने विमलापुरीके मार्गमें ही उसका सामना
कर, उसे रोक देना उचित समझा। इसके लिये तत्काल
तैयारी की गयी। बहुत तेज घोड़ोंका एक दल सजाया
गया। राजा चन्द बख्तर और हथियारोंसे सुसज्जित हो,
एक घोड़ेपर सवार हुए और चुने हुए सात हजार
सवारोंको अपने साथ ले, शिकारके बहाने विमलापुरीसे
चल पड़े। कुछ दूर जानेके बाद वीरमती आकाशमार्गसे
आती हुई दिखायी दी। क्रोधके कारण उसका चेहरा
अग्निशिखाके समान लाल हो रहा था। परन्तु चन्द
राजाको तो वह बहुतही भली मालूम हुई। वे
कहने लगे,—"मानो यह मुझे आभापुरी चलनेका
निमन्त्रणही देने आ रही है।"

वीरमतीने भी दूरसे चन्द राजाको अपनी ओर आते देखा। उसने आकाशसेही कहा,—"अरे चन्द! अच्छा हुआ कि तू सामनेही आगया। अब मुझे खोजनेका कष्ट न उठाना पड़ेगा। परन्तु मैं समझती हूँ कि तू अपने पिछले दिन भूल गया है। तुझे तेरी ससुरालवालोंने भी यहाँ आनेसे न रोका। तू आभापुरी भी आनेकी इच्छा कर रहा है पर इतना याद रखना कि ऊँट नागरवेलका पाला नहीं खा सकता। अब तू मेरी ओर क्या देखता है? मैं तुझे कदापि जीता न छोड़ूँगी। तू अपने इष्टदेवका स्मरण कर, मेरे सामने आ, और अपनी तलवारका जौहर दिखला।

राजा चन्दने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि,—"पूज्य माताजी! आप मेरेपर रोष न करें। मैंने तो आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ा। फिर न जाने आप मुझपर क्यों क्रोध करती हैं? जरा यह भी सोचिये कि मुझसे युद्ध करना क्या आपको शोभा देगा? मैं तो आपसे यही प्रार्थना करूँगा कि
लिये बाध्य न करें, किन्तु यदि
तो मैं भी इसके लिये तैयार हूँ।
हूँ कि आपके आगमनका उद्देश्य
दूसरा नहीं हो सकता। मैं

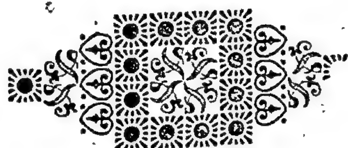
परिचित हूँ, किन्तु मैं उनका वर्णन नहीं करना चाहता। मैं आपसे केवल यही कहना चाहता हूँ, कि इस जीवनका कोई भरोसा नहीं। इसलिये आप मिथ्या अभिमानके फेरमें न पड़ें और कोई ऐसा कार्य न करें, जिससे संसारमें आपकी हँसी हो।”

राजा चन्दके यह वचन सुनकर, वीरमतीका क्रोध और भी भड़क उठा। उसने आवेशमें आकर चन्द राजापर अपनी तलवार फेंककर मारी। वह तलवार उनके बख्तरपर जा लगी, इसलिये उन्हें कोई चोट न आयी, परन्तु वही तलवार वहाँसे उँछल कर वीरमतीकी छातीमें जा लगी, जिससे वह मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ी। वहाँसे वह तलवार फिर राजा चन्दके पास लौट आयी। राजा चन्दने उसे सम्मानपूर्वक अपने पास रख लिया।

तलवारकी चोटसे यद्यपि वीरमती मूर्च्छित हो गयी थी, तथापि अभी वह जीवित थी। राजा चन्दने विष्णु-कुमार और नमुची मन्त्रीका दृष्टान्त सोचकर स्थिर किया कि दुर्जनको उसकी दुर्जनताका दण्ड अवश्यही देना चाहिये। इसलिये उन्होंने अब वीरमती पर दया करना उचित न समझकर उसके पैर पकड़ते हुए आकाश-में घुमाकर, जिसतरह धोबी वस्त्रको पछाड़ता है, उसी

तरह उसे एक शिलापर पटक दिया। वीरमती इस चोटको सहन न कर सकी। उसके प्राण-पखेरु तन-पिञ्जरको छोड़कर उसी समय उड़ गये। अपने दुष्कृत्योंके कारण उसे छठें नरकमें जाना पड़ा। संसारमें पापियोंकी यही अवस्था होती है।

चन्द राजापर देवताओंने पुष्प-वृष्टिकर, आकाशमें उनकी जय पुकारी। वीरमती भवसागरमें डूब गयी। धर्मनिष्ठ पुरुषोंसे जो वैर करता है, उसकी ऐसी ही अवस्था होती है। यथा समय राजा चन्द वीमलापुरी लौट आये। वहाँ उन्होंने विजय दुंदुभी बजवायी। राजा मकरध्वज भी यह हाल सुनकर बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना आधा राज्य राजा चन्दको देकर उन्हें सम्मानित किया। प्रेमलाको भी यह समाचार सुनकर बड़ाही आनन्द हुआ। वह दूने उत्साहसे राजा चन्दकी सेवा करते हुए सांसारिक सुख उपभोग करने लगी। अब राजा चन्दके दिन बड़ेही सुखपूर्वक व्यतीत होने लगे।



पचीसवाँ परिच्छेद



विमलापुरीसे प्रस्थान ।



चन्द राजा द्वारा वीरमती मारी गयी यह समाचार एक देवने आकाशमार्ग द्वारा आभापुरी जाकर गुणावली-को कह सुनाया । यह शुभ संवाद सुनतेही गुणावली बहुतही प्रसन्न हुई । उसने तुरन्त मन्त्रीको बुलाकर, उससे यह हाल कह सुनाया । वह भी इससे बहुतही प्रसन्न हुआ । उसने यह समाचार नगरमें प्रकाशित किया । फलतः नगर निवासी भी आनन्द मनाने लगे । लोगोंको अब यह आशा भी हो चली, कि राजा चन्द शीघ्रही आभापुरी वापस आयेंगे और नगर निवासियोंको दर्शन देकर कृतार्थ करेंगे । नगरके गण्य-मान्य रईसोंने आभापुरीकी प्रजाकी ओरसे राजा चन्दको एक पत्र भी लिखा, जिसमें इस विजयके लिये उन्हें बधाई दी गयी थी और उनसे शीघ्र आभापुरी

आनेके लिये प्रार्थना की गयी थी ।

गुणावलीको अब वीरमतीकी ओरसे कोई भय न था, इसलिये साधारणतः वह प्रसन्न रहती थी, परन्तु पतिव्रता स्त्रीके लिये उसका पतिही सब कुछ हुआ करता है। विना पतिके उसे चैन कहाँ ? गुणावली भी इस दुःखके मारे मनमें दुःखी रहा करती थी। एकदिन वह अपने मनमें कहने लगी,—"मालूम होता है कि अब मेरे प्राणनाथ सौराष्ट्रके ही हो जायेंगे। प्रेमलालच्छीने वास्तवमें मेरा हित किया है, क्योंकि उसके उद्योगसेही पतिदेवको मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है। परन्तु फिर भी वह मेरी सौत ठहरी। वह उन्हें यहाँ क्यों आने देगी ? हाँ, यदि कोई वहाँ जाकर उन्हें समझाये, कि ससुरालमें अधिक दिन रहना शोभा नहीं देता, तो सम्भव है कि वे वहाँसे चले आयें। परन्तु किसको गरज पड़ी है, जो वहाँ जाकर मेरी ओरसे ऐसी वकालत करे ! कुछ लोग कहते हैं कि पुरुषको अपनी पहली स्त्री अधिक प्यारी होती है, किन्तु कुछ लोगोंका कहना है कि नयी वस्तुपर अधिक मोह होता है। इसी कारणसे षोड़श कलापूर्ण होनेपर भी पूर्णिमाके चन्द्रका कोई भाव नहीं पूछता, पर दूजके छोटेसे **चन्द्रको** स देखने दौड़ते हैं। मालूम होता है कि

पतिदेव भी प्रेमलासे अधिक प्यार करते हैं। मैं सासकी बातोंमें आ गयी, इसलिये मुझपर उनका उतना प्रेम नहीं। यह भी सम्भव है कि जहाँ उन्हें मुर्गा होना पड़ा था, वहाँ अब उन्हें आना भी अच्छा न मालूम होता होगा। उन्हें क्या मालूम कि बिना उनके मेरा शरीर सूखा जा रहा है और मेरी रात आँसुओंसे भीगे हुए वस्त्रोंमें ही कटती है। मेरा शरीर उनकी विरहाग्निसे जला जा रहा है। यह अग्नि तो उनके आनेपरही शान्त हो सकती है।"

जिस समय गुणावली यह विचार कर रही थी, उसी समय वहाँपर एक तोता आ पहुँचा। उसने मनुष्यकी बोलीमें कहा,—"हे सुन्दरी! तुझे किसने दुःख दिया है? तू इतनी उदास क्यों हो रही है? मैं देवलोकका पक्षी हूँ। यदि तू मुझसे अपना दुःख कहेगी, तो मैं उसके निवारणका उपाय अवश्यही करूँगा।"

तोतेके यह वचन सुनकर गुणावलीको बड़ाही आश्चर्य हुआ। उसने कहा,—"हे पक्षीराज! मेरे पतिदेव विदेशमें हैं। इसीलिये मैं उदास हो रही हूँ। अधिक दुःखकी बात तो यह है कि मुझे कोई ऐसा मनुष्य भी दिखायी नहीं देता, जो मेरा सन्देश वहाँ ले जाय और वहाँका सन्देश यहाँ लाये। मेरे हृदयका दुःख तो केवल ज्ञानी ही समझ सकते हैं।"

तोतेने कहा,—"बहिन ! तू चिन्ता न कर ! तू मुझे एक पत्र लिख दे, मैं उसे तेरे स्वामी के पास पहुँचा दूँगा।"

गुणावलीने तुरन्त एक पत्र लिख दिया, परन्तु लिखते समय आखोंसे अश्रु धारा बह निकली और समूचा पत्र अश्रुओंसे भीग गया। उसी अवस्थामें गुणावलीने उस पत्रको लपेट कर तोतेको दे दिया। तोता उसे लेकर वहाँसे उड़ चला और कुछही समयमें वीमलापुरी पहुँच कर, राजा चन्दके हाथमें उसने वह पत्र दे दिया।

राजा चन्द बड़ी उत्सुकतासे पत्र खोलकर पढ़ने लगे। अश्रुओंसे भीग जानेके कारण उसकी समस्त लिखावट नष्ट हो गयी थी। यत्र तत्रसे पढ़कर राजा चन्द केवल इतना ही समझ सके, कि वह गुणावलीका पत्र है और उसने शीघ्र आभापुरी आनेका अनुरोध किया है। पत्रका आशय समझकर राजा चन्द विचारमें पड़ गये। वे अपने मनमें कहने लगे,—"मैं यहाँपर आनन्दसे रहता हूँ, किन्तु वहाँपर गुणावली अकेली है।
जाने किसतरह कटते होंगे ? मुझे अब
अपना राज्य सम्हालना चाहिये और
देना चाहिये।"

इन विचारोंके कारण राजा
उन्हें उदास देखकर

आज इसतरह उदास क्यों हो रहे हो ? आपको अपने देशकी याद आ गयी है या बहिन गुणावली की ? क्या आपको यह सोरठ देश भला नहीं मालूम होता ? क्या मुझसे आपकी सेवामें कोई त्रुटि रह जाती है ? प्यारे! यदि गुणावलीके स्मरणसे आप उदास हो गये हों, तो उसे यहाँ बुला लीजिये। मैं उसकी दासी बनकर रहूँगी और उसकी समस्त आज्ञाएँ शिरोधार्य करूँगी। मेरे पिताने भी आपको अपना आधा राज्य दे दिया है। इसे छोड़कर आभापुरी जाना क्या उचित होगा ?"

राजा चन्दने कहा,—"प्यारी! इस समय मेरी आभापुरी शून्य हो रही है। वहाँ कोई राजा नहीं। वीरमतीने अड़ोस पड़ोसके जिन राजाओंको कष्ट दिया है, वे भी इस अवसरसे लाभ उठाकर उपद्रव कर रहे हैं। वहाँसे पत्र भी आया है, इसलिये अब वहाँ गये बिना काम नहीं चल सकता।"

प्रेमला एक चतुर रमणी थी। राजा चन्दकी इन बातोंसे वह तुरन्त समझ गयी, कि वे अब वहाँ गये बिना नहीं रह सकते, इसलिये उसने कोई आपत्ति करना उचित न समझा। राजा चन्द उसे समझानेके बाद, उसके पिताके पास गये। उनसे सारा हाल निवेदन करते हुए उन्होंने कहा,—"आभापुरीसे बुलाहट आयी

है, इसलिये वहाँ गये बिना अब काम नहीं चल सकता। वहाँका काम काज भी सम्हालना बहुत जरूरी है। इस समय बिना राजाके आभानगरी शून्य हो रही है। आपने मुझे यहाँपर इतना सुख दिया है, कि मुझे आपको छोड़कर वहाँ जाना अच्छा नहीं लगता। आपने मुझ-पर बड़ाही उपकार किया है। आपकी सौजन्यता मैं इस जीवनमें हरगिज भूल नहीं सकता। अब यदि आप आज्ञा दें तो मैं वहाँपर जाऊँ और अपना राज्य सम्हालूँ। परन्तु आप मुझे पत्र लिखते रहें, मुझे भूल न जायें और मुझपर ऐसा ही स्नेह भाव कायम रक्खें।"

राजा चन्दके यह वचन सुनकर, मकरध्वजने उन्हें आभापुरी न जानेके लिये बहुतही समझाया, परन्तु जब उन्होंने अपना विचार न बदला, तब राजा मकरध्वजने कहा,—"हे कुमार! बिगड़ा हुआ हाथी हाथमें नहीं रह सकता, किसानको बाँधकर उससे खेती नहीं करा जा सकती, मँगनीके गहने सदा अपने
सकते, मेहमानोंसे घर आबाद नहीं हो
प्रीति चिरस्थायी नहीं हो सकती,
जा सकते हैं। मेरी ओरसे वि
चले जाने पर भी आप मेरे हृद

इस मक

राजा चन्द को बड़ाही आनन्द हुआ। उसी समय मकरध्वजने अपने सेवकोंको तैयारी करनेकी आज्ञा दे दी। राजा चन्दने भी अपने सामन्तोंसे तैयार होनेको कहा। इसके बाद राजा मकरध्वजने प्रेमलालच्छीको बुलाकर कहा,—"बेटी! तुम साक्षात गुणकी पिटारी हो, इसलिये मुझे बहुतही प्यारी हो। तुम्हारे पति आभापुरी जानेके लिये बहुत उत्सुक हो रहे हैं। मैंने उन्हें न जानेके लिये बहुत समझाया, फिर भी वे नहीं मानते। अब बतलाओ, तुम वहाँ जाना चाहती हो या यहाँ रहनेकी इच्छा है?"

प्रेमलाने कहा,—"पिताजी! छाया तो शरीरके साथही रहती है, इसलिये मैं तो अब उनके साथही जाऊँगी। एकबार चूक गयी थी, पर अब न चुकूँगी।"

प्रेमलाका यह विचार जानकर उसकी माताको बड़ाही दुःख हुआ। वह कहने लगी,—"एक माताके लिये पुत्रीको जन्म देनेसे बढ़कर दूसरा दुःख नहीं। पुत्री चाहे जितनी समझदार होती है, चाहे जितनी चतुर होती है, मायके पर उसका चाहे जितना प्रेम होता है, फिर भी वह ससुरके घर गये बिना नहीं रह सकती। घरमें सौ कन्याएँ होनेपर भी वह उनसे आबाद नहीं हो सकता। ससुरालमें धनकी कमी न होनेपर भी और

मायकेवालोंकी आर्थिक अवस्था खराब होनेपर भी पुत्री वहाँसे कुछ-न-कुछ लेही जाना चाहती है। वह सदा अपनी ससुरालवालोंका-ही पक्ष लेती है, मायकेवालोंका ख़याल भी नहीं करती। इसलिये, दश कन्याएँ नहीं भली, पर एक पुत्र भला। उससे माता-पिताका घर तो आबाद रहता है।"

प्रेमलाकी माताने इस तरहकी अनेक बातें सोच डालीं। परन्तु यह सब सोचनेसे क्या लाभ ? पुत्री आखिर परायी सम्पत्ति ठहरी। उसे एक न एक दिन ससुराल भेजनाही होगा, यह सोचकर अन्तमें उसने और राजा मकरध्वजने पुत्रीको विदा करनेकी तैयारी की। उन्होंने प्रेमलाको दास-दासी गहने कपड़े शैय्याएँ, वाहन और मेवा मिष्टान्न आदि देनेमें कोई कोर कसर न रक्खी। उधर चन्द राजाने भी घोड़ेपर बैठकर चलनेकी तैयारी की। इधर प्रेमलाके पिताने

समझती नहीं, इसने कभी घरके बाहर पैर नहीं रक्खा, माता-पिताकी बड़ी दुलारी थी, लाड़ प्यारमें ही बड़ी हुई है, इसलिये इससे कोई भूल हो तो क्षमा कीजियेगा। हमें इसे भेजनेकी जरा भी इच्छा नहीं होती परन्तु हम आपके साथ इसे जानेसे रोक भी नहीं सकते। आप अपने राज्यका समुचित प्रबन्धकर शीघ्रही लौट आइयेगा, क्योंकि यहाँपर जो कुछ हमारा है, वह भी अन्तमें सब आपहीका है।"

इसके बाद उन्होंने पुत्रीको विदा करते हुए उससे कहा,—"प्यारी पुत्री! तुम ससुराल जाकर अपने माता-पिताका मुख उज्ज्वल करना। अपनी सौतको बड़ी बहन समझकर उसका सम्मान करना। तुम्हारे सास श्वसुर तो है ही नहीं, इसलिये अपने स्वामीकोही अपना सर्वस्व समझकर, उन्हें सब तरहका आराम पहुँचाना। कभी भूलकर भी किसी बातके लिये उनसे कलह न करना। हम जानते हैं कि तुम बहुत चतुर हो, तुमसे कोई भूल नहीं हो सकती, फिर भी अपना कर्त्तव्य समझकर हम तुम्हें यह बतला देना चाहते हैं कि घोरसे घोर संकटके समय भी देव, गुरु और धर्मके प्रति कर्त्तव्य पालनमें त्रुटी न होने देना। इन विषयोंमें जराभी उदासीनता न दिखाना। दान पुण्य आदिके

सम्बन्धमें तुमसे अधिक कहनेकी जरूरतही नहीं है। वह तो तुम्हारी नित्य क्रीड़ा है। इस बातका भी खयाल रखना कि मनुष्यही नहीं, किसी पशु पक्षीको भी तुम्हारे द्वारा किसी प्रकारका कष्ट न हो।"

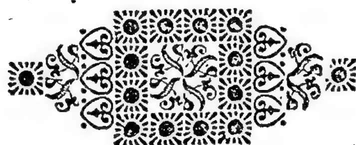
इस प्रकार उपदेश दे प्रेमलाके माता पिताने उसे विदा करनेकी तैयारी की। उस समय प्रेमलाकी माताने अपने अश्रुओंसे प्रेमलाको तर कर दिया। माता पिताका वियोग प्रेमलाको भी बहुत अखर रहा था। उसकी बाल्यावस्थाकी अनेक सखियाँ भी उसे चारों ओरसे घेरे खड़ी थीं। उनसे अलग होनेमें प्रेमलाको बहुतही दुःख हुआ। किन्तु उसने प्रेमपूर्वक वचनोंद्वारा सबको शान्त किया। उस समय देवतागण भी यह दृश्य देखनेके लिये आकाशमें स्तम्भित हो गये थे। प्रेमलाने सबसे मिल भेटकर सजल नेत्रोंसे विदा ग्रहण की। सासने चन्द राजाके ललाट पर तिलक लगाकर हाथमें श्रीफल दिया। इसके बाद चन्द राजाके आदेशानुसार शुभ मुहूर्तमें उनकी सेनाने आभापुरीके लिये प्रस्थान किया।

राजा चन्द भी अपने इस दलके साथ नगरके म भागमें होकर अग्रसर हुए। उनके आगे नौबत ब जाती थी। राजा मकरध्वज, उनके मन्त्री और स

सरदार भी उनके साथ चलते थे। नगरके प्रत्येक चौराहेपर नगर निवासी उनपर मुक्ताफलकी वृष्टि करते थे। युवतियाँ मंगल-गीत गा गाकर राजा चन्द और प्रेमलालच्छीको आशीर्वाद देती थी। इसप्रकार आनन्द-पूर्वक मार्ग अतिक्रमण करते हुए, सबलोग सिद्धाचलके समीप पहुँचे। राजाचन्दने नीचेसे ही उस महातीर्थकी वन्दना कर उसका स्तवन किया। इसके बाद उन्होंने अपने श्वसुरादिको विमलापुरीकी ओर लौटा कर, तेजीके साथ आभापुरीके लिये प्रस्थान किया। शिवकुमारकी नट मण्डली अबतक उनके साथही थी। रास्तेमें जहाँ जहाँ मुकाम होता, वहाँ वहाँ नटलोग नये नये नाटकोंका आयोजन कर, राजा चन्द तथा उनके संगी साथियोंका मनोरञ्जन करते। इसप्रकार अनेक देश विदेश देखते, अनेक राजाओंको वश करते, सेनाको बढ़ाते और अनेक राजकन्याओंसे ब्याह करते हुए क्रमशः राजा चन्द पोतनपुर आ पहुँचे। यहाँपर नगरके बाहर तम्बू खड़े कर सब लोग विश्राम करने लगे।

यह पोतनपुर वही नगर था। जहाँ चन्द राजा कुर्कुटके वेशमें नटके साथ आये थे। पाठकोंको यह भी स्मरण होगा, कि यहाँपर लीलाधर नामक एक श्रेष्ठी पुत्र विदेश जानेके लिये मुर्गेके शब्दकी प्रतीक्षा

करता था और कुक्कुटराजका शब्द सुनते ही वह विदेश चला गया था। दैवयोगसे जिस दिन राजा चन्द यहाँपर पहुँचे उसी दिन लीलाधरका भी विदेशसे आगमन हुआ। उसके आगमनसे उसका सारा परिवार आनन्द मना रहा था। पाठकों को यह पहलेही बतलाया जा चुका है कि लीलाधरकी स्त्री लीलावती कुक्कुटराजको अपना भाई मानकर, उन्हें बड़ा प्रेम करने लगी थी। इसलिये जब उसने राजा चन्दके आगमनका समाचार सुना तो पतिकी अनुमति प्राप्तकर उन्हें अपने यहाँ निमन्त्रित किया और अनेक प्रकारके भोजनादि द्वारा उनकी भक्ति की। राजा चन्द भी उसे अपनी बहिन मानते थे, इसलिये उसे तथा उसकी ससुराल वालोंको वस्त्राभूषण आदि देकर सन्तुष्ट किया। इसके बाद सबसे बिदा ग्रहण कर, वे अपने डेरेपर लौट आये। उसी रात्रिमें एक बड़ीही विलक्षण घटना घटित हुई, जिसका वर्णन अगले परिच्छेदमें किया जायगा।



छब्बीसवाँ परिच्छेद

कठिन परीक्षा।

—=:०:=—

जिसदिन राजा चन्द पोतनपुरमें निवास करते थे, उसीदिन इन्द्रमहाराजने देव-सभामें कहा कि—"जम्बू द्वीपके भरतक्षेत्रमें आभापुरी नामक एक नगरी है। वहाँका चन्द नामक राजा इस समय पोतनपुरमें अवस्थित है। वह बड़ाही सदाचारी है। मनुष्य तथा देवलोकमें अनेक मनुष्य तथा देव हैं, परन्तु उसके समान स्वदारा-सन्तोषी कोई दूसरा दिखायी नहीं पड़ता। उसे उसकी विमाताने मुर्गा बना दिया था, किन्तु अपने सदाचारके प्रभाव तथा सिद्धाचल महातीर्थके स्पर्शसे उसने पुनः मनुष्यत्व प्राप्त किया। उसे सदाचारसे देव भी विचलित नहीं कर सकते। वह इस विषयमें मेरूके समान अटल है।"

इन्द्रके इन वचनोंपर एक देवताको सन्देह हुआ,

इसलिये वह उसीदिन मध्यरात्रिके समय पोतनपुर पहुँचा और उसने देवताओंको भी मोहित करनेवाला अद्भुत विद्याधरीका रूप धारण किया। इसके बाद नगरके बाहर एक उद्यानमें जाकर वह स्त्रियोंकी भाँति करुण स्वरसे रोने कलपने लगा। उसके रोनेकी आवाज कानमें पड़ते ही राजा चन्दका हृदय दयासे द्रवित हो उठा। वे अपने मनमें कहने लगे,—"ऐसा कौन दुःखी मनुष्य है, जो इस प्रकार मध्यरात्रिके समय निर्जन स्थानमें रुदन कर रहा है? वे तुरन्त अपनी तलवार लेकर, जिस ओरसे वह आवाज आ रही थी, उसी ओर चल पड़े। चलते चलते वे उसी स्थानमें जा पहुँचे जहाँ एक निकुञ्जमें बैठी हुई वह विद्याधरी विलाप कर रही थी। कामदेवकी रतिके समान उसका रूप और बहु-मूल्य वस्त्रालङ्कारोंसे सुशोभित उसका शरीर देखकर वे आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने पूछा,—"हे सुन्दरी! तू मध्यरात्रिके समय अकेली यहाँ किस दुःखके कारण रुदन कर रही है। तुझे जो दुःख हो, वह निःसंकोच होकर कह, मैं यथासाध्य उसे दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।"

विद्याधरीने राजा चन्दको अपने मर्माहत करनेकी चेष्टा करते हुए प्रेम

भाषामें कहा,—"हे आभापति ! मैं विद्याधरकी पुत्री हूँ। आपसे अपना वृत्तान्त कहते मुझे लज्जा मालूम होती है। पर मुझे दुःखके मारे आपको कहनाही पड़ता है, कि मेरा पति मुझसे कलह कर इस असहाय अवस्थामें मुझे छोड़कर चला गया है। उसने ऐसा अकार्य किया है, जो पुरुष जातिको शोभा नहीं देता। मैं अनाथ अबला हूँ। अब मुझे समझ नहीं पड़ता, कि मेरी यह जीवन-नौका किस प्रकार किनारे लगेगी ? इसी चिन्तासे व्याकुल होकर मैं रुदन कर रही थी, पर अब मेरे सौभाग्यसे आप यहाँपर आ पहुँचे हैं। साथही आपने भी मेरा दुःख दूर करनेकी इच्छा प्रकट की है, इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप मुझे पत्नी-रूपमें ग्रहण कर, मेरा दुःख दूर कीजिये। इससे संसारमें आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यदि आप वास्तवमें अपनेको क्षत्रीय समझते हों, तो मेरी यह प्रार्थना अमान्य न करें। क्षत्रीयलोग शरणागतका कभी त्याग नहीं करते। प्रार्थना-भंगका प्रायश्चित कितना बड़ा भारी बतलाया गया है सो आपसे छिपा नहीं है। परन्तु ऐसे शूरवीर पुरुष विरले ही होते हैं, जो परायी प्रार्थनाका भंग नहीं करते। आपके आकार प्रकारसे ही मालूम पड़ जाता है, कि आप सच्चे

क्षत्रीयपुत्र हैं, इसलिये मैंने बड़ी आशा और विश्वास-पूर्वक आपसे यह तुच्छ प्रार्थना की है।"

राजा चन्दने कहा,—"हे सुन्दरि! तुम ऐसी अनुचित प्रार्थना क्यों करती हो? क्षत्रीय लोग परस्त्री-लम्पट नहीं होते। जो स्त्री परपुरुषकी इच्छा करती हो, उसकी ओर दृष्टिपात करना भी महा पाप है। फिर, एक पदार्थ चाहे जितना मीठा हो, किन्तु यदि वह जूठा हो जाता है, तो उत्तम पुरुष उसे अपने काममें नहीं लाते। दूसरोंकी जूठन तो काक और शृगाल ही खाते हैं। सिंह तो अपने हाथसे मारे हुए हस्तीको ही भक्षण करता है। इसलिये, हे सुन्दरि! ऐसी अनुचित बात तुम्हें अपने मुँहसे न निकालनी चाहिये। तुम कहो तो मैं तुम्हारे पतिको खोजकर तुमसे मिला दूँ, किन्तु तुम्हारी यह प्रार्थना मैं किसी प्रकार स्वीकार नहीं कर सकता। पर स्त्री पर आसक्त होना अकुलीन मनुष्योंका ही काम है, कुलीन मनुष्योंका नहीं। उत्तम कुलमें पैदा हुए मनुष्य तो प्राण जानेपर भी पाप कार्यमें हाथ नहीं लगाते।"

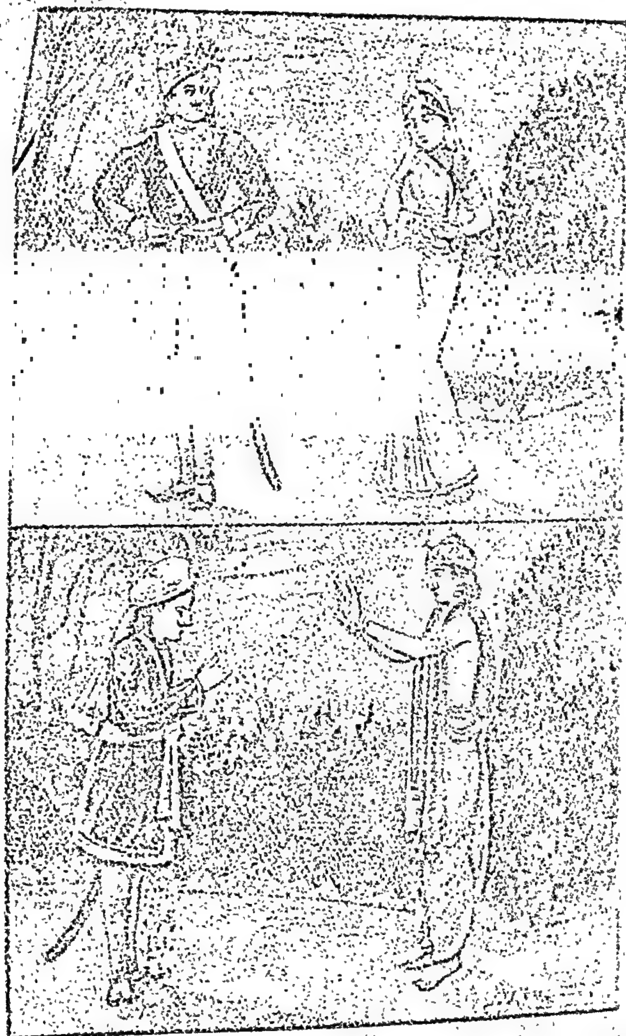
राजा चन्दके यह वचन सुनकर, विद्याधरीने रुष्ट होकर कहा,—"राजन्! यदि तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार न करोगे, तो मैं समझूँगी, कि तुम

क्षत्रीय नहीं हो। निराश होने पर मैं अपने प्राण तक दूँगी और तुम्हारे शिर स्त्री-हत्याका पातक चढ़ाऊँगी, जैसे भी हो, मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर लीजिये!"

राजा चन्दने कहा,—"हे सुन्दरि! स्त्री-हत्याके पातकसे भी सदाचार-भंगका पातक अधिक है। देखो, पूर्वकालमें रामचन्द्रकी स्त्रीकी इच्छा करने पर रावणने अपने प्राण और अपनी सुवर्णपुरी (लंका) दोनोंसे हाथ धोया था। पांचालीका हरण करने पर पद्मोत्तर राजाको अपना राज्य खोनेके सिवा और क्या लाभ हुआ? अहिल्या पर मोहित होनेसे इन्द्रको गौतम ऋषिका शाप मिला और उसके शरीरमें हजार छेद हो गये। हिमाचलकी पुत्री पार्वती पर आसक्त होनेसे भस्माङ्गदको भस्मी-भूत होना पड़ा। इस प्रकार पर-दारा पर आसक्त होनेवाले क्या मनुष्य और क्या देव, सभीको लाञ्छित तथा अपमानित होना पड़ा है। हमारे सामने ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है, जिसमें परस्त्री-गमनसे कोई सुखी हुआ हो। इसके विपरीत जो मनुष्य अखण्ड ब्रह्मचारी रहता है या अपनी विवाहिता पत्नीको छोड़कर, अन्य स्त्रियोंको माता या बहिन समझता है वह संसारमें सुखी होता है। स्त्री तो भवसागरमें डुबानेके लिये बेड़ी या शिलारूप है, इसलिये

चन्द राजा:—

तुम मेरी धर्म-भगिनी या धर्म-माता के समान हो।



...राजन्! धन्य है आपको और आपके मातापिताको, जिन्होंने आप जैसे नर-रत्न को जन्म दिया है।

(पृष्ठ ३[illegible])

जो मनुष्य विवाहिता स्त्रीका भी त्याग करता है, वह मोक्ष-सुखको प्राप्त करता है। परस्त्री रूप लौह-शिलाने अनेक पुरुषोंको भव-कूपमें इस तरह डुबो दिया है, कि फिर कभी भी अपना शिर ऊँचा नहीं कर सके। पर रमणीके प्रसंगसे ललिताङ्ग कुमारको (?) असह्य दुःख सहन करना पड़ा था। मैं उसके समान मूर्ख नहीं हूँ, जो जान बूझकर विपदाओंको निमन्त्रण दूँ। तुम मुझे स्त्री-हत्याके पातकका भय दिखाती हो, परन्तु इस भयके कारण मैं अपना चरित्र नष्ट नहीं कर सकता। इस संसारमें अग्निमें जलने वालेको तो इसी जन्ममें दुःख प्राप्त होता है, परन्तु कामाग्निमें जलनेवालेको तो जन्मजन्मान्तरमें दुःख भोगना पड़ता है। तुम मेरी धर्म-भगिनी या धर्म-माताके समान हो। तुम्हारा जन्म भी उत्तम कुलमें हुआ है, इसलिये तुम ऐसी बातें करना छोड़दो। यह सब तुम्हें शोभा नहीं देता।"

राजा चन्दकी यह अनुपम दृढ़ता देखकर वह देव प्रसन्न हो उठा और तुरन्त विद्याधरी का रूप त्यागकर अपने प्रकृत रूपमें प्रकट हुआ। उसने राजा चन्दके ऊपर पुष्पवृष्टि करते हुए कहा,—"राजन्! धन्य है आपको और आपके मातापिताको, जिन्होंने आप जैसे नर-रत्न को जन्म दिया है। इन्द्रने जैसी आपकी प्रशं

कीथी, यथार्थमें आप वैसेही हैं। मैंने आपकी परीक्षा लेनेके लिये ही यह सब प्रपञ्च किया था, परन्तु आप इसमें न फँसे। मुझे अब विश्वास होगया कि आप पूरे सदाचारी हैं।"

यह कह, वह देव राजा चन्दको नमस्कार कर अपने वासस्थानको चला गया। इधर राजा चन्द भी इस घटनापर विचार करते हुए अपने डेरेपर लौट आये।

दूसरे दिन सबसे विदा ग्रहणकर राजा चन्दने पोतनपुरसे प्रस्थान किया। रास्तेमें उन्होंने अनेक राजाओंको अपने अधीन किया और सब मिलाकर सात सौ सुन्दरियोंसे विवाह किया। कुछ दिनोंके बाद वे आभापुरीके समीप आ पहुँचे। उनके आगमन समाचार सुनकर गुणावली, सुमति मन्त्री और प्रजाजन अत्यन्त आनन्दित हुए। उन्होंने बड़ी धूमसे अगवानी कर राजा चन्दको नगर प्रवेश कराया। राजा चन्दने भी अपनी प्रजाको भलीभाँति सम्मानित किया। नगर प्रवेश करते समय राजा चन्दको देखनेके लिये लोगोंका दल महासागरके समान उमड़ पड़ा। घर घर मङ्गलाचार किये गये। सबके हृदयमें प्रेमका स्रोत प्रवाहित होने लगा। राजा चन्दके आगमनसे मानों सबके घटमें प्राण आ गये।

राजा चन्दके नगर प्रवेशका दृश्य बहुतही मनोरम था। अनेक हाथी, रथ, पैदल और ध्वजा पताकावाले सबसे आगे चलते थे। उनके पीछे सात सौ स्त्रियाँ रथोंमें बैठकर चलती थीं। इस दलके साथ तरह तरहके बाजे भी बजते जाते थे। सबसे पीछे एक बहुत बड़े हाथीपर बैठकर राजा चन्द चलते थे। वे मुक्त हस्तसे याचकोंको दान भी देते जाते थे। नगर-निवासी उनपर कहीं मुक्ता-फलकी वृष्टि करते थे, तो कहीं पुष्पोंकी। रमणियाँ मधुर कण्ठसे स्वागत और आशीर्वादके गाने गा रही थीं। राजा चन्द शिर झुका झुकाकर सबके अभिवादनोंका उत्तर देते जाते थे। वे जिधरही दृष्टि उठाकर देखते, उधरही मानों अमृतकी वर्षा हो जाती थी।

इसी प्रकार धीरे धीरे मार्ग अतिक्रमण, कर, राजा चन्द अपने महलके पास पहुँचे। वहाँ वे अपने हाथी परसे उतर पड़े और समस्त प्रजा तथा मन्त्री आदिको विदाकर अपनी सात सौ रानियोंके साथ उन्होंने अन्तः पुरमें प्रवेश किया। गुणावली उनके पैरोंपर गिर पड़ी। राजा चन्दने उसे बड़े प्रेमसे उठाकर हृदयसे लगा लिया। इसके बाद उन सात सौ गुणावलीके चरण स्पर्शकर, परस्पर खूब

राजा चन्दने प्रत्येक रानीके लिये भिन्न-भिन्न वासस्थानका प्रबन्धकर सबको वहाँपर रहनेके लिये भेज दिया और वे स्वयं गुणावलीके आवासमें गये। आज गुणावलीके आनन्दका पार न था। उसने जी खोलकर महाराजका स्वागत किया और उत्तम प्रकारके भोजनादि द्वारा उनकी भक्ति कर, उन्हें सन्तुष्ट किया।

राजा चन्दके दिन अब बड़े आनन्दसे कटने लगे। उनकी सात सौ रानियाँ परस्पर मिलजुलकर रहती थीं। उनमें सौतकासा भाव था ही नहीं। सबके शरीर भिन्न-भिन्न होनेपर भी उनका प्राण मानों एक था। वे परस्पर हँसती खेलती और अनेक प्रकारकी क्रीड़ा करती थीं। राजा चन्दने गुणावलीको पटरानी बनाया, इससे अन्यान्य रानियाँ बहुत प्रसन्न हुई। अब राजा चन्द कुशलतापूर्वक राज-काजका सञ्चालन कर प्रजाको अनुपम सुख देने लगे।

एकदिन राजा चन्द और गुणावली एकान्तमें बैठे थे। उस समय गुणावलीने कहा,—"प्यारे! आपके वियोगमें सोलह वर्ष मैंने बड़ी कठिनाईसे व्यतीत किये हैं। किन्तु मैं प्रेमला बहिनका बड़ाही उपकार मानती हूँ; क्योंकि उन्हींकी बदौलत मुझे पुनः आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं।" इसके बाद उसने हँसते हुए

कहा,—"देखिये, प्यारे ! यदि मैं माताजीकी बात मानकर उनके साथ विमलापुरी न गयी होती, तो प्रेमलाके साथ आपका व्याह कैसे होता ? इसके लिये आपको मेरा उपकारही मानना चाहिये ।"

राजा चन्दने भी हँस कर कहा,—"प्यारी ! इतने वर्षतक मुर्गा बनकर मैं दरदर मारा फिरा, उसके लिये भी तो तुम्हारा ही उपकार मानना चाहिये ।"

गुणावलीने कहा,—"यदि आप मुर्गे न होते तो सिद्धाचलकी यात्राका लाभ कैसे मिलता और यह संसार-सागर किस प्रकार आप पार करते ? इसलिये मेरे अवगुणका ख़याल न कर, आपको मेरी भलाईका ही ख़याल करना चाहिये । उत्तम पुरुष सदा ऐसाही करते हैं । वे पराया दोष न देखकर उसका गुणही देखते हैं । मैं अपनी मूर्खताके कारण सासकी बातोंमें आ गयी थी, इसलिये उसका फल भी मुझे ही भोगना पड़ा । प्यारी ! आपकी अनुपस्थितिमें एक एक दिन भी मेरी आँखोंके आँसू सूखने नहीं पाये । मैं तो दैवसे यही प्रार्थना करती हूँ कि वह मुझे किसी जन्ममें भी सास न दे । उसने मुझे जो दण्ड दिया है उसे मैं आजीवन भूल नहीं सकती ।

मुर्गेके रूपमें भी मेरी आँखोंके सामने रहे,

किसी तरह सन्तोष रहा था, परन्तु जिस दिन आप शिवमालाके साथ चले गये, उस दिनसे मेरे दिन जिस तरह बीते हैं, उसे तो केवल परमात्मा ही जानता है। मेरा जीवन पशु-पक्षियोंसे भी अधिक दुःख मय हो गया था। जिस दिनसे आपको मनुष्यत्व प्राप्त हुआ है, उस दिनसे मानों मैं भी मनुष्य हो गयी हूँ, यह सब बातें मैं अपने हृदयसे कह रही हूँ, यह न समझियेगा, कि आपके समक्ष अपना महत्व बढ़ानेके लिये कहती हूँ।"

गुणावलीकी यह बातें सुनकर राजा चन्दने उसे अपने हृदयसे लगाकर कहा,—"प्यारी! यह सब बातें तुम्हें कहनेकी आवश्यकता नहीं। मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि तुम मेरी प्राणेश्वरी हो। तुम्हारे हृदयमें किसी प्रकारका कपट-भाव नहीं है। तुम्हारे पतिव्रत और पुण्य प्रभावसेही मैं विमलापुरीसे यहाँ आ पहुँचा हूँ, वर्ना मैं शायदही आ सकता। अब तुम मेरे गृह-साम्राज्यकी साम्राज्ञी हो। तुम्हें जिस तरह पसन्द आये, वैसे अपने गृह-संसारका प्रबन्ध करो और अपनी छोटी बहिनोंसे काम लो। मैं तो यह सब तुम्हें सौंपकर निश्चिन्त हो गया हूँ। मुझे तो अब केवल खाने पीने और राजकाज देखने भरकी ही फिक्र रह गयी है।"

पतिके यह वचन सुनकर गुणावली बहुतही प्रसन्न

हुई। उन दोनोंमें जब तक ऐसी बातें होती और वे दोनों एक दूसरेके समक्ष अपना हृदय खोलकर रख देते। उन दोनोंका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था और वे आदर्श दम्पतिकी भाँति अपना समय व्यतीत करते थे।

राजा चन्दने एक दिन राज-सभाका विशेष अधिवेशन कर उसमें अनेक पण्डित तथा नगरके गण्यमान्य सज्जनोंको निमन्त्रित किया और सबके सामने मुर्गा होनेसे लेकर आभापुरी वापस आने तकका सारा हाल कह सुनाया। यह हाल सुनकर सबको बड़ाही आश्चर्य हुआ और वे जय पुकार पुकार कर उनकी मङ्गल-कामना करने लगे।

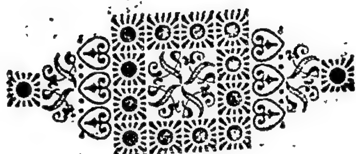
अन्तःपुरमें भी राजा चन्दको स्वर्गीय सुखकी प्राप्ति होती थी। वे जितनी देर वहाँ रहते, उनकी रानियाँ अनेक प्रकारसे उनका मनोरञ्जन करती थीं। कभी वे हावभाव दिखाती, कभी गीत, कविता, पहेली, गाथा आदिकी रचनाकर उन्हें रिझाती तो कभी नये नये खेलोंका आयोजन करतीं। भोगावली कर्मके राजा चन्द इस प्रकार तरह तरहके सुख-भोग तृत साम्राज्य पर शासन करने लगे।

राजा चन्द उन नटोंका उपकार न सके। उत्तम पुरुष सुखके समय

कार नहीं भूलते, किन्तु अधम जन भूल जाते हैं। निर्गुणी दूसरेके गुणोंपर ध्यान नहीं देते, परन्तु गुणी गुणके दास होते हैं। राजा चन्दने शिवकुमारको पहले भी बहुत सा धन देकर, उसे एक छोटा मोटा राजा बना दिया था, किन्तु इतनेहीसे उन्हें सन्तोष न हुआ, उन्होंने उसे और भी कई गाँवकी जागीर देकर उसे सदाके लिये अयाचक बना दिया। इससे राजा चन्दका उज्ज्वल यश चारों ओर विशेष रूपसे फैला गया।

गुणावली और प्रेमलालच्छीमें परस्पर बड़ाही प्रेम था। उन्हें एक दूसरेके बिना चैन ही न पड़ता था, इसलिये वे दोनों एक साथ ही रहती थी। राजा चन्द भी दोनों पर सदा समभाव रखते थे। कुछ दिनोंके बाद देवलोकसे कोई देव च्युत होकर, गुणावलीके उदरमें गर्भके रूपमें स्थिर हुआ। इस समय गुणावलीको शुभ स्वप्न दिखायी दिये। गर्भ काल पूर्ण होनेपर उसने एक सुन्दर पुत्ररत्नका जन्म दिया। दासी द्वारा यह समाचार मिलनेपर राजा चन्दने याचकोंको बहुत दान दिया और बड़ी धुमधामसे पुत्रका जन्मोत्सव मनाया। राजा चन्द इस पुत्रको देखकर बहुतही प्रसन्न हुए। बारहवें दिन इस पुत्रका नाम करण हुआ। राजा चन्दने जन्म नक्षत्र के अनुसार उसका नाम गुण शेखर रक्खा।

कुछ दिनोंके बाद प्रेमलाने भी एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उसका नाम मणिशेखर रक्खा गया। अब दोनों राजकुमारोंका बड़े प्रेम और यत्नसे लालन-पालन होने लगा और वे मातापिताको आनन्दित करते हुए शुक्ल पक्षके चन्द्रकी भाँति उत्तरोत्तर बढ़ने लगे।



सत्ताईसवाँ परिच्छेद



पूर्वजन्मका वृत्तान्त।



राजा चन्द दोनों पुत्रोंको गोदमें बैठाकर खिलाते थे और उनकी बालक्रीड़ा देखकर आनन्दित होते थे। दोनों राजकुमार भी इसप्रकार शोभा देते थे, मानो मान-सरोवरके तट पर हंसोंका जोड़ा क्रीड़ा कर रहा हो। वे खेलते खेलते जिसके पास जा पहुँचते, वही उन्हें देखकर प्रसन्न हो उठता। धीरे धीरे जब दोनों राजकुमार बड़े हुए, तब वे घोड़े और हाथियों पर बैठकर चारों ओर विचरण करने लगे। राजा चन्दने उनकी शिक्षाके लिये भी समुचित प्रबन्ध कर दिया। ताकि खेल कूदके साथ साथ वे क्षत्रियोचित विद्या और कलाओंमें भी पारदर्शिता प्राप्त कर लें।

इधर राजा चन्दका राज्य बिना प्रयासके ही दिनों दिन बढ़ता जाता था। भरतक्षेत्रके तीनों खण्डमें उनकी

तूती बोलती थी, ऐसा कोई भी राजा न था, जो उनके सामने शिर न झुकाता हो। अनेक राजा तो स्वयं उनके प्रभावसे प्रभावित होकर उनकी राज-सभामें उपस्थित होते थे और उन्हें भेट आदि देकर उनकी अधीनता स्वीकार करते थे। किसीको भी अब एकायक उनकी आज्ञा उल्लंघन करने का साहस न पड़ता था।

कृतज्ञ-शिरोमणि चन्दराजा विमलापुरीके गुण अहर्निश गाया करते थे और उसके उपकारका स्मरण किया करते थे। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने अपने यश पुञ्ज जैसे अनेक उज्ज्वल जिन-मन्दिर बनवाये और उत्तम मुनिराज के समक्ष अनेक नये जिन बिम्ब तैयार कराकर उनकी प्रतिष्ठा करायी। इनके सिवा उन्होंने और भी अनेक धार्मिक कार्य किये।

एक दिन वन-पालने आकर राजा चन्दको खुश खबर दी कि—अपने कुसुमाकर नामक उद्यानमें श्रीमुनि-सुव्रत स्वामी समवसरे—पधारे हैं। यह सुनकर राजा चन्द बहुतही प्रसन्न हुए। इसके उपलक्षमें उन्होंने वन-पालको खूब इनाम दिया। इसके बाद वे चतुरंगिणी सेना सजाकर अपने परिवार सहित बड़े ठाठ भगवान की वन्दना करने चले। कुछ दूर वसरण दिखाई पड़ा, उसे देखकर वे अ...

उसी समय उन्होंने वाहन त्याग दिये और पांच अभिगम का पालन करते हुए मानो मोक्ष-पदकी सिढ़ी पर चढ़ रहे हों, इसतरह समवसरणकी सिढ़ीयें चढ़कर परमात्माके दर्शन किये। तदनन्तर तीन प्रदक्षिणा और वन्दना कर वे सबलोग भगवानके समक्ष बैठकर उनके मुख-कमलसे निकलनेवाले अमृतरूपी धर्मोपदेशको सुनने लगे।

भगवानने कहा,—"हे भव्य जीवो! मिथ्यात्व अविरत्यादि ५७ बन्ध हेतुद्वारा जीव कर्मको बाँधता है। उस कर्मकी मूल प्रकृति ज्ञानावरणीयादि आठ हैं और उत्तर प्रकृति १५८ है। कर्माधीन होनेके कारण अनादि कालसे जीव अपना स्वभाव भूल गया है। और वह विभाव-दशामें रमण करता है, इसलिये कर्मराजाका प्रभाव उसपर अधिकाधिक पड़ता जाता है। इस जीवके अगणित प्रदेश हैं, जिनमेंसे आठ ❀ प्रदेशोंपर कर्म लगही नहीं सकता। अर्थात् वे कर्म द्वारा अनावृत रहते हैं। ऐसा होनेके कारणही इस जीवका जीवस्वरूप निरन्तर स्थिर रहता है। यदि वे प्रदेश भी कर्मद्वारा आवृत हो जायें तो जीव अजीवत्वको प्राप्त हो जाय।

❀ मूल रासकर्ताने यहाँपर चार प्रदेश लिखा है, किन्तु यह उनकी भूल मालूम होती है। शास्त्रोंमें अनेक जगह बतलाया गया है कि आठ प्रदेश निरन्तर खुले रहते हैं।

ऐसे दृढ़ कर्मोंसे आवरित जीव अपने ज्ञानादि गुणोंको भूल गया है। वह मिथ्यात्व योगसे अशुद्ध प्रणालिकामें पड़ा है और जो वस्तु अपनी नहीं है, उसे अपनी मानकर उसके मोहमें आसक्त हो, संसारमें परिभ्रमण करता है। हाथीके मस्तकसे झरने वाले मदपर जिसप्रकार भ्रमर श्रेणी आसक्त होकर भ्रमण करती है, उसी प्रकार वह पौद्गलिक पदार्थोंमें आसक्त हो, संसारमें भ्रमण करता है।

इस जीवका मूल स्थान सूक्ष्म निगोद है, जो अव्यवहार राशि कहलाता है। उसमें एक केशाग्र परिमाण आकाशमें अगणित गोले हैं। प्रत्येक गोलेमें अगणित निगोद हैं अर्थात् वे उस निगोदिये जीवके शरीर हैं। एक एक शरीरमें अगणित जीव हैं। इस निगोदका स्वरूप बहुतही सूक्ष्म है। इसे अन्य मतवाले अदृश्य पदार्थोंका—अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान न होनेके कारण समझ नहीं सकते। इस सूक्ष्म निगोदमें जीव अनादिकालसे वास करता है। वहाँसे सौभाग्य वश ही भावी अनुकूल होनेपर कोई कोई व्यवहार राशि अर्थात् बादर पृथ्वीकायादिमें आता है। वहाँसे विकलेन्द्रियमें और वहाँसे तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियमें आता है। बाद क्रमशः मनुष्यत्व प्राप्त करता है। होनेपर भी अशुभ सामग्री मिलनेसे और

मिलनेसे वह नरकादि दुर्गतिमें जाता है और अनेक प्रकारके दुःख सहन करता है। यह सब विषय-विकार और कषायोंके वश होनेके कारणही होता है। विषय-कषायसे उन्मत्त होनेपर उसे कृत्याकृत्यकी पहचान नहीं रहती, फलतः सारा मामला उसके हाथसे बाहर हो जाता है। उस समय ममतारूप गणिका उसे अपने वश कर लेती है और उसे अनेक प्रकारके नाच नचाती है। परवश प्राणी उसके स्वरूपको न जाननेके कारण नहीं समझ सकता कि यह ममता ही मेरा सर्वनाश और संसारमें भ्रमण करानेवाली है। वह अपने स्वरूपको भूल जानेके कारण पर-परणति के प्रवाहमें बहता है। और शुद्ध देव, गुरु तथा धर्म के स्वरूपको न जाननेके कारण ही कुदेव, कुगुरु और कुधर्मके योगसे उनमें आसक्त हो, सुदेवादिककी उपेक्षा करता है। इसके अतिरिक्त यह प्राणी तैजस कार्मण शरीर रूपी नौकामें चढ़ता है और उस नौकाको रागद्वेष संसार-सागरमें भटकाता है, इसलिये वह नौका भवसागरमेंसे जिनमत रूपी किनारे नहीं लग सकती। ऐसा करते करते जब शुभ निमित्त प्राप्त होता है तब उसके योगसे जीवको सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है। इसके बाद देशविरतीत्व प्राप्त होनेपर उसे अन

पच्चक्खाण करने की इच्छा उत्पन्न होती है। और उससे कुछ कर्म दूर होने लगते हैं। इस प्रकार श्रावकके बारह व्रतोंकी साधना करते करते कितनेही लोगों का सर्व विरतीत्व उदय होता है।

इसके बाद चारित्र ग्रहणकर अप्रमत्त भावसे उसका पालन करते, करते पाँच प्रकारके वायुको साध्यकर, रेचक पूरक और कुम्भक का वह अभ्यास करता है अर्थात् अष्टाङ्ग योग साधता है। तारादृष्टिसे आरम्भ कर यदि वास्तविक लय लग जाती है, तो अमृत अनुष्ठान द्वारा अन्तमें जीव चिदानन्द स्वरूपको प्राप्तकर, अपने घरमें आता है और अनन्त कालसे आवरित केवल ज्ञानको प्रकट करता है। अन्तमें अलेशीपन प्राप्तकर योग निरोध द्वारा एरण्ड बीजके दृष्टान्तसे इस शरीरसे छूटकर वह पञ्चम गतिको प्राप्त करता है, जहाँ उसकी सादी अनन्त स्थिति होती है—वहाँसे उसे फिर आना नहीं होता, क्योंकि संसारके कारण भूत कर्मोंका आत्यन्तिक विनाश होगया। अव्याबाध और अविनाशी सुख प्राप्त करनेकी इच्छावाले प्राणियोंको अहिंसा मूलक सद्धर्मकी आराधना करनी चाहिये, क्योंकि दयामूलक सर्वज्ञ कथित धर्मकी आराधना किये बिना प्राणीको किसी भी अन्य प्रकारसे शिवसुखकी प्राप्ती नहीं

सकती। जिस प्राणीको ऐसे अनुपम सुखकी इच्छा हो, उसे सम्यक् प्रकारसे उसकी आराधना करनी चाहिये, तत्वदर्शी होना चाहिये और अहर्निश कर्मक्षय करनेके लिये तत्पर रहना चाहिये, ताकि अन्तमें मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति हो सके। जिस प्रकार हाथका कंकण देखनेके लिये दर्पणकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार इस विषयके लिये अन्य दृष्टान्तोंकी आवश्यकता नहीं। केवल मेराही यह दृष्टान्त पर्याप्त है। मैंने स्वयं इसका अनुभव किया है और आप सब लोग भी इसे देख सकते हैं।

मुनिसुव्रत भगवानका यह अमृतके समान उपदेश सुनकर राज चन्द और समस्त सभाजन अत्यन्त प्रसन्न हो उठे और वैराग्य आनेके कारण सब लोग भगवानके समक्ष खड़े होकर यथाशक्ति व्रत नियमादि ग्रहण करने लगे। इसी समय राजा चन्द भी खड़े होकर भगवानसे प्रश्न करने लगे कि,—"हे भगवन्! मुझे किस कर्मके कारण मेरी विमाताने कुकुट बनाया? किस कर्मसे मैं नटोंके साथ भटकता फिरा? किस कर्मसे मैं प्रेमलालच्छी के हाथमें जा पहुँचा और किस कर्मसे सिद्धागिरिका संयोग होकर, मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हुआ? हिंसक मन्त्रीने किस कर्मसे ऐसा कपट किया था? कनकध्वज किस कर्मसे कुष्ट-ग्रसित हो गया था? किस कर्मसे रानी गुणावलीके

साथ मेरा पुनर्मिलन हुआ ? हे भगवन् ! इन सब बातोंका कारण जाननेकी मुझे बड़ीही अभिलाषा है। आपके सिवा इस अभिलाषाको और कौन पूर्ण कर सकता है ? आप केवल ज्ञानी हैं। आपसे कहींकी भी कोई बात छिपी नहीं है, ? इसलिये भव सागरके ज्रौंका स्वरूप हे प्रभो ! मुझसे यह सब वृत्तान्त कहनेकी कृपा करें।

राजा चन्द्की यह विनय सुनकर मुनिसुव्रत स्वामीने उनके पूर्व जन्मका वृत्तान्त इस प्रकार सुनाना आरम्भ किया :—

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें वैदर्भ नामक एक देश है। वहाँपर तिलकापुरी नामक एक नगरी है, उसमें एक समय मदन-भ्रम नामक राजा राज्य करता था। उसकी पटरानीका नाम कमलमाला था। वह बड़ी रूपवती और गुणवती थी। उसे कल्पवृक्ष की मंजरीके समान तिलक मंजरी नामक एक पुत्री थी। उसे बाल्यावस्थासे ही मिथ्यात्व धर्म पर प्रेम था। वह भक्ष्याभक्ष्यका विचार न करती थी और जैन धर्मसे भी द्वेष किया करती थी। परन्तु जिस प्रकार चन्दन वृक्षसे मक्षिकाके विमुख रहने पर उका मूल्य नहीं घट जाता, बल्कि उसे ही उसकी सुगन्धसे वञ्चित रहना पड़ता है, उसी प्रकार यदि कोई मनुष्य जैन धर्म पर

श्रद्धा नहीं रखता है, तो उससे जैन धर्मकी कोई क्षति नहीं होती, बल्कि वह स्वयं उसके लाभोंसे वञ्चित रह जाता है और कर्मबन्ध करता रहता है। अस्तु! मदिरासे सींची हुई विषलताके समान धीरे धीरे वह राज-पुत्री बड़ी हुई, परन्तु लहसुनमें जिस प्रकार कस्तूरी-की गन्ध नहीं आती, उसी प्रकार उसके अन्तःकरणमें किञ्चित भी जिनमतकी वासना उत्पन्न न हुई।

उस राजाके सुबुद्धि नामक एक मन्त्री था। उसे रूपमती नामक एक पुत्री थी। उसने स्तन-पानके साथ ही मानो जिन मतका पान किया था जिस प्रकार अमृत सींचनेसे कल्पलता बढ़ती है, उसी प्रकार धीरे धीरे वह भी बड़ी हुई। साध्वीकी संगति प्राप्त होनेके कारण शास्त्रोंमें उसकी कुछ गति होगयी। उसे नवतत्वादिकके स्वरूपका ज्ञान होगया और वह जिन पूजादि धर्मकार्योंमें लीन रहने लगी। साधु-साध्वियोंको आहार देनेके बाद भोजन करनेका तो मानो उसने नियम ही कर रक्खा था।

पूर्वजन्मके संयोगसे एकदिन राजकुमारी और मन्त्रीकी पुत्रीसे मुलाकात हो गयी। इससे उन दोनोंमें इतना प्रेम हो गया कि वे सदा एक दूसरेसे मिलकर रहने लगीं। यदि एक क्षणके लिये भी वे अलग होतीं, तो वह समय उन्हें एक युगके समान प्रतीत होता। एक

दिन उन दोनोंने विचार किया, कि हम दोनोंमें पूरा प्रेम है, फिर यदि हम दोनों अलग-अलग पतिसे ब्याह करेंगे, तो इसमें अवश्यही बाधा पड़ेगी, इसलिये हम दोनोंको एकही पतिसे विवाह करना चाहिये। ऐसा करनेसे हमारा यह प्रेम अखण्ड रह सकता है। दोनोंको यह बात बहुत पसन्द आयी और उन्होंने ऐसा ही करना स्थिर किया।

परन्तु जिस समय इन दोनोंका यह प्रेम हुआ, उस समय मन्त्री पुत्रीको यह न मालूम था कि राज-कुमारी मिथ्यात्व धर्मपर श्रद्धा रखती है और जिन धर्मसे द्वेष करती है। यह बात उसे बादको धीरे धीरे मालूम हुई, परन्तु चतुरा होनेके कारण, उसने राज-कुमारीसे इसकी शिकायत करना उचित न समझा। उसने सोचा कि ऐसी शिकायतसे हमलोगोंके मधुर सम्बन्धमें कटुता आ जायगी, इसलिये यह बात जबान पर लाना ठीक नहीं।

मन्त्री पुत्रीके यहाँ नित्य साध्वियाँ आहार लेने आया करती थीं। वह उन्हें भक्तिपूर्वक वन्दना कर, बड़े प्रेमसे वहेरना करती और जाते समय उन्हें द्वार तक पहुँचाने जाती थी। राज-कुमारीको उसका यह कार्य बिलकुल भला न मालूम होता था और वह मन-ही-मन इसके लिये जला करती थी। एकदिन उ

मन्त्री-पुत्रीको अपने पास बैठाकर, उसके सामने साध्वि-योंकी निन्दा करते हुए कहा,—"प्यारी बहिन! मेरी बातें तुझे बुरी मालूम हों या भली, किन्तु मैं इतना अवश्य कहूँगी, कि यह आर्याएँ बिलकुल निर्लज्ज होती हैं। इनका संग करना उचित नहीं। ऐसी अपवित्र स्त्रियोंको तो घरमें ही न घुसने देना चाहिये। यह बाहरसे बगुला भगतकासा रूप बनाये रहती हैं, परन्तु अन्दरसे बहुत ही कपटी होती हैं। यह हमलोगोंपर माया जाल फैलाकर हमें ठगती हैं। इधरकी बातें उधर और उधरकी बातें इधर कहकर लोगोंको आपसमें लड़ा देना ही इनका एक प्रधान काम है। हमारे नगरमें भी इन्होंने अनेक स्त्रियोंको ठगा है। यह मीठी मीठी बातें कहकर हमलोगोंको फँसाती हैं, परन्तु इनकी वास्तविक अवस्था ठीक उस बिल्लीकीसी होती है जो सैकड़ों चूहे खानेके बाद, बुढ़ापेमें तप करनेका बहाना करती है। घरमें जब इन्हें खानेको नहीं मिलता, तब यह शिर मुड़ाकर साध्वी बन जाती हैं और माल उड़ानेके लिये हमलोगोंको तरह तरहकी पट्टी पढ़ाती हैं। परन्तु हमारी जैसी बड़े घरकी लड़कियोंको तो इनका संग ही न करना चाहिये। यदि ऐसी ऐसी दस बीस साध्वियाँ कहीं एकत्र हो जायें, तो समूचा नगर ही

उजाड़ दें। घर घर झोली लेकर भटकना और खा पीकर पेट पर हाथ फेरना-यही तो इनका धंधा है। ऐसी आर्याओंके तुम उपदेश सुनती हो—यह अच्छा नहीं करती। यदि तुम इन्हें एकदिन आहार नहीं दोगी, तो यह चारों ओर तुम्हारी बुराइयाँ करती फिरेंगी और न जाने कितने गड़े मुर्दे उखाड़ेंगी। मैं तो इसीलिये इनकी छाया भी अपने ऊपर नहीं पड़ने देती। यहाँ भी इन्हें आते देख मुझे बहुत बुरा मालूम होता है। यह साध्वियाँ न किसीकी हुई हैं, न होंगी। कोई भी भला आदमी इनका संग नहीं करता। इसीलिये मैं तुम्हें भी मना करती हूँ। इनसे तो सदा दूर ही रहनेमें कल्याण है।"

राज-कुमारी की यह बातें सुनकर रूपमतीने कहा,—"प्यारी सखी! तुम यह क्या कहती हो? साध्वियोंकी निन्दा करना ठीक नहीं। मेरे यहां जो साध्वी आती है और जिसे मैं गुरूके समान मानती हूँ, वह निरतिचारपूर्वक पांच महाव्रतोंका पालन करती है। लोभ तो उसे जरा भी नहीं है। वह तो संवेग रूपी सरोवरके तटकी हंसिनीके समान है। मैं उसके एक अक्षरका भी बदला नहीं देसकती। उसने मेरा उपकार किया है। यदि मैं उसमें अवगुणोंकी

करूँगी, तो मुझे निश्चय नरकमें जाना होगा। तुम्हारी निन्दासे तो उसका कुछ बनता बिगड़ता नहीं। बल्कि इससे उनकी कीर्तिही बढ़ेगी। मुझे तो उसने पशुसे मनुष्य बनाया है, इसलिये मैं सदा उसका कल्याण मनाया करती हूँ। मैं तो जन्म जन्मान्तरमें भी उसीकी चेली होना चाहती हूँ। वह तो नमस्कार और भक्ति करने योग्य है, इसलिये उसकी निन्दा करनी ठीक नहीं। ऐसी उत्तम साध्वीकी निन्दा करनेसे बड़ाही पाप लगता है और पुण्यरूपी वृक्ष धीरे धीरे सूखकर अन्तमें नष्ट हो जाता है।"

राज-कुमारी यह सुनकर चुप हो गयी और अपने वासस्थानको चली गयी। दूसरे दिन वह फिर रूपमतीके पास आयी। उस समय रूपमती मोती का कनफूल पिरो रही थी। दोनों सखियाँ पास बैठकर आनन्द मनाने लगीं। धीरे धीरे जब मध्यान्हका समय हुआ, तब साध्वी आहार लेने आयीं। रूपमती प्रसन्न हो हाथका काम छोड़कर उसे बहेरानेके लिये खड़ी हुई। उसी समय जो मोतीका एक झूमक बना रही थी, उसे उसने राज-पुत्रीके समक्ष मोतियोंकी थालीमें रख दिया। इसके बाद रूपमती साध्वीको पक्वान्न बहेरा कर घी लानेके लिये अन्दर गयी और घी लाकर उसे प्रेमपूर्वक बहेराया।

उस समय रूपमती अपनेको धन्य मानने लगी थी। वह अपने मनमें कहती थी कि जो वस्तु ऐसे सुपात्रके काममें आती है, उसीका खरा उपयोग होता है। जो अज्ञानी मनुष्य ऐसे साधु साध्वियोंकी निन्दा करते हैं, उनका जीवन भाररूप ही समझना चाहिये।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि राज-कुमारी साध्वियोंसे बड़ी ईर्षा करती थी। इस ईर्षाके कारण, जिस समय रूपमती घी लेने अन्दर गयी, उसी समय उसने वह झूमक साध्वीके कपड़ेके एक छोरमें चुपचाप बांध दिया। उसकी यह कपटकला रूपमती या साध्वी दोनोंमेंसे किसीको भी मालूम न हो सकी। आहार लेनेके बाद जब साध्वी जाने लगी, तो सदाकी भाँति रूपमती उसे द्वारतक पहुँचा कर लौट आयी। इसके बाद उसने मोतियोंकी थाली हाथमें उठायी, तो उसमें वह झूमक दिखायी न दिया। इसलिये उसने राज-पुत्रीसे कहा,—"बहिन! दिल्लगी क्या करती हो? मेरा झूमक दे दो, अभी उसमें बहुत काम बाकी है। तुम्हें जरूरत हो तो तैयार हो जानेपर दोनों ले लेना। मैं क्या देनेसे इन्कार करती हूँ?"

राज-कुमारीने कहा,—"मैं एसी दिल्लगी हरगिज नहीं करती, जिससे अन्तमें कलह हो। मैंने तुम्हारा

झूमक नहीं लिया। उसे तो जब तुम घी लेने गयीं थीं, तब उस साध्वीने ले लिया था। मैंने उसे लेते समय अपनी आँखोंसे देखा था, परन्तु उसे कुछ कहनेसे तुम्हें बुरा लगेगा, यह सोचकर मैंने मौन धारण करना ही उचित समझा। परन्तु तुमने तो आनेके साथ मुझे ही चोरी लगा दी! मैं शपथ पूर्वक कहती हूँ कि मैंने तुम्हारा झूमक नहीं लिया है। तुम्हें मुझपर जरा भी सन्देह न करना चाहिये।"

रूपमती ने कहा,—"सखी! तुमने झूमक नहीं लिया तो कोई हर्ज नहीं, परन्तु तुम व्यर्थही उस साध्वीपर क्यों चोरी लगाती हो? मुँहसे ऐसी बात निकालनेकी अपेक्षा तो न बोलना ही अच्छा है। तुम अकारण ही उस साध्वीसे द्वेष करती हो और उसे कलङ्क लगाती हो। जो एक तृण भी विना दिये नहीं लेती, वह झूमक कैसे ले सकती है? और वह उसे लेकर करेगी भी क्या? उसने तो घरके हीरे मोती छोड़कर दीक्षा ग्रहण की है। वह महा उत्तम व्रतको धारण करती है और उत्तम कर्ममें लीन रहती है, इसलिये उसपर कोई सन्देह करना ठीक नहीं, वह तुम्हारे जोगी-बाबाओंकी तरह दर दर भटकने-वाली नहीं है। उसके पास तो उपशम रूप आभूषण है। उसके सामने इस आभूषणकी कौन

हकीकत है ? ऐसी महासतियोंकी बातें हम पापी मनुष्य क्या समझें ? वे धनकी ओर तो आँख उठाकर देखती भी नहीं। भूमीपर एक पैर रखती हैं, तो परिमार्जित करके रखती हैं। ऐसी साध्वीको चोरी लगाना तुम्हें शोभा नहीं देता। वह तो खानेपीने तक के पदार्थोंका कभी संग्रह नहीं करती। मांगकर लाती हैं तब खाती हैं। किसीके दिये बिना भी वे किसी चीजको हाथ नहीं लगाती। ऐसी अवस्थामें उसका झूमक चुराना सम्भव नहीं। मुझे तो तुम्हारी बातपर विश्वासही नहीं होता।

राज-कुमारीने कहा,—"बहिन ! तुम इतनी बातें क्यों कहती हो ? हाथके कंगनको आरसी क्या ? चलो, हम दोनों उस साध्वीके उपाश्रयमें चलें। यदि साध्वीके छोरसे मैं तुम्हारा झूमक निकाल दूँ, तो मेरी बातका विश्वास करना, वर्ना मैं एक बार नहीं, हजार बार झूठी !

रूपमतीने यह बात स्वीकार की; इसलिये वे दोनों उपाश्रयमें गयी। उस समय साध्वी भोजनकी तैयारी कर रही थी। रूपमतीने उसे वन्दना की। साध्वीने उसे धर्मलाभ देकर कहा,—"बाई ! थोड़ी देर बाहर बैठो, मुझे भोजन करना है। आज गोचरी विलम्ब हो गया। यदि तुम्हें उपदेश सुनने की

होगी, तो मैं थोड़ी देर बाद सुनाऊँगी ।"

साध्वीके यह वचन श्रवण कर, रुपमती उपाश्रयके बाहर निकल आयी। यह देखकर राज-कुमारीने कहा,—"बहिन ! कहाँ जाती हो ? काम तो अन्दर है। यह कहकर वह उसे पुनः अन्दर घसीट ले गयी। दोनों का यह उपद्रव देखकर साध्वीको बड़ाही आश्चर्य हुआ। इतनेहीमें राज-कुमारीने कहा,—"हे सती साध्वी ! श्राविकाओंके यहाँ आहार लेनेके साथ साथ चोरी करना तुम्हें किस गुरुनीने सिखाया हैं ? जिस समय मेरी सखी घी लेने गयी थी, उस समय तुमने मोतीका झूमका उठा लिया था। मैंने यह अपनी आँखो देखा था, परन्तु सखीको कहीं बुरा न लग जाय, यही सोचकर उस समय मैंने कुछ न कहा। वर्ना मैं तुरन्त इससे कह देती। अब तुम इसका झूमक इसे दे दो। यह मुझे चोरी लगाती है, इसलिये मुझे लाचार होकर यह हाल कहना पड़ता है। यदि तुम इसकी चीज चुपचाप इसे दे दोगी तो यह बात किसीको भी मालूम न होगी. वर्ना मैं सारे नगरमें यह समाचार जाहिर कर दूँगी।"

राज-कुमारीकी यह बातें सुनकर साध्वी घबड़ा गयी। उसने कहा'—"अरी ! तुम राज-कुमारी होकर ऐसी असत्य बातें क्यों कहती हो ? मैं तुम्हारा झूमक नहीं लायी हूँ।

यदि तुम्हें विश्वास न हो तो मेरे झोली-पात्रे देख सकती हो। मुझे ऐसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं।"

राज-कुमारीने क्रुद्ध होकर कहा,—"अरी! झोली देखनेसे क्या होगा? सीधी तरह दे क्यों नहीं देती?"

किन्तु साध्वीको तो कुछ मालूम ही न था, इसलिये वह दे तो कहाँसे दे? उसने फिर अपनी सफाई दी, परन्तु राज-कुमारीने उसकी एक न सुनी। उसने इधर उधरकी दो चार बातें और सुनाकर, साध्वीके अञ्चलसे वह झूमक निकालकर रूपमतीके हाथमें रख दिया। साथ ही उसे शिक्षा देते हुए कहा,—"देखो इस साध्वीकी ईमानदारी! अब भूलकर भी ऐसे लोगोंके फेरमें न पड़ना!"

राज-कुमारी समझती थी, कि इस प्रपञ्चसे रूपमतीका दिल उस साध्वीकी ओरसे हट जायगा, परन्तु उसकी धारणा गलत निकली। इन सब बातोंका उसपर उलटा ही असर पड़ा। उसने कहा,—"बहिन! यह सब तुम्हारा ही काम है। साध्वी २ भी नहीं जानती। वह तो त्याग-मूर्ति चोरी कर ही नहीं सकती।"

इसके बाद उसने साध्वीसे बातोंका कोई ख

जैन मतसे द्वेष करती है। इसीलिये इसने यह कुकार्य किया है।"

इस प्रकारके वचनों द्वारा उस साध्वीको शान्तकर रूपमती राज-पुत्रीके साथ अपने वासस्थानको लौट आयी। राज-पुत्रीने साध्वीका संग छुड़ानेके लिये बड़ी अच्छी युक्ति सोची थी, परन्तु लाचार, उसका पासा उलटा पड़ गया !

उधर उन दोनोंके चले जाने पर, साध्वीको बड़ाही दुःख हुआ। वह अपने मनमें कहने लगी,—"यह बात नगरमें फैलेगी, तो लोग मुझे कलंक लगायेंगे। राज-पुत्रीकी बात पर साधारणतः सभी लोग विश्वास कर लेंगे। इसलिये अब कलंकित होकर जीनेकी अपेक्षा मर जाना कहीं अधिक अच्छा है।"

चारित्रवान मनुष्य भी आवेशमें आकर अकर्त्तव्य कर बैठते हैं। उस साध्वीने कलंक लगनेके भयसे रोषमें आकर अपने गलेमें फाँसी लगा ली। परन्तु प्राण निकलनेके पहले ही सुर-सुन्दरी नामक एक पड़ोसिनको उसका पता लग गया, इसलिये उसने तुरन्त वहाँ पहुँच कर साध्वीकी फाँसी छुड़ा दी, यथोचित उपचार किया और उसकी तबियत ठीक होनेपर उसे भोजन कराया। पश्चात् साध्वीको भी ज्ञान हुआ और वह पुनः समताके

घरमें आकर निरतिचार चारित्रका पालन करने लगी। इस प्रकार इस महान दुष्कर्मसे राज-पुत्रीने एक महा निविड़ कर्म बांधा।

राज-पुत्री और मन्त्री-पुत्रीमें निरन्तर जिनमत और शैव मतको लेकर वाद-विवाद हुआ करता था। वे अपने अपने धर्मको श्रेष्ठ मानकर, उसीके आचारोंका पालन करती थीं और एक दूसरेके धर्मपर जरा भी श्रद्धा न रखती थीं। परन्तु धार्मिक मतभेद होनेपर भी उनकी मैत्रीमें जरा भी अन्तर न पड़ने पाता था और अन्यान्य सभी बातोंमें वे पूर्वकी ही भाँति हिल मिलकर रहती थीं।

इसप्रकार दोनोंके दिन चैनसे कटते थे, इतनेमें वैराट नरेश राजा जित शत्रुने अपने पुत्र शूरसेनके विवाहके लिये अपने मन्त्रीको राज-पुत्री तिलकमञ्जरीकी मँगनी करनेके लिये, तिलकपुरीके राजाके पास भेजा। राजाको यह विवाह-सम्बन्ध पसन्द आ गया, इसलिये उन्होंने पुत्रीको एकान्तमें बुलाकर, इस विषयमें उसका मत पूछा। उसने कहा—"पिताजी! मेरी सखी रूपमती यदि इस वरको पसन्द करेगी तो हम दोनों उससे ब्याह कर लेंगी, क्योंकि हम दोनोंने एक ही वरसे ब्याह करनेकी प्रतिज्ञा की है।"

यह सुनकर राजाने तुरन्त मन्त्रीको बुलाया और उससे सब हाल सुनाकर कहा,—"यदि आपकी पुत्री इस वरको पसन्द करे तो दोनोंका विवाह एक ही साथ निपटा दिया जाय ।" मन्त्रीने रूपमतीकी सलाह लेकर इसके लिये सहर्ष अनुमति दे दी ।

राजा मदनभ्रमने उसी समय वैराट नरेशके मन्त्रीको बुलाकर कह दिया, कि—"राजकुमार शूरसेनके साथही मैं अपनी राजकुमारीका विवाह करना सहर्ष स्वीकार करता हूँ । साथही हमलोगोंने यह भी स्थिर किया है, कि मन्त्रीकी पुत्रीका विवाह भी उन्हींके साथ कर दिया जाय ।"

मन्त्री यह सुनकर बहुतही प्रसन्न हुआ । उसी समय प्रवीण ज्योतिषी बुलाये गये और विवाहका दिन भी ठीक कर लिया गया । इसके बाद राजा मदनभ्रमसे विदा ग्रहण कर मन्त्री वापस गया और वहाँ उसने अपने राजा वैराटसे सारा हाल कह सुनाया । यह हाल सुनकर वैराट नरेश भी बहुत प्रसन्न हुए ।

यथासमय बड़े ठाट बाटसे बरात सजाकर वैराट नरेश कुमार शूरसेनके साथ तिलकापुरी आये । वहाँपर सानन्द विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ । राजा और मन्त्रीने हाथी, घोड़े, रथ, सेवक और वस्त्राभूषण आदि अनेक

चीजें दहेज में दीं। कुमार शूरसेन इस सामग्री और दो वधुओंके साथ वैराट नगरको लौट आये। सास दोनों वधुओंके शिरपर अपना गृहभार डालकर स्वयं निश्चिन्त हो गयी। दोनों वधुएँ भी यथोचित रूपसे गृहकार्य सम्हालती हुई, अपने पतिके साथ आनन्दसे रहने लगीं।

इसप्रकार दोनों सखियाँ आनन्दसे रहती थी, परन्तु उनमें कभी कभी वाद-विवाद हो जाया करता था। धार्मिक मतभेदके कारण दोनोंके चित्त न मिलते थे। इसके अतिरिक्त अब वे दोनों एक दूसरेकी सौत हो गयी थी, इसलिये उनमें और भी कलह होता था। सौतके विषयमें किसीने ठीक ही कहा है' कि स्त्रियाँ काठकी सौत भी देखना पसन्द नहीं करतीं। यदि दो सगी बहिने भी एक ही पतिसे ब्याह दी जातीहैं, तो उनमें भी बड़ाही द्वेष उत्पन्न हो जाता है। किसी एकही वस्तुके लिये जब दो आदमियोंको समान अभिलाषा उत्पन होती है, तब उनमें वैर हुए बिना रहता-ही नहीं, क्योंकि एक वस्तु एक साथ ही दो जनोंके उपभोगमें नहीं आ [illegible]। इस प्रकार एकबार शत्रुताका सूत्रपात हो [illegible] उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि ही होती जाती है [illegible] तका सम्बन्ध बुरेसे बुरा होता है।

का नाम भी नहीं होता, फिर भी लोकाचारके लिये वे दोनों एक दूसरेको बहिन कहकर पुकारती हैं। अनेक बार वे एक दूसरेको कलंक लगाती हैं, कटु शब्द कहती हैं, मर्म प्रहार करती हैं और द्वेषके कारण मन-ही-मन जला करती हैं। स्त्रियोंके इस कलहके कारण पुरुषको भी अपना जीवन दुःखमय और भाररूप मालूम होता है। सुख तो उसके लिये मानो स्वप्न ही हो जाता है। पार्वती और गंगा--दोनोंको स्वीकार करनेपर जब शिवजी को भी दर दर भटकना पड़ा था, तब साधारण मनुष्य के लिये तो कहना ही क्या है ?

परन्तु राजकुमार शूरसेन पर अभी यह दुःख अधिक मात्रामें न पड़ा था। तम्बोली जिस प्रकार अपने पानों की समान रूपसे रक्षा करता है, उसी प्रकार वह अपनी दोनों पत्नीयों को समान रूपसे रखता था। परन्तु जिस प्रकार पवनसे हिलनेवाले पत्तोंको स्थिर रखनेकी चेष्ठा व्यर्थ प्रमाणित होती है, उसी प्रकार उन दोनोंमें कुछ-न-कुछ खटपट चलती ही रहती थी।

इधर तिलकापुरीमें तिलकमंजरीके पिताको एक बहेलियेने पर द्वीपसे आयी हुई एक नयी जातिकी मैना लाकर भेंट की। इस मैना के शिरपर काली शिखा थी। नेत्र लाल और पंख सुनहले थे। पंखोंपर

बीच बीचमें काले छींटे थे, इसलिये वह देखनेमें बहुत सुन्दर मालूम होती थीं। इस मैनाकी बोली अमृतके समान मधुर थी। वह काव्य कथा और दोहा आदि जो कुछ सुनती, वह याद कर लेती थी और दूसरे समय फिर वही सुनाकर लोगोंका मनोरञ्जन करती थी। राजा इस मैनाको देखकर बहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे एक सोनेके पींजड़ेमें बन्दकर, पुत्रीके मनोरञ्जनार्थ उसे वैराट नगर भेज दिया। तिलकमंजरी भी उसे पाकर बहुतही अनन्दित हो उठी।

अब इस मैनाके साथ क्रीड़ा करना उसे नित्य नयी नयी वस्तुएँ खिलाना और उसकी बातें सुनकर आनन्दित होना, तिलकमंजरीका नित्य कर्म हो गया। वह सदा उसे अपने ही पास रखती और रूपमतीको उसे हाथ भी न लगाने देती। यदि रूपमती कभी मुँह खोलकर उसे मांगती, तो तिलकमंजरी स्पष्ट कह देती, कि इसे तो मेरे पिताने मेरे लिये भेजा है। तू अपने लिये अपने पितासे क्यों नहीं मंगाती? क्या ऐसा करनेमें तुझे लज्जा मालूम होती है?

तिलकमञ्जरीके यह वचन सुनकर रूपमतीको बड़ाही दुःख होता, परन्तु उसका हृदय गम्भीर होनेके कारण वह अधिक रोप न करती थी। साथही

का नाम भी नहीं होता, फिर भी लोकाचारके लिये वे दोनों एक दूसरेको बहिन कहकर पुकारती हैं। अनेक बार वे एक दूसरेको कलंक लगाती हैं, कटु शब्द कहती हैं, मर्म प्रहार करती हैं और द्वेषके कारण मन-ही-मन जला करती हैं। स्त्रियोंके इस कलहके कारण पुरुषको भी अपना जीवन दुःखमय और भाररूप मालूम होता है। सुख तो उसके लिये मानो स्वप्न ही हो जाता है। पार्वती और गंगा--दोनोंको स्वीकार करनेपर जब शिवजी को भी दर दर भटकना पड़ा था, तब साधारण मनुष्य के लिये तो कहना ही क्या है?

परन्तु राजकुमार शूरसेन पर अभी यह दुःख अधिक मात्रामें न पड़ा था। तम्बोली जिस प्रकार अपने पानों की समान रूपसे रक्षा करता है, उसी प्रकार वह अपनी दोनों पत्नीयों को समान रूपसे रखता था। परन्तु जिस प्रकार पवनसे हिलनेवाले पत्तोंको स्थिर रखनेकी चेष्टा व्यर्थ प्रमाणित होती है, उसी प्रकार उन दोनोंमें कुछ-न-कुछ खटपट चलती ही रहती थी।

इधर तिलकापुरीमें तिलकमंजरीके पिताको एक बहेलियेने पर द्वीपसे आयी हुई एक नयी जातिकी मैना लाकर भेंट की। इस मैना के शिरपर काली शिखा थी। नेत्र लाल और पंख सुनहले थे। पंखोंपर

वीच वीचमें काले छींटे थे, इसलिये वह देखनेमें वहुत सुन्दर मालूम होती थीं। इस मैंनाकी वोली अमृतके समान मधुर थी। वह काव्य कथा और दोहा आदि जो कुछ सुनती, वह याद कर लेती थी और दूसरे समय फिर वही सुनाकर लोगोंका मनोरञ्जन करती थी। राजा इस मैंनाको देखकर वहुतही प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे एक सोनेके पींजड़ेमें वन्दकर, पुत्रीके मनोरञ्जनार्थ उसे वैराट नगर भेज दिया। तिलकमंजरी भी उसे पाकर वहुतही अनन्दित हो उठी।

अब इस मैनाके साथ क्रीड़ा करना उसे नित्य नयी नयी वस्तुएँ खिलाना और उसकी बातें सुनकर आनन्दित होना, तिलकमंजरीका नित्य कर्म हो गया। वह सदा उसे अपने ही पास रखती और रूपमतीको उसे हाथ भी न लगाने देती। यदि रूपमती कभी मुँह खोलकर उसे मांगती, तो तिलकमंजरी स्पष्ट कह देती, कि इसे तो मेरे पिताने मेरे लिये भेजा है। तू अपने लिये अपने पितासे क्यों नहीं मंगाती? क्या ऐसा करनेमें तुझे लज्जा मालूम होती है?

तिलकमञ्जरीके यह वचन सुनकर रूपमतीको वड़ाही दुःख होता, परन्तु उसका हृदय गम्भीर होनेके कारण वह अधिक रोप न करती थी। साथही

भी जानतीं थी कि रोष करनेसे कार्यका विनाश होता है, इसलिये वह शान्तही रहती थी। कुछ दिनोंके बाद जब उसने अपने पिताको पत्र लिखा, तो उसमें एक वैसीही मैना भेज देनेकी प्रार्थना की। चतुर मन्त्री यह पत्र पढ़तेही समझ गया, कि सौतिया डाहके कारणही मेरी पुत्रीने दूसरीं मैना भेजनेको लिखा है। उसने उसी समय कई बहेलियोंको वन और पर्वतोंमें भेजकर, वैसीही मैना ला देनेको कहा. परन्तु वैसी मैनाका कहीं पता न चला। मन्त्रीने सोचा कि यदि मैं पुत्रीको मैना न भेजूँगा, तो वह बहुत उदास हो जायगी, इसलिये उसने कोसी जातिके पक्षीकी एक मादा, जो देखनेमें तोती जैसी मालूम होती थी, एक सोनेके पींजड़ेमें बन्दकर पुत्रीके पास भेज दिया। यह तोती भी देखनेमें बड़ी सुन्दर थी और बाह्य रूपमें भी उस मैनासे किसी प्रकार कम न थी। रूपमती उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई और उसे हाथपर बैठाकर खिलाने लगी। उसने उसकी रक्षाके लिये एक सेवक नियुक्त कर दिया और सभी तरहसे वह उसका लालन पालन करनेलगी।

किसी दासीने तिलकमंजरीके पास जाकर उससे यह हाल कहा। तिलकमंजरी यह सुनकर बहुतही क्रुद्ध हो उठी। सौत सौतका सुख वास्तवमें नहीं

देख सकती । उसके हृदयमें सदा इर्ष्याग्नि धधकतीही रहती है । तिलकमंजरीका भी यही हाल था । उसने कहा,—"रूपमतीने इर्ष्यावशही अपने पिताको लिखकर वहाँसे यह कोसी मंगायी है ।"

एक दिन रूपमती और तिलकमंजरी—दोनों एकही स्थानमें अपने अपने पक्षीके साथ बैठी थीं और अपने अपने पक्षीकी प्रशंसा करती थी कि मेरी मैना अच्छी है और दूसरी कहती थी कि मेरी कोसी अच्छी है । दोनोंमें इसी बातको लेकर वाद-विवाद हो गया । अन्तमें उन्होंने शर्त लगायी कि जो अधिक मधुर बोले उसीको अच्छी समझना चाहिये । इसके बाद तिलक-मंजरीने अपनी मैनाको बुलाया । वह बोलनेमें बहुतही प्रवीण थी, इसलिये उसने कई मधुर वाक्य कह सुनाये । इससे तिलकमंजरी प्रसन्न होकर उछलने लगी । इसके बाद रूपमतीने भी अपनी कोसीको बुलाया । परन्तु उसे तो बोलना ही न आता था, इसलिये वह कुछ भी न बोल सकी । उसका यह हाल देखकर रूपमतीको बड़ाही दुःख हुआ । वह अपने मनमें कहने लगी,—"निःसन्देह यह कोसी केवल देखनेमें ही सुन्दर है । किन्तु इसमें और कोई गुण नहीं ।"

मैनासे कोसीके हार जानेपर,

को चिढ़ाने लगी। वह कहने लगी,—"कहाँ मेरी मैना और कहाँ तुम्हारी कोसी! ऐसी ऐसी हजार कोसियाँ मैं अपनी मैनापर न्यौछावर कर सकती हूँ।"

रूपमती यद्यपि बहुतही समझदार और सयानी थी, फिर भी तिलकमंजरीके यह अभिमानपूर्ण वचन सुनकर उसे कोसीपर बड़ाही क्रोध आ गया और उसने उसी समय उसके दोनों पंख नोंचकर फेंक दिये। ऐसा करते समय कोसीके रक्षकने उसे बहुतही समझाया, परन्तु उसका कोई फल न हुआ। कोसी सोलह पहर पर्यन्त पंख हीन अवस्थामें पड़ी पड़ी दुःख भोगती रही, अन्तमें उसी दुःखके कारण उस बेचारीकी मृत्यु हो गयी।

मृत्युके बाद इसी कोसीने वैताढ्य पर्वतपर गगनवल्लभ नगरके राजा पवनवेगकी रानी वेगवतीके उदरसे पुत्रीके रूपमें जन्म ग्रहण किया। इस जन्ममें उसका नाम वीरमती पड़ा और वह आभा नरेश वीरसेनके साथ ब्याही गयी। उसने अप्सराओं द्वारा कई विद्याएँ प्राप्त की और उनके प्रतापसे अपने पतिके बाद वह आभापुरीका राज्य उपभोग करने लगी।

रूपमतीकी दासीने अन्त समयमें कोसीको नवकार मन्त्र सुनाया था और मृत्युके बाद उसके शरीरकी समुचित व्यवस्था कर दी थी। इसके बाद रूपमती

अपने इस कार्यके लिये बहुत पश्चाताप करने लगी। तिलकमंजरी तो पहलेसेही महा मिथ्यात्वी और दुष्ट स्वभाववाली थीं, इसलिये कोसीकी मृत्यु होनेपर उसे बोलनेका और भी मौका मिल गया। उसने इस घटनाको लेकर जिनमतकी निन्दा करते हुए रूपमतीसे कहा,—"तुम्हारा जिन धर्म मैंने अच्छी तरह देख लिया। उसमें मुँहसे तो लोग दया दया चिल्लाते हैं, परन्तु कार्य ऐसे किये जाते हैं। तुम्हें ऐसे निरपराधिनी कोसीको मारते दया क्यों न आयी? ऐसे कामके लिये तुम्हारा हाथ कैसे उठ सका? मैं तो भूलकर भी ऐसे अनाथ जीवकी हिंसा न करती।"

सौतके इन वचनोंसे रूपमतीको बड़ाही दुःख हुआ। साथही इस घटनाके बाद उन दोनोंका धार्मिक मत भेद और भी बढ़ गया। शूरसेन उन्हें बहुत समझाता था, किन्तु जिस प्रकार अग्निमें घी डालनेसे वह उत्तरोत्तर तेज होती जाती है, उसी प्रकार उनकी द्वेषाग्नि बढ़ती ही जाती थी। वे किसी प्रकार शान्त ही न होती थीं।

कोसीको मारनेके कारण रूपमतीको मन-ही-मन बड़ाही पश्चात्ताप होता था, परन्तु एक बार अविचार पूर्ण कार्य हो जाने पर फिर वह मिट नहीं सकता, **इसी**-लिये बुद्धिमान मनुष्य बिना विचारे कोई

करते। मनुष्यको चाहिये, कि वह जो भी कार्य करे, वह अच्छी तरह विचार करनेके बाद ही करे; क्योंकि प्रत्येक कार्यसे नये कर्मकी सृष्टि होती है और उनका फल भोगते भोगते फिर और नये कर्म बँध जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि काशीकी करोंतीकी भाँति कर्म दोनों ओरसे मनुष्यको बिड़म्बनामें डालते हैं, इस लिये बहुत समझ बूझकर काम करना चाहिये।

रूपमतीके हाथसे यद्यपि यह कार्य बहुतही अनुचित हो गया था, फिर भी वह जिन मतमें प्रवीण थी, इसलिये उसने पश्चात्तापादि द्वारा उस कर्मको बहुतही क्षीण कर डाला और स्त्री वेदके बदले पुरुप वेद प्राप्त किया। यथासमय आयु पुर्ण होनेपर जब उसकी मृत्यु हुई, तब उसने आभानरेशकी चन्द्रावती नामक रानीके उदरसे पुत्रके रूपमें जन्म ग्रहण किया। इस जन्ममें उसका नाम चन्द्रकुमार पड़ा। हे राजन्! वह चन्द्रकुमार स्वयं आपही हैं।"

इसी प्रकार हे राजन्! विधि या अविधिपूर्वक किया हुआ कोई भी धर्म या सत्कार्य कभी निष्फल नहीं जाता। कोसीका वह रक्षक, जिसने रूपमतीको उसका नाश न करनेके लिये समझाया था, मृत्यु होनेपर आपका सुमति नामक मन्त्री हुआ। उसने पक्षीके

प्रति केवल दया मात्र दिखायी थी किन्तु उसका भी शुभ फल उसे प्राप्त हुए बिना न रहा। उस साध्वीके उपाश्रयके पड़ोसमें जो सुरसुन्दरी नामक स्त्री रहती थी और जिसने साध्वीके गलेकी फाँसी छुड़ायी थी, उसकी मृत्यु होनेपर वह आपकी रानी गुणावली हुई। राज-पुत्री तिलकमंजरी, जो मिथ्यात्वी थी, वह मृत्यु होनेपर प्रेमलालच्छी हुई। साध्वीकी मृत्यु होनेपर वह कुष्टी कनकध्वज हुई। अज्ञानी जीव कर्मकी प्रौढ़ गति नहीं जान सकते, परन्तु उसका कैसा परिणाम होता है सो देखिये। वह मैना इस जन्ममें कपिला नामक धाय हुई। उसने उस जन्ममें भी दोनों सौतोंमें कलह कराया था और इस जन्ममें भी उसने यही कार्य किया। राज-कुमार शूरसेन, जो तिलकमंजरी और रूपमतीका पति था, इस जन्ममें शिवकुमार नट हुआ। उस जन्ममें रूपमतीकी जो दासी थी, वह इस जन्ममें नट-पुत्री शिवमाला और उस मैनाका रक्षक इस जन्ममें हिंसक मन्त्री हुआ।

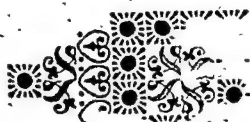
इसप्रकार सबके पूर्व जन्मका वृत्तान्त बतलाकर श्रीमुनि सुव्रत स्वामीने कहा,—"हे राजन्! कर्मका प्रवाह जिस दिशामें बहता है, उस दिशामें बहता ही रहता है। उसे नदी नाले या पर्वत आदि कोई भी

रोक नहीं सकते। तुम्हें अपने इस पूर्व जन्मके चरित्र परसे कर्मकी विचित्रता समझनी चाहिये। तुमने कोसीके पंख नोंच डाले थे, इसलिये उसने वीरमती बनकर इस जन्ममें तुम्हें मुर्गा बनाकर बहुत दुःख दिया और इस-प्रकार तुमसे अपने पूर्वजन्मका बदला लिया। पिछले कर्मोंका जब उदय होता है, तब वे सभी को भोग करने पड़ते हैं। उसमें किसीका कोई उपाय नहीं चलता। तिलकमञ्जरीने उस जन्ममें साध्वीको झूठी चोरी लगायी थी, इसलिये इस जन्ममें उसने कनकध्वज होकर प्रेमलाल-च्छीको विष कन्या होनेका कलंक लगाया। पूर्वजन्ममें रूपमतीके सामने जिस प्रकार कोसीके रक्षक की दाल न गली थी, उसी प्रकार इस जन्ममें वीरमतीके सामने गुणावलीकी भी एक न चलती थी। वह रोती ही रही और उसके स्वामीको वीरमतीने मुर्गा बना दिया। पूर्व जन्ममें रूपमतीकी दासीने कोसीकी सेवासुश्रूषा की थी इसलिये इस जन्ममें शिवमालाने मुर्गेको लाकर प्रेमलाल-च्छीको दिया और स्नेहपूर्वक बहुत दिनोंतक उसकी रक्षा की।

इसप्रकार मुनिसुव्रत स्वामीने चन्द राजा आदिको पूर्वजन्मके कर्मोंका जो फलादेश कहा, उससे सब लोगोंने बड़ी शिक्षा ग्रहण की। राजा चन्दने कर्मजाल—माया

जालको छिन्न भिन्न कर परम उपकारी भगवानके चरणोंमें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। इसके बाद उन्होंने कहा,—"हे भगवन्! आप जैसे तैराक मिलने पर भी यदि मैं भवसागर पार न करूँगा, तो फिर मेरे लिये अन्य कौन आधार रह जायगा? आपने इस संसारका वास्तविक भय दिखाकर मुझे उससे उन्मुख किया है। अब आप-हीको मुझे अपना समझकर प्रीतिकी रीति निबाहनी होगी। जलके जिस प्रबल प्रवाहमें बह जानेके भयसे हाथी भी हिम्मत हार बैठते हैं, उसी प्रवाहमें मछलियाँ सामनेकी ओरसे तैरा करती हैं, परन्तु अपना समझकर जल-प्रवाह उन्हें बहा नहीं ले जाता। इसलिये हे प्रभो! मुझ पर भी दयाकर मुझे इस भवसागरसे पार उतारिये!"

भगवानने कहा,—"हे देवानुप्रिय! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो अब अपने परिवार की आज्ञा प्राप्त कर शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण कीजिये। ऐसे उत्तम कार्यमें विलम्ब न करना चाहिये।" यह सुन राजा चन्द 'तथास्तु' कहकर अपने परिवारके साथ अपने राज लौट आये।



अट्ठाइसवाँ परिच्छेद



दीक्षा-ग्रहण ।



मुनिसुव्रत स्वामीका उपदेश और पूर्व जन्मका वृतान्त सुनकर, राजा चन्दको वैराग्य आ गया । उन्होंने अपने महलमें आकर गुणावली और प्रेमलालच्छीको एकान्तमें बुलाकर कहा, —"प्यारियो ! मैंने मुनिसुव्रत स्वामीसे चारित्र ग्रहण करना स्थिर किया है, क्योंकि उनके उपदेशामृतसे मेरा मन राजभोगकी ओरसे एकदम हट गया, मुझे उसकी ओरसे तृप्ति हो गयी है, अब मुझे उसमें जरा भी आनन्द नहीं आता और मेरी मनोवृत्ति भी उदासीन हो गयी है । हमलोगोंका आयुष्य अञ्जलीमें रक्खे हुए जलकी भाँति प्रतिक्षण घटता जाता है और अन्तमें इसकी अवस्था पानीके बुल-बुलकेसी हो जाती है; अर्थात् उसे विनाश होते देर नहीं लगती । इसप्रकार कुछ लोग इस शरीरको कुलटा स्त्रीकी उपमा देते हैं, क्योंकि अन्तमें—

परीक्षाके समय यह धोखा दे देता है और प्रेमका निर्वाह नहीं करता। वास्तवमें यह विश्वास करने योग्य भी नहीं है। माँस और रुधीर रूपी कीचड़से यह अस्थि-पिञ्जरकी दीवार खड़ी की गयी है। इसमें नखरूपी कड़ियाँ लगी हैं और केश रूपी घाससे इसकी छत छा दी गयी है। इस मकानमें निरन्तर भोजन रूपी अराव डाला जाता है, फिर भी यह खालीका खाली ही बना रहता है। श्वासोश्वास या पवन रूपी स्थम्भ उसके मूलाधार हैं। स्नान और विलेपनादि द्वारा सदा उसकी मरम्मत की जाती है, किन्तु समय पूरा होनेपर वह एक क्षणके लिये भी नहीं टिकता। ऐसी अस्थिर काया रूपी कागजी नावसे यह भवसागर कैसे पार किया जा सकता है? इस शरीरका और हमारा (भव-जन्तु-ओंका) मिलाप इस संसारमें न जाने कितनी बार हुआ है, परन्तु उसका कोई भी लाभदायक फल नहीं मिला। जिस प्रकार पगली स्त्रीके शिरका घड़ा अस्थिर रहता है, उसीप्रकार यह समस्त संसार भी अस्थिर है। इसके अतिरिक्त इस संसारमें प्राणी तरह तरहके उद्योग कर, हीरा मोती, धन-धान्य, राज-पाट और स्त्री पुत्रादिक प्राप्त करते हैं, परन्तु वह सब यहींपर रह जाता है और यह जीव अकेलाही खाली हाथ परभवमें चला जाता

है। इनमेंसे कोई भी वस्तु उसके साथ नहीं जाती। संसारकी यह क्षण-विनश्वर अवस्था देखकर, मेरा दिल उससे हट गया है। अब मैं इस संसारमें न रहकर मोक्षदायी चारित्र ग्रहण करना चाहता हूँ। परन्तु इसके लिये तुम्हारी अनुमतीकी पूरी आवश्यकता है। मुझे भगवानके वचनोंपर पूर्ण विश्वास हो गया है, इसलिये मैं उन्हींकी शरणमें जाना चाहता हूँ। इसकेलिये यदि तुम आज्ञा दे दोगी तो अच्छाही है; वर्ना मैं बिना आज्ञाके भी चारित्र ले लूँगा; क्योंकि ऐसा कौन क्षुधातुर मनुष्य होगा, जो मुखके पास रक्खे हुए मिष्टान्नपर हाथ साफ करना पसन्द न करेगा? मेरी समझमें, मूर्खके सिवा और कोई भी ऐसा नहीं कर सकता।"

पतिके यह वचन श्रवणकर दोनों रानियोंने उन्हें बहुतही समझाया और उन्हें संसारमें रखनेकी बहुतेरी चेष्टा की, परन्तु जब उसका कोई फल न हुआ, तब उन्होंने सहर्ष आज्ञा दे दी। राजा चन्दने गुणावलीके पुत्र गुणशेखरको आभापुरीके सिंहासन पर बैठाया और मणिशेखरादि अन्य पुत्रोंको भी छोटे छोटे राज्य देकर सन्तुष्ट किया।

इसप्रकार राज्यकी व्यवस्था कर राजा चन्द दीक्षा

लेनेकी तैयारी करने लगे। उस समय उनकी सात सौ रानियाँ, सुमति मन्त्री और शिवकुमार नटने भी उन्हीं-के साथ चारित्र ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। राजा चन्द यह सुनकर बहुतही प्रसन्न हुए। यथा समय गुणशेखर और मणिशेखरने बड़ी धूमके साथ दीक्षा महोत्सवका आयोजन किया। राजा चन्द अपने समस्त परिवारके साथ याचकोंको दान देते हुए मुनिसुव्रत स्वामीके पास गये, और उनकी वन्दनाकर पुनः उनसे उपदेश श्रवण करने लगे। जिससे उनका वैराग्य भाव और भी बढ़ गया। यह देखकर इन्द्रादिक देवता भी राजा चन्दको धन्यवाद देने लगे। इसके बाद गुणशेखरादि पुत्रोंने भगवानसे प्रार्थना की कि,—"हे प्रभो! हमारे पिताजी शिवसुख प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिये अब आप इन्हें चारित्र देनेकी कृपा कीजिये।"

मुनिसुव्रत स्वामी यह बात अच्छी तरह जानते थे कि जिस प्रकार काँसेके वर्तनपर जल बिन्दु नहीं ठहरता उसी प्रकार इस समय राजा चन्दके हृदयपर भी विषय-रंग नहीं ठहर सकेगा। फिर भी उन्होंने विशेष दृढ़ बनाने के विचारसे उन्हें अपने पास बुलाकर कहा,—"हे चन्द नरेश! आप चारित्र ग्रहण करनेके लिये तैयार हुए हैं, यह बहुतही अच्छी बात है, परन्तु चारित्र-

पालन करना बहुतही कठिन है। यह खांड़ेकी धार है, उसपर चलना बड़ाही कठिन है, मोमके दाँतोंसे लोहेके चने चबाना है। परिसह-उपसर्गादि सहन करना बहुत ही कठिन हैं। अध्यवसाय टूटने पर इस व्रतरूपी गिरि शिखरसे अनेक जीवोंका ऐसा अधःपतन होता है, कि उनका फिर कहीं पता भी नहीं लगता। वे दुर्गतिमें ही भटका करते हैं, इसलिये आप जो कुछ करें अच्छी तरह सोच समझकर ही करें।"

भगवानके यह वचन सुनकर राजा चन्दने कहा,—"हे स्वामिन्! आपका कहना बिलकुल ठीक है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि चारित्रका पालन करना बहुत ही कठिन है. परन्तु यह सब कायरोंके लिये है। शूर-वीरोंके लिये तो जरा भी कठिन नहीं है।"

राजा चन्दकी यह दृढ़ता देखकर भगवानने उन्हें चारित्र देना स्वीकार किया। राजा चन्दने उनके आदेशानुसार सर्वप्रथम, जिस प्रकार सर्प अपनी केंचुल उतारता है, उसी प्रकार अपने समस्त आभूषण उतार कर, कर्म वृक्षके मूलकी भांति मस्तकके केशोंको नोच लिये। इसके बाद वे शुद्ध क्रिया अनुष्ठान करनेको तैयार हुए, इसलिये भगवानने उन्हें मुनि-वेश ओघा-मुहपत्ति देकर उनके मस्तक ऊपर वासक्षेप डाला।

तदनन्तर भगवानने उनको पांच महाव्रतोंका नियम कराया। इतनी क्रिया करने पर राजा चन्दने राजर्षिका पद प्राप्त किया। इसके बाद समस्त सुर-नरोंने उन्हें वन्दन किया। सुमति मन्त्रीने भी उसी समय दीक्षा ले ली और पूर्वकी भाँति इस समय भी राजर्षिका मन्त्रित्व ग्रहण किया। शिवकुमारने भी सांसारिक नटका जामा छोड़कर लोकरूपी बाँसपर चढ़नेका दुर्घट खेल खेलनेके लिये अपूर्व नटका काम स्वीकार किया अर्थात् उसने भी नटका काम छोड़कर चारित्र ग्रहणकर लिया। इनके अतिरिक्त अन्यान्य भी कई लोगोंने प्रभुके समक्ष अनेक प्रकारके व्रत नियमादि ग्रहण किये।

इसके बाद भगवानने आभापुरीसे विहार किया और चन्द राजर्षिने भी अपने परिवारके साथ विहार किया। गुण शेखर वगैरः दूर तक उन्हें पहुँचाने गये। वहाँसे लौटते समय उन्हें वन्दना कर, अपना अपना नाम बतलाते हुए उन्होंने कहा,—"हे भगवन्! आप तो हमारे प्रेमको भुलाकर हमें छोड़ चले, पर हम आपके प्रेमको कैसे त्याग सकेंगे? आप तो हमें भूल जायेंगे, परन्तु हम आपको कैसे भूलेंगे? आपने तो राज्यको तृणकी भाँति त्याग दिया, परन्तु हम उसे कैसे त्याग सकेंगे? आप तो शरीरके मैल की भाँति सबका त्यागकर

आत्मकल्याण साधन करने जा रहे हैं, परन्तु अब हमा
कल्याण कौन साधित करेगा ? खैर, आप सहर्ष जाई
हम आपको रोकते नहीं हैं, परन्तु आपसे हम इतनी प्रा
करते हैं, कि आप हमें भूल न जायें और कभी कभी इ
ओर आकर हमें अपने दर्शनका लाभ अवश्य दें।"

राजर्षि चन्दने सबको धर्मलाभ रूपी आशीर्वाद
हुए कहा,—"हे महानुभावो ! आप सब लोग सद
धर्म-कार्य करना और इस संसारको क्षणभंगुर समझ
उसके सुखोंमें आसक्त न होना। इसके अतिरिक्त
राज्य भण्डार या मातापितादि स्वजनोंको भी अपने न
समझना और इनके बन्धनमें अधिक न पड़ना। साथही
निरन्तर उत्तम कुलाचारका पालन करना। यही मेरी
शिक्षा है और यही मेरा आशीर्वाद है।

इसके बाद राजर्षि चन्दने आगेके लिये प्रस्थान
किया, और कुमार गुणशेखर तथा अन्यान्य लो
आँखोंसे आँसू बहाते हुए आभापुरीको लौट आये।"

अब राजर्षि चन्दने समस्त सन्ताप (उपाधि
त्यागकर, स्थविर महाराजके निकट ज्ञानाभ्यास करन
आरम्भ किया। साथ ही उन्होंने चारित्र विषय
क्रिया-कलापमें कुशलता प्राप्त कर ली। सुमति
मुनि और शिवकुमार मुनि भी राजर्षि चन्दके साथ